श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

बालकाण्ड

(हिन्दी अनुवाद सहित)

भाषान्तरकार
साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला—सातवाँ पुष्प

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

बालकाण्ड

(मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित)

टीकाकार

अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता

शिक्षा, शारदा आदि पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक

साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री
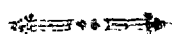
प्रकाशक

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला कार्यालय,

बनारस सिटी।

द्वितीयावृत्ति] गुरु पूर्णिमा १९८८ [मूल्य ॥।)

रा म

☞ सोल एजेण्ट

मुकुन्ददास गुप्त एण्ड कम्पनी

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी।

आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए | अपने मित्रोंको भी बनाइए

इस पुस्तक-मालाके ग्राहक बननेके नियम

१—एक रुपया प्रवेश-शुल्क देकर प्रत्येक सज्जन स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह शुल्क लौटाया नहीं जाता।

२—स्थायी ग्राहकोंको मालाकी प्रत्येक पुस्तककी एक-एक प्रति पौने मूल्यमें मिलती है।

३—मालाकी प्रत्येक पुस्तक लेने, न लेनेका अधिकार ग्राहकोंको होगा। इसमें हमारा किसी तरहका बन्धन नहीं है।

४—पुस्तकके प्रकाशित होनेपर उसके मूल्य आदिकी सूचना ग्राहकोंको दे दी जायगी और उसके १२ दिन बाद पुस्तक वी० पी० से भेज दी जायगी।

५—जिन लोगोंको जो पुस्तक न लेनी हो, वे सूचना पाते ही उत्तर दें, जिसमें वी० पी० न भेजी जाय। वी० पी० लौटानेसे उनके नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथक कर दिये जायँगे। यदि वे पुनः नाम लिखना चाहेंगे, तो वी० पी० खर्च देकर लिखा सकेंगे।

प्रकाशक—

पन्नालाल गुप्त, व्यवस्थापक
स० सा० पुस्तकमाला कार्यालय
बुलानाला, बनारस सिटी।

मुद्रक—

कृ० ब० पावगी
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट,
बनारस सिटी।

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणे

बालकाण्डम्

प्रथमः सर्गः १

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् । नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥१॥
कोन्वस्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् । धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥२॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः । विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥३॥
आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः । कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥४॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे । महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम् ॥५॥
श्रुत्वा चैतत्त्रिकालज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः । श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥
बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः । मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥७॥

तपस्वी वाल्मीकिने सदा तपस्या और शास्त्र-चिन्तन करनेवाले, सर्वप्रधान विद्वान और मुनियोंमें श्रेष्ठ नारदसे पूछा, ॥ १ ॥ इस समय इस लोकमें कौन गुणी है, कौन वीर है, कौन धर्मका ज्ञाता है, कौन कृतज्ञ (उपकारोंका बदला देनेवाला) है, कौन अपने वचनोंका पालन करनेवाला है और अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेवाला कौन है, ॥ २ ॥ कौन चरित्रवान है, कौन सब प्राणियोंका हित करनेवाला है, कौन विद्वान् है, कौन शक्तिमान है, कौन सुन्दर है, ॥ ३ ॥ कौन ऐसा है जिसने अपनी आत्मापर अधिकार किया है, किसने क्रोधको जीता है, कौन द्युतिमान है और कौन ऐसा है जो दूसरोंके गुणोंमें दोष नहीं ढूँढ़ता (किसीसे ईर्षा नहीं रखता), युद्धमें किसके क्रोधसे देवगण भयभीत हो जाते हैं ॥४॥ ऐसे पुरुष के विषयमें मैं सुनना चाहता हूँ, अर्थात जानना चाहता हूँ, मुझे ऐसे पुरुषके जाननेका बड़ा कुतूहल है । आप ऐसे पुरुषके विषयमें अवश्य ज्ञान रखते हैं, क्योंकि आप समर्थ हैं ॥ ५ ॥

त्रिकालज्ञ—भूत, भविष्यत, वर्तमान कालकी बातें जाननेवाले नारद मुनि वाल्मीकिकी यह बात सुनकर प्रसन्न हुए और वाल्मीकिके प्रश्नोंके उत्तरमें बोले ॥ ६ ॥ मुने, आपने जिन गुणोंका नाम लिया है वे बड़े दुर्लभ हैं, (उन गुणोंसे युक्त मनुष्य विरले ही होते हैं) इसलिए समझबूझकर मैं वैसा मनुष्य आपको बतलाता हूँ, सुनिए ॥ ७ ॥

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः। नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥८॥
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः। विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥९॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः। आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥१०॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्। पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥११॥
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः। यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥१२॥
प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः। रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥१३॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥१४॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्। सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥१५॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः। आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥१६॥
स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः। समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥

वे पुरुष राम-नामसे जनतामें प्रसिद्ध हैं और उनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु-वंशमें हुई है। उनकी आत्मा उनके वशमें है, वे महावीर हैं, द्युतिमान् हैं, धीर हैं, और इन्द्रियाँ उनके वशमें हैं ॥ ८॥ वे बुद्धिमान्, न्यायी, वक्ता, शोभायुक्त और शत्रुओंको परास्त करनेवाले हैं, उनके कन्धे विशाल हैं, भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, शंखके समान—सुराहीदार—गला है और हनु (ओठके नीचेवाला भाग) बड़ा है ॥ ९ ॥ उनकी विशाल छाती है, उनका धनुष बड़ा है, शरीरके सन्धिस्थान—घुटना, केहुनी आदि—की हड्डियाँ छिपी हुई हैं और वे शत्रुओंका दमन करनेवाले हैं, उनकी भुजाएँ जानु तक लम्बी हैं, सुन्दर सिर है, प्रशस्त ललाट है और सुन्दर पराक्रम अर्थात् उत्तम कामोंमें उपयोग की जानेवाली वीरता है ॥ १० ॥ उनके अंगोंका विन्यास समान है अर्थात् जिस अंगको जितना छोटा-बड़ा होना चाहिए वह अंग उतना ही छोटा-बड़ा है, उनके शरीरका वर्ण बड़ाही सुन्दर है और वे प्रतापी हैं, उनका वक्ष-स्थल (छाती) चौड़ा और मोटा है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं, वे शोभायुक्त हैं और अन्य उत्तम लक्षण भी उनमें हैं ॥ ११ ॥ वे धर्मके रहस्योंको जाननेवाले हैं, वे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं और प्रजाके कल्याण करनेमें सदा तत्पर रहा करते हैं। वे यशस्वी, ज्ञानी, शुद्ध, वशी और सावधान हैं, उनका चित्त उनके अधीन है ॥१२॥

वे श्रीमान्, ब्रह्माके समान प्रजाकी रक्षा करनेवाले हैं और शत्रुओंकी जड़ खोदनेवाले हैं, वे प्राणियोंके रक्षक हैं और धर्मके भी ॥ १३ ॥ अपने धर्मकी और अपने स्वजन (बन्धु-बान्धव तथा परिजन आदि) की भी रक्षा करनेवाले हैं, वेद तथा उसके अंग-उपाङ्गोंके तत्त्वके वे ज्ञाता हैं और धनुर्वेदमें भी प्रवीण हैं अर्थात् शास्त्र और शस्त्रविद्या दोनोंमें वे प्रवीण हैं ॥ १४ ॥ वे सब शास्त्रोंके अर्थ और तत्त्व जाननेवाले हैं, उनकी स्मृति-शक्ति अच्छी है अर्थात् वे भूलनेवाले नहीं हैं, और उनमें नयी-नयी बातोंको सूझ भी है, वे सबके प्रिय हैं, सज्जन हैं, दीन नहीं हैं, और बुद्धिमान् हैं ॥ १५ ॥ जिस तरह समुद्र नदियोंसे मिला करता है उसी तरह वे सज्जनोंसे मिला करते हैं (सज्जनोंकी भीड़ उनके यहाँ लगी रहती है), श्रेष्ठपुरुष उनको श्रेष्ठ मानते हैं, वे सबको समानभावसे देखते हैं और सदैव प्रियदर्शन हैं, उनको देखनेमें कभी किसीको भी भय नहीं मालूम पड़ता ॥ १६ ॥ वे आपके बतलाये सब गुणोंसे युक्त हैं, वे कौसल्याके आनन्द-दाता हैं अर्थात् उनकी माताका नाम कौसल्या

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः । कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥१८॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः । तमेवंगुणसंपन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१९॥
ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम् । प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥२०॥
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः । तस्याभिषेकसंभारान्दृष्ट्वा भार्याऽथ कैकयी॥२१॥
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत । विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥ २२॥
स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः । विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥२३॥
स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् । पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥
तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह । स्नेहाद्विनयसंपन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥२५॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् । रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता॥२६॥
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता । सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥२७॥
सीताऽप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा । पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥२८॥

है, वे समुद्रके समान गम्भीर और हिमवान् पर्वतके समान धीर हैं ॥ १७॥ विष्णुके समान पराक्रमी और चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर हैं, प्रलयकालकी अग्निके समान उनका क्रोध है और पृथ्वीके समान उनमें क्षमा है ॥ १८ ॥ वे कुबेर के समान त्यागी हैं और सत्यमें द्वितीय धर्म हैं। वे श्रीरामचन्द्र सच्चे वीर (अपनी वीरताका उपयोग परोपकारके लिए करनेवाला, न कि दूसरों को डरवाकर अपना मतलब साधनेवाला) हैं और आपके बतलाये गुणोंसे युक्त हैं ॥ १९ ॥

वे अपने भाइयोंमें सबसे बड़े हैं, वे उत्तम-उत्तम गुणोंसे विभूषित हैं, पिताके प्रिय हैं, प्रजाके कल्याणमें तत्पर रहा करते हैं, इसलिए प्रजाको सुखी बनानेकी इच्छासे महाराज दशरथने ॥ २० ॥ उन्हें प्रेमपूर्वक युवराज बनानेकी इच्छा प्रकट की। युवराज बनानेके लिए जो सामग्रियाँ एकत्र की गयी थीं, जो तयारी हुई थी, उसको देखकर महाराज दशरथकी रानी कैकेयीने राजासे वर माँगे, क्योंकि उसे वर माँगनेका अधिकार राजाने पहलेसे ही दे रक्खा था। उसने रामचन्द्रका वनवास और भरतका राज्याभिषेक ये दो वर माँगे ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ सत्यवादी राजा दशरथ धर्मपाश (धर्म-बन्धन) से बँधे हुए थे, अतएव उन्होंने अपने प्रिय पुत्र रामचन्द्रको वनमें भेजा ॥ २३ ॥ पिताकी आज्ञासे और कैकेयीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे वह वीर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करता हुआ वनमें गया ॥ २४ ॥ रामचन्द्रको वनमें जाते देख उनके प्रिय छोटे भाई लक्ष्मण भी स्नेहके कारण उनके साथ चले। वे विनयी थे और सुमित्राके पुत्र थे ॥ २५ ॥ लक्ष्मण रामचन्द्रके प्रिय थे, इस कारण उन्होंने भी इस समय अपने भ्रातृ-कर्तव्यका पालन किया। रामकी प्रिय स्त्री सीता, जो उन्हें प्राणोंके समान प्यारी थीं ॥ २६ ॥ जिनका जन्म राजा जनकके कुलमें हुआ था और जो देवमायाके समान थीं, उत्तम स्त्रियोंके सब लक्षण जिनमें थे, जो स्त्रियोंमें श्रेष्ठ स्त्री थीं ॥ २७ ॥ और जिनका नाम सीता था, वे भी रामचन्द्रके साथ वनमें गयीं, जिस प्रकार रोहिणी चन्द्रमाका अनुगमन करती है, उसी प्रकार सीताने रामचन्द्रका अनुगमन किया। वन जानेके समय नगर-वासी दूर तक रामचन्द्रके साथ आये, महाराज भी कुछ दूर तक साथ आये ॥ २८ ॥ शृंगवेरपुर नामक नगरमें गंगाके तीरपर आकर रामचन्द्रने, सारथिको लौटा दिया अर्थात् जिस रथपर ये लोग आये थे उस रथको लौटा दिया। निषादों के राजा

शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत् । गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥
गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया । ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥३०॥
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् । रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥३१॥
देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम् । चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तथा ॥३२॥
राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम् । गते तु तस्मिन्भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥३३॥
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः । स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥३४॥
गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् । अयाचद्भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥३५॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् । रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥
न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः । पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनःपुनः ॥३७॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः । स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥३८॥
नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया । गते तु भरते श्रीमान्सत्यसंधो जितेन्द्रियः ॥३९॥
रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च । तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान्प्रविवेश ह ॥४०॥
प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः । विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श ह ॥४१॥
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्य भ्रातरं तथा । अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥४२॥

गुहके साथ रामचन्द्रकी यहीं मैत्री हुई ॥ २९ ॥ गुह, लक्ष्मण और सीताके साथ रामचन्द्र एक वनसे होकर दूसरे वनमें गये और बहुत जलवाली नदियाँ इन लोगोंने पार कीं ॥ ३० ॥ भरद्वाजकी आज्ञासे रामचन्द्र चित्रकूट पहुँचे और वहीं रमणीक कुटी बनाकर तीनों (राम, लक्ष्मण और सीता) रहने लगे ॥३१॥ देवता और गन्धर्व के समान वे तीनों वहाँ निवास करने लगे।

रामचन्द्र जब चित्रकूट पहुँचे तब पुत्र-शोकसे दुःखी राजा दशरथ ।३२। पुत्रके लिए विलाप करते हुए स्वर्ग-गामी हुए। राजा दशरथके मरनेपर वसिष्ठ प्रभृति ब्राह्मणोंके कहनेपर भी महाबली भरतने ॥३३॥ राज्य स्वीकार नहीं किया। वीर भरत रामचन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए वन गये ॥३४॥ वनमें जाकर सत्य-पराक्रमी महात्मा और भाई रामचन्द्रसे भरतने शुद्धभावसे प्रार्थना की ॥३५॥ "धर्मज्ञ, आपही राजा हैं" यह भरतने रामचन्द्रसे कहा। रामचन्द्रभी महायशस्वी और उदार थे, इन घटनाओंके कारण उनके मुँहपर कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ था, इसीलिए वे प्रसन्नमुख थे ॥३६॥ महाबली रामचन्द्रने पिताकी आज्ञा-पालनके लिए राज्य नहीं लिया। भरतके बार-बार कहने पर रामचन्द्रने अपनी चरणपादुका धरोहरके तौरपर राज्य करनेके लिए दी ॥ ३७ ॥ पुनः भरतके बड़े भाई (रामचन्द्र) ने भरतको लौटा दिया। भरतका मनोरथ पूरा नहीं हुआ, उन्होंने रामचन्द्रके चरण छूकर ॥३८॥ नन्दीग्राममें राज्य करना प्रारम्भ किया, इस आशासे कि रामचन्द्र यहाँ लौटकर आवेंगे। भरतके चले जानेपर सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय ॥३९॥ रामचन्द्र अयोध्यावासियोंके यहाँ आजानेके भयसे दूर एकान्त दण्डकारण्यमें चले गये ॥४०॥ उस भयानक वनमें जाकर कमलनयन रामचन्द्रने विराध नामक राक्षसको मारा और शरभंग ऋषिका दर्शन किया ॥४१॥ सुतीक्ष्ण, अगस्त्यके भाईका भी दर्शन

खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ । वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥४३॥
ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुर रक्षसाम् । स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां तदा वने ॥४४॥
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम् । ऋषीणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम्॥४५॥
तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी । विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥४६॥
ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान्सर्वराक्षसान । खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥४७॥
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान् । वने तस्मिन्निवसता जनस्थाननिवासिनाम्॥ ४८ ॥
रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश । ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४९॥
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् । वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः ॥५०॥
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते । अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥५१॥
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा । तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥५२॥
जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम् । गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥५३॥
राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेन्द्रियः । ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥५४॥

रामचन्द्रने किया, अगस्त्यकी आज्ञासे इन्द्रका धनुष रामचन्द्रने ग्रहण किया ॥४२॥ एक तलवार और बाण रखनेके अक्षय (जिसमें के बाण कभी घटते न थे) तरकस को पाकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। वनवासियोंके साथ रामचन्द्र उसी वनमें निवास करने लगे ॥४३॥

उस वनमें सब ऋषि मिलकर एक दिन रामचन्द्रजीके पास आये और उन्होंने राक्षसोंका वध करनेकी प्रार्थना की। रामचन्द्रने उसी वनमें उन ऋषियोंको राक्षसोंके वध करनेका वचन दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि मैं राक्षसोंका वध करूँगा ॥४४॥ अग्निके समान तेजस्वी दण्डकारण्यमें रहनेवाले ऋषियोंके सामने रामचन्द्रने प्रतिज्ञा की कि युद्धमें मैं राक्षसोंका वध करूँगा ॥ ४५ ॥ दण्डकारण्यमें रहनेके समय ही जनस्थानमें रहनेवाली शूर्पणखा नामकी राक्षसीके नाक-कान रामचन्द्रने कटवा लिये। यह राक्षसी कामरूपिणी थी, (इच्छाके अनुसार रूप धरकर विचरा करती थी) ॥४६॥ शूर्पणखा के कहनेसे रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिये जो राक्षस आये थे, उनसब राक्षसोंको, और खर, त्रिशिरा, दूषण इन राक्षसों तथा इनके अनुयायियोंको रामचन्द्रने क्षणभरमें मार डाला ॥४७॥ उस वनमें रहनेके समय जनस्थानमें रहनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको रामचन्द्रने मारा था ॥४८॥ इस तरह अपने ज्ञातिवालोंका मारा जाना सुनकर रावण बहुत क्रोधित हुआ ॥४९॥ उसने अपनी सहायताके लिये मारीच नामक राक्षसको चुना, मारीचको सहायक बनाकर रामचन्द्रसे बदला लेनेका विचार उसने निश्चित किया। मारीचने रावणको रोका ॥५०॥ उसने कहा—रावण, तुमको अपनेसे बलवानसे विरोध करना उचित नहीं; पर रावणने मारीचकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया; क्योंकि वह कालसे प्रेरित था, उसके सिरपर मृत्यु नाच रही थी ॥५१॥ वह मारीचके साथ रामचन्द्रके आश्रमपर गया। मायावी (मायामृग बनकर) मारीच राम और लक्ष्मणको आश्रमसे दूर ले गया ॥५२॥ रावणने सीता-हरण किया। रास्तेमें जटायुने रोका, रावणने उसे मार दिया। मरे हुए जटायुको देखकर और सीता हरी गयीं यह सुनकर ॥५३॥ रामचन्द्र बहुत दुखी हुए, वे विलाप करने लगे, उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। रामचन्द्रने उसी शोककी

मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्श ह। कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोरदर्शनम् ॥५५॥
तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः। ततोऽस्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥५६॥
श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव। सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥५७॥
शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः। पम्पातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह ॥५८॥
हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः। सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥५९॥
आदितस्तद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः। सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥६०॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्। ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥६१॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च। प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥६२॥
वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः। सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे॥६३॥
राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम्। दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसंनिभम् ॥६४॥
उत्स्मयित्वा महाबाहुःप्रेक्ष्य चास्थि महाबलः। पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥
बिभेद च पुनः सालान्सप्तैकेन महेषुणा। गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा ॥६६॥
ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः। किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा ॥६७॥

दशामें ही जटायु नामक गृध्रके दाह आदि संस्कार किये ॥ ५४ ॥ पुनः वनमें सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उन्होंने एक राक्षस देखा, उस राक्षसका नाम कबन्ध था, उसका रूप बड़ाही विकृत था और वह देखनेमें भयानक था ॥ ५५ ॥ रामचन्द्रने उसका वध किया तथा अन्तिम संस्कार (दाह आदि) किया, और वह राक्षस स्वर्गगामी हुआ। उस राक्षसने रामचन्द्रको धर्मचारिणी शबरीका पता बतलाया और उस संन्यासिनीके पास जानेके लिये उसने रामचन्द्रको परामर्श दिया ॥ ५६ ॥ वे महातेजस्वी और शत्रु-संहारक रामचन्द्र शबरीके समीप गये ॥ ५७ ॥ दशरथके पुत्र रामचन्द्रकी शबरीने यथोचित पूजा की। पम्पा नामक सरोवरके तीरपर हनुमान नामक वानरसे उनकी भेंट हुई ॥ ५८ ॥ हनुमानके कहनेसे वे सुग्रीवके पास गये। रामचन्द्रने अपना समस्त वृत्तान्त सुग्रीवको सुनाया ॥ ५९ ॥ पहलेसे जो कुछ हुआ था वह सब सुनाया, विशेषकर सीताकी बातें कहीं। वानर सुग्रीवने रामचन्द्रकी सब बातें सुनीं ॥ ६० ॥ अग्निको साक्षी बनाकर उसने प्रसन्नतापूर्वक रामके साथ मित्रता की।

वानरराज बालिके साथ उसका वैर कैसे हुआ ॥ ६१ ॥ यह बात दुःखित होकर उसने रामचन्द्रसे बतलायी। उसी समय रामचन्द्रने बालिका वध करनेकी प्रतिज्ञा की ॥ ६२ ॥ सुग्रीवने बालिके बलका वर्णन किया। सुग्रीव रामचन्द्रके पराक्रमके विषयमें शंकित था, उसे ऐसा विश्वास नहीं था कि रामचन्द्र बालिका वध कर सकेंगे ॥ ६३ ॥ रामचन्द्रके बलकी परीक्षा करनेकी इच्छासे सुग्रीवने बहुत बड़े पर्वतके समान ऊँचा दुन्दुभिका शरीर दिखाया ॥ ६४ ॥ महाबली रामचन्द्रने हड्डियोंकी उस ढेरको देखा, वे हँसे, उन सबको पैरके अँगूठेसे दस योजन (४० कोस) पर फेंक दिया ॥ ६५ ॥ पुनः रामचन्द्रने एक बाणसे सात साल वृक्षोंको भेदा और उनका वह बाण पर्वतको छेदता हुआ पातालमें चला गया। सुग्रीवको अपने बलका विश्वास दिलानेके लिये रामचन्द्रजीने ऐसा किया ॥ ६६ ॥ रामचन्द्रके इस कामसे सुग्रीवको उनके बलका विश्वास हुआ और वह प्रसन्न होता हुआ रामचन्द्रके साथ किष्कि-

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिङ्गलः । तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥६८॥
अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः । निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः ॥६९॥
ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे । सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥७०॥
स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः । दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम्॥७१॥
ततो गृध्रस्य वचनात्संपातेर्हनुमान्बली । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२॥
तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् । ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम्॥७३॥
निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च । समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम्॥७३॥
पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मंत्रिसुतानपि । शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत ॥७४॥
अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् । मर्षयन्राक्षसान्वीरो यंत्रिणस्तान्यदृच्छया ॥७५॥
ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम् । रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥
सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् । न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥
ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः । समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९॥
दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः । समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥
तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे । रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत्॥८१॥

न्धामें गया और तदन्तर गुफामें ॥६७॥ गुफाके पास जाकर सुवर्णके समान पीले सुग्रीवने गर्जन किया । उस भयानक शब्दको सुनकर बालि बाहर निकल आया ॥ ६८ ॥ तारा नामकी अपनी स्त्रीको समझा-कर बालि सुग्रीवसे भिड़ा, उसी समय एक बाणसे रामचन्द्रने उसे मार डाला ॥६९॥ सुग्रीवके कहने-से युद्धमें बालिको मारकर रामचन्द्रने उसका राज्य सुग्रीवकोही दे डाला ॥ ७० ॥ वानरराज सुग्रीवने सब वानरोंको बुलाया और चारों दिशाओंमें सीताको ढूढ़नेके लिये उन लोगोंको भेजा ॥ ७१ ॥ संपाति गृध्रके पता बतलानेपर बली हनुमानने सौ योजन लम्बा चौड़ा समुद्र पार किया ॥ ७२ ॥ समुद्र पार जानेपर रावणके द्वारा पालित लंकापुरी हनुमानने देखी, वहाँ अशोकवाटिकामें ध्यानमग्न सीताको भी उन्होंने देखा ॥ ७३ ॥ हनुमान अपने, रामचन्द्रके यहाँ से आनेका अभिज्ञान (पहिचान = सहिदानी) दिखाया और पुनः वहाँके समाचार कहे, जानकीको धैर्य दिलाया, पुनः वे वाटिका उजाड़ने लगे ॥७४॥ हनुमानने पाँच सेनापतियों, सात मन्त्रिपुत्रों और वीर अक्षकुमारको मारा, पुनः वे खुद बँध गये ॥७५॥ "यह बंधन छूट जायगा" यह बात हनुमानने ब्रह्माके वरसे जानली और इसी कारण पीड़ा पहुँचाने-वाले राक्षसोंको भी उन्होंने क्षमा की ॥ ७६ ॥ सीताके स्थानको छोड़कर और समस्त लंकापुरीको जला-कर रामचन्द्रको प्रिय सन्देश सुनानेके लिये हनुमान लौट आये ॥ ७७ ॥ हनुमान महात्मा रामचन्द्रके पास गये, उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की और उस वीरने जिस तरह सीताको देखा था वह कह सुनाया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र सुग्रीवको साथ लेकर समुद्रतीरपर गये और वहाँ उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुभित कर डाला ॥ ७९ ॥ उस समय समुद्र प्रकट हुआ, और उसके कहनेके अनुसार रामचन्द्रने नल नामक वानरसे समुद्रपर सेतु बनवाया ॥ ८० ॥ उसी सेतुसे समुद्र पारकर रामचन्द्र लंका गये, युद्धमें रावणको उन्होंने मारा और सीता पायी । सीताको पानेपर रामचन्द्रको

तामुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि । अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती॥८२॥
ततोऽग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् । कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः । बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः ॥८४॥
अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् । कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान् । अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः॥८६॥
भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः । भरतस्यान्तिके रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥८७॥
पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा । पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥
नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः । रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥
प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः । निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥९०॥
न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित् । नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः॥९१॥
न चाग्निजं भयं किञ्चिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः । न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा ॥९२॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा । नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च॥९३॥
नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा । अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः ॥९४॥
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम् । असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥९५

बड़ी लज्जा मालूम हुई ॥ ८१ । रामचन्द्रने सभाके बीचमें सीताको कठोर वचन कहा, सीता उन वचनोंको सह न सकीं और उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया ॥ ८२ । अग्निके कहनेसे रामचन्द्रने सीताको पवित्र जाना, रामचन्द्रके इस कामसे स्थावर-जंगम, सब त्रिलोकवासी, ॥ ८३ ॥ देवता, ऋषि, मुनि प्रसन्न हुए । इस प्रकार देवता और ऋषियोंसे प्रशंसित होनेपर रामचन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८४ ॥

राक्षसराजके पदपर रामचन्द्रने लंकामें विभीषणको बैठाया । उस समय रामचन्द्रकी प्रतिज्ञा पूरी हुई, जो उन्होंने विभीषणसे की थी । उनके मनका सब दुःख जाता रहा और वे बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८५ ॥ देवताओंसे वर पाकर और वानरोंको लेकर अपने मित्रोंके साथ पुष्पक विमानसे रामचन्द्रने अयोध्याके लिए प्रस्थान किया ॥ ८६ ॥ सत्यपराक्रमी रामचन्द्र भरद्वाजके आश्रमपर गये और वहाँसे उन्होंने भरतके पास हनुमानको दूत बनाकर भेजा ॥ ८७ ॥ पुनः सुग्रीवके साथ बातचीत करते हुए रामचन्द्र पुष्पक विमानपर चढ़कर नन्दीग्राममें गये । पवित्र रामचन्द्रने भाइयोंके साथ जटा उतरवायी, रामचन्द्रने सीता पायी और पुनः राज्य पाया ॥ ८९ ॥

रामचन्द्रके राज्यमें सभी शरीर और मनमें प्रसन्न थे, सभी सन्तुष्ट थे, सभी पुष्ट थे, सभी धार्मिक थे । किसी प्रकारका रोग न था और न दुर्भिक्ष (अकाल) का ही भय था ॥ ९० ॥ उस राज्य में कोई भी पुत्र मरणके दुःखको न देखेगा, स्त्रियाँ भी विधवा न होंगी और वे पतिव्रता रहेंगी ॥ ९१ ॥ आगका भय न रहेगा और जलकी बाढ़से डूबनेका भी भय न रहेगा । हवा आँधीका भय न रहेगा और न ज्वर की पीड़ा ही रहेगी ॥९२॥ क्षुधाका भय और चोरोंका भय भी न रहेगा । सभी नगर और राज्य धनधान्यसे पूर्ण रहेंगे ॥९३॥ सतयुगके मनुष्य जैसे प्रसन्न रहते थे, वैसे ही रामराज्यके मनुष्य भी प्रसन्न रहेंगे । जिसमें बहुत सुवर्ण खर्च हुआ है वैसे सौ अश्वमेध यज्ञ करके ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणोंको विधि-

राजवंशाञ्छतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः। चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति॥९६
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥
इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम्। यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः। सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥९९॥
पठन्द्विजो वागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥१००॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥१॥

द्वितीयः सर्गः २

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः। पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम् ॥१॥
यथावत्पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तथा। आपृच्छ्यैवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम् ॥२॥
स मुहूर्ते गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा। जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥३॥
स तु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा। शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम् ॥४॥
अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय। रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा ॥५॥

पूर्वक दस हजार करोड़ गौ दानमें वे देंगे महायशस्वी रामचन्द्र ब्राह्मणोंको बहुत अधिक धन देंगे ॥९५॥

रामचन्द्र सैकड़ों राज्योंकी स्थापना करेंगे और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रको अपने-अपने धर्ममें दृढ़ रहनेके लिए उद्युक्त करेंगे ॥ ९६ ॥ रामचन्द्र दस हजार और दस सौ वर्ष अर्थात् ग्यारह हजार वर्ष राज्य करके ब्रह्मलोकमें जायँगे ॥ ९७ ॥ इस रामचरितको, जो पवित्र है, पापोंको दूर करनेवाला है और वेदके अनुकूल है, जो पढ़ता है उसके सब पाप दूर हो जाते हैं ॥ ९८ ॥ यह कथा आयु बढ़ानेवाली है। जो मनुष्य रामायणका निरन्तर पाठ करता है, वह पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त रहता है, और परलोकमें स्वर्ग पाता है ॥ ९९ ॥ जो ब्राह्मण इस कथाका पाठ करेगा वह महापण्डित होगा, क्षत्रिय राजा होगा, वैश्य अपने व्यापारमें सफल होगा और शूद्र महत्त्व पावेगा ॥१००॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पहला सर्ग समाप्त ॥१॥
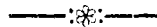
नारदके ये वचन सुनकर धर्मात्मा और वचनोंके अर्थ समझनेवाले वाल्मीकिने महामुनि नारदकी अपने शिष्योंके साथ पूजा की ॥१॥ विधिपूर्वक पूजित होनेपर देवर्षि नारदने वाल्मीकिसे अपने जानेके लिए आज्ञा माँगी और उन्होंने आज्ञा दी। तब नारदजी आकाश-मार्गसे चले गये ॥ २ ॥ नारद-मुनिके देवलोकके लिए प्रस्थान करनेके थोड़ी देर बाद वाल्मीकि तमसा नदीके तीरपर गये। यह नदी गङ्गासे बहुत दूर न थी ॥ ३ ॥ मुनि तमसा-तीरपर गये, नदीके घाटपर कीचड़ नहीं था, यह देखकर उन्होंने अपने शिष्यसे कहा, ॥ ४ ॥ भरद्वाज, देखो, यह घाट विना कीचड़का है और यहाँका जल भी

न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम। इदमेवावगाहिष्ये तमसातीर्थमुत्तमम् ॥६॥
एवमुक्तो भरद्वाजो वाल्मीकिना महात्मना। प्रायच्छत मुनेस्तस्य वल्कलं नियतो गुरोः ॥७॥
स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः। विचचार ह पश्यंस्तत्सर्वतो विपुलं वनम् ॥८॥
तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम्। ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिस्वनम् ॥९॥
तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः। जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः ॥१०॥
तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले। भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराव करुणां गिरम् ॥११॥
वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा। ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्रिणा सहितेन वै ॥१२॥
तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्। ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥१३॥
ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः। निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत् ॥१४॥
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥१५॥
तस्यैवं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः। शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया ॥१६॥
चिन्तयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्। शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः ॥१७॥
पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः। शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥१८॥

सज्जन मनुष्योंके मनके समान स्वच्छ और रमणीय है ॥ ५ ॥ भाई, घड़ा रख दो, मेरा वल्कलवस्त्र दो, तमसाके इसी घाटपर मैं स्नान करूँगा। ६॥ महात्मा वाल्मीकिका यह वचन सुनकर गुरुभक्त भरद्वाजने गुरुको वल्कलवस्त्र दिया ॥ ७ ॥ शिष्यके हाथसे वल्कलवस्त्र लेकर जितेन्द्रिय वाल्मीकि उस बड़े वनको देखते हुए इधर-उधर विचरण करने लगे । ८ । वहाँ पास ही सदा साथ रहनेवाले और मधुर शब्द बोलनेवाले क्रौञ्च पक्षीका जोड़ा भगवान् वाल्मीकिने देखा ॥९॥ उनके देखतेही-देखते उस जोड़के पुरुष पक्षीको एक पापी व्याधने मारडाला । १० ॥ वह खूनसे लथपथ होकर पृथिवीपर गिर पड़ा, और छटपटाने लगा, पतिको मरा देखकर उसकी स्त्री बड़े ही दुःखसे विलाप करने लगी ॥ ११ ॥ वह पक्षिणी अपने उस पतिपक्षीसे सदाके लिए अलग हुई जो सदा साथ रहता था, जिसके मस्तकपर लाल चिह्न था और जो सदा मस्त रहता था ।१२॥ ऐसे पक्षीको व्याधने मारडाला—यह देखकर उन धर्मात्मा ऋषिके मनमें बड़ी दया उत्पन्न हुई । १३ ॥ वे मुनि दूसरोंका दुःख समझनेवाले थे, ऐसा अधर्म देखकर और क्रौंचीका विलाप सुनकर बोले, ॥१४॥

निषाद ! तुम बहुत दिनों तक इस संसारमें जीवित न रहो, क्योंकि क्रौंचके जोड़ेमेंके एकको, जो कामसे मोहित था, तुमने मारा है ॥१५। सहसा उनके मुँहसे ऊपरकी यह बात निकल गयी। जब उन्होंने सोचा तब उन्हें चिन्ता हुई । उन्होंने कहा, पक्षी के दुःखसे व्याकुल होकर मैंने यह क्या कह दिया ? ॥ १६ । महाबुद्धिमान् वाल्मीकिने विचार करके यह निश्चय किया और उन मुनिश्रेष्ठने अपने शिष्य से कहा कि ॥१७॥ मेरे मुखसे जो वाणी निकली है वह पादबद्ध है अर्थात् वह वाणी चार पादोंमें बँटी है, उनमें समान अक्षर हैं और लयसे युक्त हैं। शोकको दशामें मेरे मुँहसे इस तरहकी जो वाणी सहसा निकल गयी है, वह श्लोक हो अर्थात् इस छन्दका नाम श्लोक हो ॥१८॥ (लौकिक छन्दोंमें पहला श्लोक—

शिस्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम्। प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः ॥१९॥
सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि। तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः ॥२०॥
भरद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान्गुरोः। कलशं पूर्णमादाय पृष्ठतोऽनुजगाम ह ॥२१॥
स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित्। उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः॥२२॥
आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयंप्रभुः। चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुंगवम्॥२३॥
वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वाग्यतः। प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मितः॥२ ॥
पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवन्दनैः। प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ट्वा चैव निरामयम्॥२५॥
अथोपविश्य भगवानासने परमार्चिते। वाल्मीकये च ऋषये संदिदेशासनं ततः॥२६॥
ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने। उपविष्टे तदा तस्मिन्साक्षाल्लोकपितामहे ॥२७॥
तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः। पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना ॥२८॥
यत्तादृशं चारुरवं क्रौञ्चं हन्यादकारणात्। शोचन्नेव पुनः क्रौञ्चीमुपश्लोकमिमं जगौ॥२९॥
पुनरन्तर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः। तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन्मुनिपुंगवम्॥३०॥

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।—

यही है। इसके पहले वैदिक छन्द थे। अतएव पहले पहल, सहसा बिना जाने-बूझे एक छन्दके प्रकाशित होजानेसे उन्हें आश्चर्य हुआ)। मुनिकी इस बातका अर्थ शिष्यने समझा और वह प्रसन्न हुआ, मुनि भी उस शिष्यपर प्रसन्न हुए ॥१९॥ उसी घाटपर विधिपूर्वक स्नान करके मुनि घर लौटे। घाटपर पक्षीकी जो घटना हुई थी वह उनके चित्तसे दूर न हुई, वे उसपर विचार करते ही रहे ॥२०॥ मुनिका शिष्य भरद्वाज विनयी था और उसने गुरुसे ग्रन्थ पढ़े थे, वह जलसे भरा घड़ा लेकर मुनिके पीछे-पीछे चला ॥२१॥ धर्मात्मा वाल्मीकि शिष्यके साथ अपने आश्रममें आये और बैठकर दूसरी बातें करने लगे, पर मुनि उस समय भी ध्यानस्थ थे, वे उसी घाटवाली बातका विचार करते रहे ॥२२॥ उसी समय मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिको देखनेके लिए चतुर्मुख महातेजस्वी सृष्टिके रचयिता ब्रह्मा वहाँ आये। ब्रह्मा स्वयं प्रभु हैं, इन्होंने स्वयं प्रभाव प्राप्त किया है। दूसरेकी शक्तिसे ये शक्तिमान् नहीं हैं ॥२३॥ ब्रह्माको देखते ही वाल्मीकि बड़ी शीघ्रतासे उठे। उन्होंने बोलना बन्द करदिया, बड़ी नम्रताके साथ हाथ जोड़कर वे खड़े हुए, ब्रह्माके एकाएक आजानेसे वे बड़े विस्मित थे ॥२४॥ पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुतिके द्वारा उन्होंने ब्रह्माकी पूजा की और विधिवत् प्रणाम करके उनसे कुशल-प्रश्न पूछा ॥२५॥ उत्तम आसनपर भगवान् ब्रह्मा बैठे और उन्होंने दूसरे आसनपर वाल्मीकिको भी बैठनेके लिए कहा ॥२६॥ ब्रह्मासे आज्ञा पाकर वाल्मीकि भी, पितामह ब्रह्माके आसन ग्रहण करलेनेपर, अपने आसनपर बैठे ॥२७॥ वाल्मीकिका मन उसी घटनाकी ओर लगा था, वे ध्यान लगाकर उसीको बात सोचने लगे। उस पापात्मा और वैर मोललेनेवालेने यह बहुत बुरा किया ॥२८॥ मीठा बोलनेवाले उस क्रौञ्चको बिना कारण ही उसने मारा और क्रौंची दुःखिनी हुई, इस बातको सोचते हुए उन्होंने पुनः वह श्लोक पढ़ा ॥२९॥ मुनि पुनः शोकके कारण ध्यानस्थ हो गए, उनका बाहरी ज्ञान जाता रहा। मुनिश्रेष्ठको ऐसा विह्वल देखकर ब्रह्माने हँसकर कहा, ॥३०॥ यह जो आपके मुखसे वाणी छन्दरूपसे निकली

श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा। मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन्प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥३१॥
रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम। धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः ॥३२॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्। रहस्यं च प्रकाशं च यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥३३॥
रामस्य सहसौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः। वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥३४॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति। न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥३५॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्। यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले॥३६॥
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति। यावद्रामस्य च कथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ॥३७॥
तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि। इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥
ततः सशिष्यो भगवान्मुनिर्विस्मयमाययौ ॥ ३८ ॥

तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः। मुहुर्मुहुः प्रीयमाणाः प्राहुश्च भृशविस्मिताः॥३९॥
समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा। सोऽनुव्याहरणाद्भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः॥४०॥
तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः। कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥४१॥
उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदास्य रामस्य चकार कीर्तिमान्।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः ॥४२॥

है वह श्लोकही रहे, वह श्लोक ही कहा जाय। ब्रह्मन्, मेरी इच्छासे ही आपके द्वारा इस वाणीका निर्माण हुआ है ॥३१॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! आप धर्मात्मा भगवान् रामचन्द्रके समस्त चरितका वर्णन करें, क्योंकि रामचन्द्र लोकमें धर्मात्मा और बुद्धिमान् हैं ॥ ३२ ॥ धीर रामचन्द्रके उस चरितका आप वर्णन करें जो आपने नारदसे सुना है। बुद्धिमान् रामचन्द्रके चरितमें जो गुप्त हों और जो प्रकाश हों, उन सबका आप वर्णन करें ॥ ३३ ॥ रामचन्द्र, लक्ष्मण, राक्षस और सीताका जो कुछ गुप्त और प्रकाश वृत्तान्त है उसका आप वर्णन करें। ३४॥ जो चरित आपको मालूम नहीं हैं वे भी मालूम हो जायँगे, काव्यमें जो कुछ आप लिखेंगे वह असत्य न होगा ॥३५॥ रामचन्द्रकी पवित्र कथाका श्लोकोंमें आप निर्माण करें। पृथिवी तलमें जबतक पर्वत रहेंगे और नदियाँ रहेंगी ॥३६॥ तब तक रामायणकी कथाका प्रचार रहेगा। आपकी बनाई रामायणका जब तक लोक में प्रचार रहेगा ॥३७॥ तब तक आप मेरे लोक (ब्रह्मलोक) में निवास करेंगे। इतना कहकर भगवान् ब्रह्मा वहीं अन्तर्धान होगये, (इतनी शीघ्रतासे गये कि उनको जाते किसीने देखा नहीं। इससे अपने शिष्यके साथ मुनि विस्मित हुए, ब्रह्माके सहसा अन्तर्धान होनेसे मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥३८॥ मुनिके सब शिष्य उनके बनाये श्लोकको बारबार पढ़ने लगे। वे प्रसन्न और विस्मित होकर आपसमें कहने लगे ॥ ३९ ॥ समान अक्षरवाले चार पदोंमें मुनिने यह श्लोक बनाया है। क्रौंचकी घटनाका जो उनका शोक प्रकाशित हुआ वही श्लोक बनगया। ४० ॥

विशुद्धात्मा मुनिने अब यह विचार किया है कि ऐसे ही श्लोकोंमें मैं समस्त रामायण बनाऊँ ॥ ४१ ॥ यशस्वी रामचन्द्रका चरित उन महर्षिने सौ श्लोकोंमें बनाया. उसमें छन्द मनोहर हैं अर्थ और

तदुपगतसमाससंधियोगं समममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ ४३ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्ग ३

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थसहितं हितम् । व्यक्तमन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमतः ॥१॥
उपस्पृश्योदकं सम्यङ् मुनिःस्थित्वा कृताञ्जलिः । प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणान्वेषते गतिम् ॥२॥
रामलक्ष्मणसीताभी राज्ञा दशरथेन च । सभार्येण सराष्ट्रेण यत्प्राप्तं तत्र तत्त्वतः ॥३॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम् । तत्सर्वं धर्मवीर्येण यथावत्संप्रपश्यति ॥४॥
स्त्रीतृतीयेन च तथा यत्प्राप्तं चरता वने । सत्यसंधेन रामेण तत्सर्वं चान्ववैक्षत ॥५॥
ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः । पुरो यत्तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा ॥६॥
तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः । अभिरामस्य रामस्य तत्सर्वं कर्तुमुद्यतः ॥७॥
कामार्थगुणसंयुक्तं धर्मार्थगुणविस्तरम् । समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुतिमनोहरम् ॥८॥
स यथा कथितं पूर्वं नारदेन महात्मना । रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान्मुनिः ॥९॥
जन्म रामस्य सुमहद्वीर्यं सर्वानुकूलताम् । लोकस्य प्रियतां क्षान्तिं सौम्यतां सत्यशीलताम्॥१०॥

पद भी मनोहर हैं, श्लोक समवृत्त हैं ॥ ४२ ॥ मुनि प्रणीत रामचन्द्रका चरित और रावणका वध सुनिए रामचन्द्रका चरित व्याकरणके समाससन्धिसे युक्त है, अर्थ भी मनोहर और उत्तम हैं ॥ ४३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकांडका दूसरा सर्ग समाप्त ।

वाल्मीकि मुनिने धमार्थ युक्त वह समूची कथा सुनी, पुनः धीमान् रामचन्द्रके चरितमें और जो घटनाएँ प्रकाशित हुई थीं उन्हें ढूँढ़ा ॥ १ ॥ आचमन करके तथा कुशासनपर बैठकर और दोनों हाथ जोड़कर मुनि नियमपूर्वक राम-चरितका संग्रह करने लगे ॥ २ ॥ राम, लक्ष्मण, सीता, दशरथ और उनकी रानियाँ और राज्य इनका जो कुछ सत्य वृत्तान्त है वह, ॥ ३ ॥ और रामचन्द्रका हँसना, बोलना चलना आदि भी अपने धर्म-प्रभावसे वाल्मीकि मुनिने जान लिया ॥ ४ ॥ वनमें रहनेके समय सीता और लक्ष्मणके साथ सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्रपर जो बातें बीतीं, उन सबको भी वाल्मीकिने जाना ॥ ५ ॥ धर्मात्मा वाल्मीकिने इन बातोंके अतिरिक्त, चरित-सम्बन्धी अन्य बातें, जो पहले होचुकी थीं उन्हें, योग-बलके द्वारा जानीं। हाथमें रखे हुए आँवलेका ज्ञान जैसे मनुष्यको होता है, उसी प्रकारका ज्ञान वाल्मीकिको रामचरितका होगया ॥ ६ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रके चरितका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके रामचरितका वर्णन करनेके लिए वे उद्यत हुए ॥ ७ ॥ इस रामचरितमें काम और अर्थका वर्णन है, धर्म और अर्थका वर्णन विस्तारके साथ इसमें है, जैसे समुद्रमें रत्न होते हैं, इसमें भी उसी प्रकार अनेक रत्न हैं और यह रामचरित सुननेमें मनोहर है ॥ ८ ॥ महात्मा नारदने जैसा पहले रघुवंशका चरित कहा था, वैसाही मुनिने बनाया ॥ ९ ॥ रामचन्द्रका प्रभावशाली जन्म, उनका पराक्रम, सबपर उनका प्रेम

नाना चित्राः कथाश्चान्या विश्वामित्रसहायने। जानक्याश्च विवाहं च धनुषश्च विभेदनम् ॥११॥
रामरामविवादं च गुणान्दाशरथेस्तथा। तथाभिषेकं रामस्य कैकेय्या दुष्टभावताम् ॥१२॥
विघातं चाभिषेकस्य रामस्य च विवासनम्। राज्ञः शोकं विलापं च परलोकस्य चाश्रयम् ॥१३॥
प्रकृतीनां विषादं च प्रकृतीनां विसर्जनम्। निषादाधिपसंवादं सूतोपावर्तनं तथा ॥१४॥
गङ्गायाश्चापि सन्तारं भरद्वाजस्य दर्शनम्। भरद्वाजाभ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्य दर्शनम् ॥१५॥
वास्तुकर्मनिवेशं च भरतागमनं तथा। प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिलक्रियाम् ॥१६॥
पादुकाग्र्याभिषेकं च नन्दिग्रामनिवासनम्। दण्डकारण्यगमनं विराधस्य वधं तथा ॥१७॥
दर्शनं शरभङ्गस्य सुतीक्ष्णेन समागमम्। अनसूयासमास्यां च अंगरागस्य चार्पणम् ॥१८॥
दर्शनं चाप्यगस्त्यस्य धनुषो ग्रहणं तथा। शूर्पणख्याश्च संवादं विरूपकरणं तथा ॥१९॥
वधं खरत्रिशिरसोरुत्थानं रावणस्य च। मारीचस्य वधं चैव वैदेह्या हरणं तथा ॥२०॥
राघवस्य विलापं च गृध्रराजनिबर्हणम्। कबन्धदर्शनं चैव पम्पायाश्चापि दर्शनम् ॥२१॥
शबरीदर्शनं चैव फलमूलाशनं तथा। प्रलापं चैव पम्पाया हनूमद्दर्शनं तथा ॥२२॥
ऋष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमम्। प्रत्ययोत्पादनं सख्यं वालिसुग्रीवविग्रहम् ॥२३॥
वालिप्रमथनं चैव सुग्रीवप्रतिपादनम्। ताराविलापं समयं वर्षरात्रनिवासनम् ॥२४॥

तथा उनपर सबका प्रेम, उनकी क्षमा और सत्यशीलता ॥ १० ॥ इनके अतिरिक्त अन्य सब कथाएँ जैसे विश्वामित्रकी सहायता, सीताका विवाह, धनुषका तोड़ना ॥ ११ ॥ रामचन्द्र और परशुरामका विवाद, रामचन्द्रका महत्व, रामचन्द्रके अभिषेकका उद्योग, कैकेयीकी कुटिलता, ॥ १२ ॥ अभिषेकका रुक जाना, रामचन्द्रका वन जाना, राजा दशरथका शोक विलाप तथा परलोक-गमन ॥ १३ ॥ प्रजाका दुःख, रामचन्द्रके साथ जानेवाले नगरवासियोंको लौटाना, निषादराजके साथ संवाद, सारथिको लौटाना ॥ १४ ॥ गंगाका पार करना, भरद्वाजका दर्शन, भरद्वाजकी आज्ञासे चित्रकूट जाना ॥ १५ ॥ वहाँ घर बनाकर रहना, भरतका आना और लौटनेके लिए रामचन्द्रको मनाना, पिताको जलाञ्जलि देना, ॥ १६ ॥ राज्यपर रामचन्द्रकी चरणपादुकाका स्थापन, नन्दिग्राममें उनका निवास, रामचन्द्रका दण्डकारण्यमें जाना, विराधका वध करना, ॥ १७ ॥ शरभंगका दर्शन होना, और सुतीक्ष्णके साथ भेंट, अनसूयाका दर्शन और उनसे अंगराग (एक तरहका उबटन) का पाना, ॥ १८ ॥ अगस्त्यका दर्शन और धनुष ग्रहण, शूर्पणखाके साथ संवाद और उसको विरूप बनाना (कान-नाक काटना) ॥ १९ ॥ खर और त्रिशिराका वध करना, रावणका बदलाके लिये तैयार होना, मारीचका वध होना, सीताका हरण ॥ २० ॥ रामचन्द्रका विलाप, गृध्रराज जटायुकी मृत्यु, कबन्धका दर्शन और पम्पाका दर्शन ॥ २१ ॥ शबरीके यहाँ जाना और उसका फलमूल ग्रहण करना, पम्पाके तीरपर रामचन्द्रका विह्वल होना और वहीं हनुमानका दर्शन होना, ॥ २२ ॥ ऋष्यमूक पर्वतपर जाना और सुग्रीवसे भेंट करना, रामचन्द्रका सुग्रीवको अपने बलका विश्वास दिलाना, सुग्रीवसे रामचन्द्रकी मित्रता, और बालि-सुग्रीवका विरोध, ॥ २३ ॥ बालिको मारना और सुग्रीवको राज्य देना, बालिकी स्त्री ताराका विलाप, सुग्रीवका एक वर्षका अवकाश, ॥२४॥

कोपं राघवसिंहस्य बलानामुपसंग्रहम्। दिशः प्रस्थापनं चैव पृथिव्याश्च निवेदनम् ॥२५॥
अङ्गुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनम्। प्रायोपवेशनं चैव संपातेश्चापि दर्शनम् ॥२६॥
पर्वतारोहणं चैव सागरस्यापि लङ्घनम्। समुद्रवचनाच्चैव मैनाकस्य च दर्शनम् ॥२७॥
राक्षसीतर्जनं चैव छायाग्राहस्य दर्शनम्। सिंहिकायाश्च निधनं लङ्कामलयदर्शनम् ॥२८॥
रात्रौ लङ्काप्रवेशं च एकस्यापि विचिन्तनम्। आपानभूमिगमनमवरोधस्य दर्शनम् ॥२९॥
दर्शनं रावणस्यापि पुष्पकस्य च दर्शनम्। अशोकवनिकायानं सीतायाश्चापि दर्शनम् ॥३०॥
अभिज्ञानप्रदानं च सीतायाश्चापि भाषणम्। राक्षसीतर्जनं चैव त्रिजटास्वप्नदर्शनम् ॥३१॥
मणिप्रदानं सीताया वृक्षभङ्गं तथैव च। राक्षसीविद्रवं चैव किंकराणां निबर्हणम् ॥३२॥
ग्रहणं वायुसूनोश्च लङ्कादाहाभिगर्जनम्। प्रतिप्लवनमेवाथ मधूनां हरणं तथा ॥३३॥
राघवाश्वासनं चैव मणिनिर्यातनं तथा। संगमं च समुद्रेण नलसेतोश्च बन्धनम् ॥३४॥
प्रतारं च समुद्रस्य रात्रौ लङ्कावरोधनम्। विभीषणेन संसर्गं वधोपायनिवेदनम् ॥३५॥
कुम्भकर्णस्य निधनं मेघनादनिबर्हणम्। रावणस्य विनाशं च सीतावाप्तिमरेः पुरे ॥३६॥
विभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्य च दर्शनम्। अयोध्यायाश्च गमनं भरद्वाजसमागमम् ॥३७॥
प्रेषणं वायुपुत्रस्य भरतेन समागमम्। रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम् ॥
स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम् ॥ ३८ ॥

रामचन्द्रका क्रोध करना, सुग्रीवका सेना-संग्रह करना, सब दिशाओं और समस्त पृथिवीपर ढूँढ़नेके लिए दूत भेजना, ॥२५॥ पहचानके लिए अंगूठीका देना, जाम्बवानका गुफा देखना, धरना देना, सम्पातिसे भेंट होना, ॥२६॥ पर्वतपर चढ़ना, समुद्रका लांघना, और समुद्रके कहने से मैनाक पर्वतको देखना, ॥ २७ ॥ राक्षसीके द्वारा भयभीत किया जाना, छायाग्राही राक्षससे भेंट, सिंहिका राक्षसीको मारना और लङ्कामें पहुँचना, ॥ २८ ॥ रातमें लंकामें जाना, एकान्तमें विचार करना, आपानभूमि (शराब पीनेकी जगह) में जाना, रावणकी स्त्रियोंको देखना, ॥२९॥ रावणको देखना, पुष्पक विमानको देखना, अशोक-वाटिकामें जाना और वहाँ सीताको देखना, ॥ ३० ॥ रामचन्द्रका दिया हुआ पहिचान सीताको देना, सीताका बात करना, राक्षसियोंका भय प्रदर्शन, त्रिजटाका स्वप्न देखना, ॥ ३१ ॥ रामचन्द्रको देनेके लिए सीताका मणि देना, हनुमानका वाटिकामें वृक्षोंको तोड़ना, राक्षसियोंका घबड़ाना और राक्षसोंका वध करना, ॥ ३२ ॥ हनुमानका बाँधा जाना, लंका-दहन, हनुमानका गर्जन, वहाँसे लौटना, सुग्रीवके बागका फल खाना ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रको धैर्य देना, और सीताकी दी हुई मणि देना, समुद्र-तटपर जाना और नलके द्वारा सेतु बँधवाना, ॥ ३४ ॥ समुद्रका पार करना, रातमें लङ्कापर घेरा डालना, विभीषणका आना और उनका रावणके वधका उपाय बतलाना, ॥ ३५ ॥ कुम्भकर्णका मारा जाना, मेघनादका वध, रावणका नाश और लङ्कामें सीताकी प्राप्ति, ॥ ३६ ॥
लङ्काके राज्यपर विभीषणका अभिषेक, पुष्पक विमानका दर्शन, अयोध्याके लिए प्रस्थान करना, भरद्वाज मुनिसे भेंट, ॥ ३७ ॥ भरतके पास हनुमानका जाना, भरतमिलाप, रामचन्द्रका राज्याभिषेक,

अनागतं च यत्किंचिद्रामस्य वसुधातले । तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ४

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः । चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत् ॥१॥
चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः । तथा सर्गशतान्पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम्॥२॥
कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञः सभविष्यं सहोत्तरम् । चिन्तयामास को न्वेतत्प्रयुञ्जीयादिति प्रभुः ॥३॥
तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः । अग्रहीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥४॥
कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ । भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥५॥
स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ । वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥६॥
काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् । पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः ॥७॥
पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् । जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥८॥
रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः । वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥ ९ ॥
तौ तु गान्धर्वतत्त्वज्ञौ स्थानमूर्च्छनकोविदौ । भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ ॥१०॥
रूपलक्षणसंपन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ । बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ॥११॥

सैनिकोंकी विदाई, राज्यका पालन और सीताका त्याग, ॥ ३८ ॥ इन सब चरितोंके अतिरिक्त रामचन्द्रके चरितकी जो अन्य घटनाएँ होनेको बाकी थीं उनका वर्णन भगवान् वाल्मीकि ऋषिने उत्तरकाव्य में किया है ॥ ३९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तीसरा सर्ग समाप्त ॥ ३ ॥

भगवान् वाल्मीकि ऋषिने राजा रामचन्द्रका समस्त चरित बनाया, जिसके पद उत्तम तथा अर्थयुक्त हैं ॥ १ ॥ चौबीस हजार श्लोकोंमें भगवान् वाल्मीकिने वह चरित लिखा, पाँचसौ सर्ग, छ काण्ड और उत्तरकाण्ड इसप्रकार सातकांडोंमें रामचरितका उन्होंने निर्माण किया ॥ २ ॥ छ काण्डोंमें और उत्तरकाण्डमें, होनेवाले चरितका वर्णन करके मुनिने सोचा कि कौन इस काव्यका गान करेगा ॥ ३ ॥ विशुद्धात्मा ऋषि इसप्रकार सोच रहे थे, उसी समय मुनिवेषधारी कुश और लवने मुनिके चरण ग्रहण किये ॥४॥ कुश और लव धर्मात्मा थे, राजपुत्र थे, यशस्वी थे, दोनों भाई थे, उनके गलेका स्वर मीठा था, वे आश्रममें रहनेवाले थे, मुनिने उन्हें देखा ॥ ५ ॥ वे बुद्धिमान् हैं और वेदोंका भी उन्हें ज्ञान है, इसकारण वेदोंके प्रचारकी इच्छासे मुनिने उन्हें अपना रामचरितकाव्य पढ़ाया ॥६॥ समस्त रामायणकाव्य, जिसमें सीताके महान् चरितका वर्णन है और रावण-वधका वर्णन है, चरित वर्णन करनेमें तत्पर मुनिने बनाया ॥७॥ यह काव्य पढ़ने और गाने में मधुर है, तीन प्रमाणोंसे युक्त है, सात जातियोंसे तन्त्री और लयसे (गानेके गुण) यह युक्त है ॥८॥ शृंगार, करुणा, हास्य, रौद्र भयानक और वीर आदि रसोंसे युक्त इस काव्यका गान कुश और लवने किया ॥९॥ वे गान-विद्यामें निपुण थे स्थान और मूर्च्छनाका ज्ञान रखते थे, दोनों भाइयोंका गला बड़ाही मधुर था और वे गन्धर्वके समान

तौ राजपुत्रौ कार्त्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम् । वाचोविधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ॥१२॥
ऋषीणां च द्विजातीनां साधूनां च समागमे । यथोपदेशं तत्त्वज्ञौ जगतुः सुसमाहितौ ॥१३॥
महात्मानौ महाभागौ सर्वलक्षणलक्षितौ ।तौ कदाचित्समेतानामृषीणां भावितात्मनाम्॥१४॥
मध्येसभं समीपस्थाविदं काव्यमगायताम् । तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे बाष्पपर्याकुलेक्षणाः॥१५॥
साधु साध्विति तावूचुः परं विस्मयमागताः । ते प्रीतमनसः सर्वे मुनयो धर्मवत्सलाः ॥१६॥
प्रशशंसुः प्रशस्तव्यौ गायमानौ कुशीलवौ । अहो गीतस्य माधुर्यं श्लोकानां च विशेषतः॥१७॥
चिरनिर्वृत्तमप्येतत्प्रत्यक्षमिव दर्शितम् । प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु तथाभावमगायताम् ॥१८॥
सहितौ मधुरं रक्तं संपन्नं स्वरसंपदा । एवं प्रशस्यमानौ तौ तपःश्लाघ्यैर्महर्षिभिः ॥१९॥
संरक्ततरमत्यर्थं मधुरं तावगायताम् । प्रीतः कश्चिन्मुनिस्ताभ्यां संस्थितःकलशं ददौ॥२०॥
प्रसन्नो वल्कलं कश्चिद्ददौ ताभ्यां महायशाः । अन्यः कृष्णाजिनमदाद्यज्ञसूत्रं तथापरः ॥२१॥
कश्चित्कमण्डलुं प्रादान्मौञ्जीमन्यो महामुनिः । बृसीमन्यस्तदा प्रादात्कौपीनमपरो मुनिः ॥२२॥
ताभ्यां ददौ तदा हृष्टः कुठारमपरो मुनिः । काषायमपरो वस्त्रं चीरमन्यो ददौ मुनिः ॥२३॥
जटाबन्धनमन्यस्तु काष्ठरज्जुं मुदान्वितः । यज्ञभाण्डमृषिः कश्चित्काष्ठभारं तथापरः ॥२४॥
औदुम्बरीं बृसीमन्यः स्वस्ति केचित्तदावदन् । आयुष्यमपरे प्राहुर्मुदा तत्र महर्षयः ॥२५॥

सुन्दर थे ॥ १० ॥ वे रूपवान, सुलक्षण, मधुरभाषी, छायाकी प्रतिच्छायाके समान रामचन्द्रके शरीरसे दूसरे रामचन्द्रके समान उत्पन्न हुए थे ॥ ११ ॥ उन अनिन्दित दोनों राजपुत्रोंने इस धार्मिक उत्तम आख्यानको कण्ठस्थ किया ॥ १२ ॥ ऋषियों, द्विजातियों और साधुओंका जहाँ समागम था, वहाँ उन-लोगोंने गुरुके उपदेशके अनुसार सावधान होकर उस काव्यका गान किया ॥ १३ ॥ उन दोनों महा-भागी और सब उत्तम लक्षणोंसे युक्त राजपुत्रोंने किसी समय एकत्र हुए शुद्धात्मा ऋषियोंकी ॥ १४ ॥ सभामें जाकर इस काव्यका गान किया । उस गानको सुनकर मुनियोंकी आँखें जलसे भर आयीं ॥१५॥ विस्मित होकर सब लोग उन बालकोंकी प्रशंसा करनेलगे । वे धर्मात्मामुनि बहुत प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ प्रशंसा करने-योग्य गायक कुश और लवकी उनलोगोंने प्रशंसा की । उन लोगोंने कहा—गान कितना मधुर है, श्लोकोंकी मधुरता तो और भी बढ़ी हुई है ॥ १७ ॥ ये घटनाएँ पहले होचुकी हैं, पर प्रत्यक्षके समान मालूम पड़ती हैं । इन दोनों बालकोंने ऐसी सुन्दरताके साथ गाया है ॥ १८ ॥ बड़े बड़े तपस्वी महर्षियोंने उनके मधुर स्वर और मधुर गानकी प्रशंसा की ॥ १९ ॥ इस प्रशंसासे प्रसन्न होकर वे और भी मधुर गानेलगे, जिससे प्रसन्न होकर किसी मुनिने उन्हें एकघड़ा दिया, ।२०॥ किसी मुनिने प्रसन्न होकर उनलोगोंको वल्कल वस्त्र दिया । एकने काला मृगचर्म दिया और दूसरेने यज्ञसूत्र ॥ २१ ॥ एकने कमण्डलु दिया और दूसरेने मौञ्जी (मूंजकी बनी रस्सी जो कमरमें लपेटनेके काममें आती थी) दी । एक मुनिने आसन दिया तथा दूसरेने कौपीन ।२२॥ प्रसन्न होकर किसी मुनिने उनलोगोंको एक कुठार दिया, किसी मुनिने काषायवस्त्र दिया और किसी मुनिने वस्त्र दिया ॥२३॥ एकने जटा बाँध-नेकी वस्तु दी और दूसरेने लकड़ी बाँधनेकी रस्सी, किसी ऋषिने यज्ञभाण्ड दिया और किसीने लकड़ीका बोझ ॥ २४ ॥ किसीने गूलरकी लकड़ीका बना हुआ आसन दिया, और किसीने केवल आशीर्वाद

ददुश्चैवं वरान्सर्वे मुनयः सत्यवादिनः । आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना संप्रकीर्तितम् ॥२६॥
परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम् । अभिगीतमिदं गीतं सर्वगीतिषु कोविदौ ॥२७॥
आयुष्यं पुष्टिजननं सर्वश्रुतिमनोहरम् । प्रशस्यमानौ सर्वत्र कदाचित्तत्र गायकौ ॥२८॥
रथ्यासु राजमार्गेषु ददर्श भरताग्रजः । स्ववेश्म चानीय ततो भ्रातरौ स कुशीलवौ ॥२९॥
पूजयामास पूजार्हौ रामः शत्रुनिबर्हणः । आसीनः काञ्चने दिव्ये स च सिंहासने प्रभुः॥३०॥
उपोपविष्टः सचिवैर्भ्रातृभिश्च समन्वितः । दृष्ट्वा तु रूपसंपन्नौ विनीतौ भ्रातरावुभौ ॥३१॥
उवाच लक्ष्मणं रामः शत्रुघ्नं भरतं तथा । श्रूयतामेतदाख्यानमनयोर्देववर्चसोः ॥३२॥
विचित्रार्थपदं सम्यग्गायकौ समचोदयत् । तौ चापि मधुरं रक्तं स्वचित्तायतनिःस्वनम् ॥३३॥
तन्त्रीलयवदत्यर्थं विश्रुतार्थमगायताम् । ह्लादयत्सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च ॥
श्रोत्राश्रयसुखं गेयं तद्बभौ जनसंसदि ॥३४॥

इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ ।
ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्षते महानुभावं चरितं निबोधत ॥३५॥
ततस्तु तौ रामवचःप्रचोदितावगायतां मार्गविधानसंपदा ।
स चापि रामः परिषद्गतः शनैर्बुभूषयासक्तमना बभूव ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

दिया । अन्य ऋषियोंने प्रसन्न होकर उनके दीर्घजीवी होनेकी कामना की ॥ २५ । उन सत्यवादी मुनियोंने इस प्रकार उन राजपुत्रोंको आशीर्वाद दिये । वाल्मीकि मुनिकी बनाई यह कथा बड़ी ही आश्चर्यप्रद है, ॥ २६ ॥ यह कवियोंका आश्रय है, यथाक्रम इसकी समाप्ति हुई है । सब प्रकारके गानमें निपुण उन दोनों राजपुत्रोंने इस कथाका गान किया ॥ २७ ॥ यह कथा आयु बढ़ानेवाली और प्रसन्नता देनेवाली है । उन दोनों गायकोंकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी । किसी समय ॥ २८ ॥ रास्तेमें रामचन्द्रने उनको देखा । कुश और लव दोनों भाइयोंको वे अपने घर लेआये ॥ २९ ॥ दिव्य सुवर्णके सिंहासनपर बैठे हुए उन शत्रुविजयी रामचन्द्रने पूजाके योग्य उन राजपुत्रोंकी पूजा की ॥ ३० ॥ भाइयों और मंत्रियोंके साथ रामचन्द्र वहाँ बैठे हुए थे, उन्होंने रूपवान् और विनयी दोनों भाइयोंको देखा ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसे रामचन्द्रने कहा—देवताके समान तेजस्वी इनसे आपलोग यह आख्यान सुनें ॥ ३२ ॥ सुन्दर अर्थ और पदवाले उस आख्यानको सुनानेके लिए रामचन्द्रने उनलोगोंसे कहा । उनलोगोंने भी मधुर तथा अपने चित्तके समान विशाल स्वरमें ॥ ३३ ॥ तन्त्री-लयसे युक्त उस प्रसिद्ध काव्यका गान प्रारम्भ किया, जिससे सबके शरीर, मन और हृदय प्रसन्न हुए । उस समाजने उस समय समझा कि श्रवणसुखही सब सुखोंसे बड़ा है ॥ ३४ ॥ ये दोनों कुश और लव मुनि हैं; पर इनमें राजाओंके लक्षण वर्तमान हैं और ये बड़े तपस्वी हैं । वह उत्तम आख्यान मेरे लिए भी कल्याणकारी है ऐसा आपलोग समझें ॥ ३५ ॥ उन दोनोंने रामचन्द्रकी आज्ञासे गानके नियमोंके अनुसार गाना प्रारम्भ किया । सभामें बैठे हुए रामचन्द्र भी बड़े ध्यानसे उसे सुनने लगे ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौथा सर्ग समाप्त ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ५

सर्वापूर्वमियं येषामासीत्कृत्स्ना वसुंधरा। प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम्॥१॥
येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः। षष्टिपुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन्॥२॥
इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्। महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥३॥
तदिदं वर्तयिष्यावः सर्वं निखिलमादितः। धर्मकामार्थसहितं श्रोतव्यमनसूयया॥४॥
कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्। निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्॥५॥
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता। मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्॥६॥
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी। श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा॥७॥
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता। मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः॥८॥
तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः। पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा॥९॥
कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्। सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः॥१०॥
सूतमागधसंबाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम्। उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम्॥११॥
वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम्। उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम्॥१२॥

प्रजापति (मनु) से लेकर जिन विजयी राजाओंके अधिकारमें यह समस्त पृथिवी थी, ॥ १ ॥ जिनके वंशमें सगर नामक राजा थे, जिन्होंने सागर खुदवाया था, जिनके साठ हजार पुत्र थे ॥ २ ॥ उन महात्मा इक्ष्वाकुवंशी राजाओंके वंशमें यह महान् कथा उत्पन्न हुई है जो रामायण नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ वह कथा प्रारम्भसे लेकर अन्ततक हमलोग कहेंगे, ईर्ष्या छोड़कर आपलोग सुनें, वह कथा धर्म, अर्थ और कामसे युक्त है ॥ ४ ॥

कोशल नामक एक बहुत बड़ा प्रान्त था, वह सरयूके तीरपर बसा हुआ था, वह धन-धान्यसे पूर्ण ॥ ५ ॥ उस कोशलप्रान्तमें लोकप्रसिद्ध अयोध्या नामक नगरी थी, जो नगरी मानवश्रेष्ठ मनुने स्वयं बनाई थी ॥ ६ ॥ वह महानगरी बारह योजन लम्बी थी, उसमें लम्बी चौड़ी सड़कें बनी थीं, वह नगरी बड़ी सुन्दर थी ॥ ७ ॥ उस नगरीकी प्रधान सड़कें बड़ी सुन्दर और लम्बी-चौड़ी थीं, उनपर प्रतिदिन जलका छिड़काव होता था और फूल बखेरे जाते थे। महाराज दशरथ उस नगरीके राजा थे, जिस प्रकार इन्द्र देवलोकके राजा हैं। महाराज दशरथ राज्य बढ़ानेवाले थे ॥ ९ ॥ उस नगरीमें किवाड़ लगे हुए थे और तोरणसे वह नगरी शोभित थी। नगरीके भीतर बाजार लगे थे, सब प्रकारके यन्त्र और शस्त्र (युद्धके समान) उस नगरीमें थे और शिल्पी भी उस नगरीमें वास करते थे ॥ १० ॥ सूत और मागध (स्तुति करनेवाले) उस नगरीमें बहुत थे वह नगरी बड़ी सुन्दर थी, बड़ी-बड़ी अटारियोंपर ध्वजाएँ लगी हुई थीं, सैकड़ों शतघ्नियाँ (एक अस्त्र जिससे सैकड़ों आदमी मरें) उस नगरीकी चहारदीवारीपर लगी हुई थीं ॥११॥ वेश्याएँ और नाटक करनेवालोंका दल भी उस नगरीमें जहाँ-तहाँ था, उसमें बगीचे थे, आमका तो वन ही था। नगरीके चारो ओर सालवृक्षकी चहारदीवारी थी ॥१२॥

दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम् । वाजिवारणसंपूर्णां गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा॥ १३॥
सामन्तराजसंघैश्च बलिकर्मभिरावृताम् । नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम्॥ १४॥
प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम् । कूटागारैश्च संपूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम्॥ १५॥
चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम् । सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥ १६॥
गृहगाढामविच्छिद्रां समभूमौ निवेशिताम् । शालितण्डुलसंपूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम्॥ १७॥
दुन्दुभीभिर्मृदङ्गैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा । नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम्॥ १८॥
विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि । सुनिवेशितवेश्मान्तां नरोत्तमसमावृताम्॥ १९॥
ये च बाणैर्न विध्यन्ति विविक्तमपरापरम् । शब्दवेध्यं च विततं लघुहस्ता विशारदाः॥ २०॥
सिंहव्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने । हन्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद्बाहुबलैरपि ॥ २१॥
तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः । पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा ॥ २२॥

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां द्विजोत्तमैर्वेदषडङ्गपारगैः ।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च केवलैः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

उसी नगरीमें राजाका किला था, उसके चारो ओर गहरी खाईं थीं, वहां तक शत्रुओंका पहुँचना कठिन था। हाथी, घोड़े, गौ, ऊँट, गधे आदि भी थे ॥ १३ ॥ महाराज दसरथके अधीन सामन्त राजा भी वहाँ रहते थे, वहाँ पशुपक्षियोंके खानेकी अच्छी व्यवस्था थी, और अनेक देशोंके रहनेवाले व्यापारी वहाँ रहा करते थे ॥ १४ ॥ राजाके महलोंमें रत्न जड़े हुए थे, वे पर्वतके समान मालूम होते थे, उस नगरीमें अनेक गुप्तगृह भी थे। वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीपुरीके समान थी ॥ १५ ॥ वह नगरी बड़े सुन्दर ढंगसे बसी हुई थी, उसके आठ कोने थे, वहां हजारों वेश्याएँ थीं, वहाँ सब प्रकारके रत्न थे और सतमहले मकान थे ॥ १६ ॥ बस्ती सघन थी, कहींसे अवकाश न था, समतल भूमिमें बसी हुई थी, वहाँ खूब धान होता था और ईखका रस भी अधिक होता था ॥१७॥ दुन्दुभी, मृदङ्ग, वीणा, पणव आदि बाजे वहाँ सदा बजा करते थे, वह नगरी पृथिवीमें सबसे श्रेष्ठ थी ॥१८॥ जिस प्रकार सिद्धों (एक प्रकारके देवता) ने तपस्याके द्वारा आकाशमें विमान प्राप्त किया है, उसी प्रकार इस नगरीके भी गृह बड़े ही सुन्दर बने थे, और उन गृहोंमें उत्तम पुरुष निवास करते थे ॥१९॥ जो दूसरोंके बाणोंसे नहीं बेधे जासकते थे, जो शब्दवेधी बाण चला सकते थे और जो बड़ी शीघ्रतासे बाण चला सकते थे। २०॥ वनमें मस्त विचरनेवाले सिंह, बाघ और शूकरोंको तीखे शस्त्रोंसे और बाहुबलसे भी मारनेवाले ॥२१॥ महारथी उस नगरीमें हजारों थे। राजा दशरथ उसी नगरीमें निवास करते थे ॥२२॥ वेदवेदाङ्गके ज्ञाता अग्निहोत्री और गुणी द्विजश्रेष्ठ उस नगरीमें निवास करते थे। वे हजारोंका दान करते थे, सत्यवादी थे, महर्षियोंके समान महात्मा भी वहाँ रहा करते थे ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पाँचवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ६

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः । दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥१॥
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी । महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२॥
बलवान्निहतामित्रो मित्रवान्विजितेन्द्रियः । धनैश्च संचयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ॥३॥
यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता । तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता ॥४॥
तेन सत्याभिसंधेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता । पालिता सा पुरी श्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती ॥५॥
तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः । नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥६॥
नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे । कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्॥७॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् । द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः॥८॥
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः । मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥९॥
नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् । नामृष्टो न नलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥१०॥
नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् । नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान्॥११॥
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः । कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥१२॥

उस अयोध्यापुरीमें राजा दसरथ राज्य करते थे, वे वेदोंके ज्ञाता थे, और सब प्रकारकी वस्तुओंके संग्रह करनेवाले थे। वे दूरन्देश, तेजस्वी और नगरवासी तथा राज्यकी प्रजाके प्रिय थे ॥ १ ॥ वे इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए थे, बड़े वीर थे, यज्ञ किया करते थे, धर्मात्मा थे, जितेन्द्रिय थे, वे राजर्षि महर्षियोंके समान थे और तीनों लोकोंमें उनकी प्रसिद्धि थी ॥२॥ वे बली थे, उन्होंने शत्रुओंको परास्त किया था, उनके बड़े अच्छे मित्र थे और वे जितेन्द्रिय थे। धन तथा अन्य वस्तुओंके संग्रहके कारण वे इन्द्र और कुबेरके समान थे ॥ ३ ॥ महातेजस्वी मनुने जिस प्रकार लोककी रक्षा की थी, उसी प्रकार महाराज दसरथ भी लोकके रक्षक थे ॥४॥ धर्म, अर्थ और कामका पालन करनेवाले वह सत्यप्रतिज्ञ राजा उस नगरीका पालन करते थे, जिस प्रकार इन्द्र अमरावतीपुरीका पालन करते हैं ॥५॥ उस श्रेष्ठ नगरीमें अनेक धर्मात्मा बहुश्रुत, मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक रहते थे, वे सब अपने-अपने धनसे सन्तुष्ट थे, लोभी न थे और सत्यवादी थे ॥६॥ उस नगरीमें ऐसा कोई नहीं था जिसका संचय आवश्यकतासे कम हो। वहाँ कोई गृहस्थ ऐसा नहीं था, जिसके मनोरथ पूरे न होते हों, सभीके घर गौ, घोड़े धन-धान्य आदिसे पूर्ण थे ॥७॥ कामी, कृपण और क्रूर मनुष्यका अयोध्यामें मिलना असम्भव था, वहां न तो कोई मूर्ख था और न कोई नास्तिक ॥८॥ वहांके सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा थे, संयमी थे, वे सभी शीलवान् और चरित्रवान् थे, वे सब महर्षियोंके समान शुद्ध थे ॥ ९ ॥ वहांके पुरुष कुण्डल, मुकुट और माला धारण करते थे, उनके पास काफी भोगकी सामग्रियाँ थीं, सभी स्नान करते थे, सभी शरीरमें सुगन्धित वस्तुओंका लेप करते थे ॥ १० ॥ वहांके वासी उत्तम भोजन करते थे, दान करते थे। वे अंगद (बिजायट), निष्क (गलेका गहना) और कंकण धारण करते थे, पर वे सबके सब आत्मवान् थे, उनका मन उनके वशमें था ॥११॥ वहाँवाले सभी अग्निहोत्री थे, सभी यज्ञ करनेवाले थे, कोई ओछे विचारका न था, कोई चोर न था, अयोध्यापुरीमें कोई चरित्रहीन न था और न कोई

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः। दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥१३॥
नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः। नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान्विद्यते क्वचित्॥१४॥
नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नाबहुश्रुतः। न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन॥१५॥
कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान्। द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान्१६
वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः। कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः ॥१७॥
दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः। सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे॥१८॥
क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः। शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः॥१९॥
सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता। यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमता ॥२०॥
योधानामग्निकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम्। संपूर्णा कृतविद्यानां गुहा केसरिणामिव ॥२१॥
काम्बोजविषये जातैर्बाह्लीकैश्च हयोत्तमैः। वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णा हरिहयोत्तमैः ॥२२॥
विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि। मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्वतोपमैः ॥२३॥
ऐरावतकुलीनैश्च महापद्मकुलैस्तथा। अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः॥२४॥
भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव भद्रमन्द्रमृगैस्तथा। भद्रमन्द्रैर्भद्रमृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी ॥२५॥
नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसंनिभैः। सा योजने द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते॥२६॥

वर्णशंकर ही था ॥१२॥ वहाँके जितेन्द्रिय ब्राह्मण अपने कर्ममें सदा लगे रहते थे, दान देते थे और विद्याध्ययन करते थे, दान लेना पसन्द नहीं करते थे ॥१३॥ वहां कोई नास्तिक न था, कोई झूठा न था, कोई ऐसा न था जो बहुश्रुत न हो, ईर्ष्या करनेवाला, असमर्थ और मूर्ख वहां कोई न था ॥ १४ ॥ वहां कोई ऐसा न था जो वेदके छहो अंगोंको न जानता हो, ऐसा कोई न था जो व्रत आदि न करता हो और जो बहुश्रुत न हो। दीन, पागल या किसी दुःखसे दुःखी वहाँ कोई न था ॥ १५ ॥ अयोध्यामें कोई स्त्री या पुरुष ऐसा नहीं था जो सुन्दर न हो और जो राजामें भक्ति न रखता हो ॥ १६ ॥ चारो वर्णोंके स्त्री और पुरुष देवता तथा अतिथिकी पूजा करनेवाले थे, वे सभी दानी थे, कृतज्ञ थे और पराक्रमी वीर थे ॥ १७ ॥ उस उत्तम नगरी के निवासी धर्म और सत्यके अनुयायी थे और दीर्घजीवी थे, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदिसे भरे-पूरे थे ॥ १८ ॥ वहाँके क्षत्रिय ब्राह्मणोंके अनुयायी थे, वैश्य क्षत्रियोंके अनुयायी थे, और शूद्र अपने कर्मका पालन करते थे, वे तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे ॥ १९ ॥ जिस प्रकार पहले बुद्धिमान् मनुने इस नगरीकी रक्षा की थी उसी प्रकार महाराज दसरथ भी इस नगरीकी रक्षा करते थे, ॥ २० ॥ अग्निके समान तेजस्वी, क्रोधी योद्धा इस नगरीमें रहते थे; वे अपनी विद्यामें बड़े प्रवीण थे। जिस प्रकार सिंह गुफाओंमें रहा करते हैं उसी प्रकार वे वीर भी इस नगरीमें रहा करते थे ॥ २१ ॥ काम्बोज, वाह्लीक और वनायु (अरब) देशोंमें होनेवाले घोड़ों तथा नदीसे उत्पन्न (कच्छी) घोड़ोंसे वह नगरी भरी थी ॥२२॥ विन्ध्य पर्वत और हिमवान् पर्वतमें उत्पन्न, पर्वतके समान ऊँचे, मतवाले और बलवान हाथी वहाँ थे ॥२३॥ ऐरावत, महापद्म, अंजन और वामन (ये चारों दिग्गज हैं) इनके वंशवाले भी हाथी वहाँ थे ॥ २४ ॥ भद्र, मन्द्र और मृग, भद्रमन्द्रमृग, भद्रमन्द्र, भद्रमृग और मृगमन्द्र जातिके भी

तां पुरीं स महातेजा राजा दशरथो महान्। शशास शमितामित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ॥२७॥
तां सत्यनामां दृढतोरणार्गलां गृहैर्विचित्रैरुपशोभितां शिवाम्।
पुरीमयोध्यां नृसहस्रसंकुलां शशास वै शक्रसमो महीपतिः ॥२८॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षष्ठः सर्गः ॥६॥

सप्तमः सर्गः ७

तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः। मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहिते रताः॥१॥
अष्टौ बभूवुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः। शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः ॥२॥
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमंत्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥३॥
ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ। वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे ॥४॥
सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः काश्यपोऽप्यथ गौतमः। मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः॥५॥
एतैर्ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमृत्विजस्तस्य पौर्वकाः। विद्याविनीता ह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः ॥६॥
श्रीमन्तश्च महात्मानः शास्त्रज्ञा दृढविक्रमाः। कीर्तिमन्तः प्रणिहिता यथावचनकारिणः ॥७॥
तेजःक्षमायशःप्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः। क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः ॥८॥

हाथी वहाँ थे ॥ २५ ॥ पर्वतके समान ऊँचे मतवाले इन हाथियोंसे वह नगरी सदा पूर्ण रहती थी। इस प्रकार वह दो योजन और भी लम्बी होगयी थी, उसका अयोध्या नाम सार्थक था, क्योंकि कोई शत्रु वहाँ युद्धके लिए नहीं आ सकता था ॥ २६ ॥ महातेजस्वी राजा दशरथ शत्रुओंको परास्त करके उस नगरीका शासन करते थे, जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रोंका शासन करते हैं ॥२७॥ उस नगरीका अयोध्या नाम यथार्थ था, तोरण और अर्गला (झिल्ली, किवाड़ बन्द करनेकी) दृढ़ थे, उसमें बड़े सुन्दर-सुन्दर घर थे, वह मंगलमय थी। वहाँ हजारों मनुष्य रहते थे, इन्द्रके समान राजा दशरथ उस नगरीका पालन करते थे ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छठाँ सर्ग समाप्त ॥६॥

उस महात्मा इक्ष्वाकुवंशी राजाके मन्त्री बड़े गुणी थे, वे गुप्त बातें जानते थे, उनकी रक्षा करते थे, राजाके अभिप्राय समझते थे और राजाके कल्याण करनेमें तत्पर रहा करते थे ॥ १ ॥ उस यशस्वी वीरके आठ मन्त्री थे, वे सभी शुद्ध थे और राजकार्योंमें प्रेम रखते थे ॥ २ ॥ उन मन्त्रियोंके नाम ये थे—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र। सुमन्त्र राजाके सब प्रयोजनोंको जानते थे, वे प्रधान मन्त्री थे ॥३॥ वसिष्ठ और वामदेव नामक दो ऋषि राजाके ऋत्विज (धर्म-कार्य करनेवाले) थे, वे राजाके बड़े प्रिय थे, इनके अतिरिक्त और ऋषि भी सहकारी थे ॥४॥ सुयज्ञ, जाबालि काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, दीर्घायु, कात्यायन ये ऋषि भी राजाके ऋत्विज थे ॥५॥ ये सब मन्त्री राजाकी परम्परासे आये थे, ये विद्वान लज्जाशील, प्रवीण और जितेन्द्रिय थे ॥६॥ सभी श्रीमान् थे, महात्मा थे, शास्त्रज्ञ थे, विक्रमी थे, कीर्तिमान थे, सावधान थे, और जो कहें वही करनेवाले थे ॥७॥ सभी तेजस्वी सभी क्षमाशील और सभी यशस्वी थे, सभी हँसकर बोलते थे, क्रोधसे

तेषामविदितं किंचित्स्वेषु नास्ति परेषु वा । क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम् ॥९॥
कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः । प्राप्तकालं यथा दण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि ॥१०॥
कोशसंग्रहणे युक्ता बलस्य च परिग्रहे । अहितं चापि पुरुषं न हिंस्युरविदूषकम् ॥११॥
वीराश्च नियतोत्साहा राजशास्त्रमनुष्ठिताः । शुचीनां रक्षितारश्च नित्यं विषयवासिनाम् ॥१२॥
ब्रह्मक्षत्रमहिंसन्तस्ते कोशं समपूरयन् । सुतीक्ष्णदण्डाः संप्रेक्ष्य पुरुषस्य बलाबलम् ॥१३॥
शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां संप्रजानताम् । नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित् ॥१४॥
क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः । प्रशान्तं सर्वमेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत् ॥१५॥
सुवाससः सुवेषाश्च ते च सर्वे शुचिव्रताः । हितार्थाश्च नरेन्द्रस्य जाग्रतो नयचक्षुषा ॥१६॥
गुरोर्गुणगृहीताश्च प्रख्याताश्च पराक्रमैः । विदेशेष्वपि विज्ञाताःसर्वतो बुद्धिनिश्चयाः ॥१७॥
अभितो गुणवन्तश्च न चासन्गुणवर्जिताः । संधिविग्रहतत्त्वज्ञाः प्रकृत्या संपदान्विताः ॥१८॥
मन्त्रसंवरणे शक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु । नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः ॥१९॥
ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघः । उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशाद्वसुन्धराम् ॥२०॥
अवेक्षमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रक्षयन् । प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन् ॥२१॥

या किसी अपने मतलबके लिए वे असत्य नहीं बोलते थे ॥८॥ अपने राज्य तथा पर-राज्यकी कोई बात उनकी अज्ञात न थी, जो काम होगये हैं और जो होनेवाले हैं तथा दूसरे राज्यके गुप्तदूतोंकी गुप्त बातें भी वे जानते थे ॥९॥ वे व्यवहारमें बड़े दक्ष थे, मित्रतामें पक्के थे, समय आनेपर शास्त्रके अनुसार वे अपने पुत्रोंको भी दण्ड दे सकते थे ॥१०॥ वे खजाना और सेना बढ़ानेमें तत्पर रहा करते थे, अपने प्रति बुरे विचार रखनेवाला भी पुरुष यदि अपनी प्रत्यक्ष कोई हानि न करता हो तो उसको वे दण्ड न देते थे ॥ ११ ॥ वे वीर थे, उत्साही थे, राजनीतिके पण्डित थे, राज्यमें रहनेवाले सज्जनोंके रक्षक थे, ब्राह्मण और क्षत्रिय को पीड़ा न देकर वे खजाना भरते थे । वे कड़ा दण्ड देते थे, पर दण्डनीयके बलाबलको देखकर, जो जैसे दण्डके योग्य होता था उसको वैसाही दण्ड देते थे ॥ १३ ॥ वे सब मन्त्री पवित्रचेता थे, एक विचारके थे, एक दूसरेकी बातें जानते थे । उस नगरमें तथा राज्यमें कोई भी मनुष्य झूठ बोलनेवाला न था ॥ १४ ॥ उस नगरमें कोई भी ऐसा दुष्ट न था जो दूसरेकी स्त्रीको बुरी निगाहसे देखे । वह समस्त राज्य तथा नगर सुखी था ॥ १५ ॥ वहाँ वाले सुन्दर वस्त्र पहनते थे, सुन्दर वेष रखते थे और शुद्ध आचार-विचार रखते थे और प्रसिद्ध न्यायी उस राजाके वे हितेच्छु थे ॥१६॥ वे श्रेष्ठ गुण ग्रहण करते थे, प्रसिद्ध पराक्रमी थे, विदेशमें भी उनकी प्रसिद्धि थी, तथा उनके विचार निश्चित होते थे ॥ १७ ॥ वे सभी तरहसे गुणवान् थे, कोई गुणहीन न था, सन्धि-विग्रहके रहस्योंको जाननेवाले थे, प्रजा उनमें अनुरक्त थी और वे धन-धान्यसे युक्त थे ॥ १८ ॥ किसी सलाहको गुप्त रखनेमें वे बड़े प्रवीण थे और सूक्ष्म विचार करना जानते थे, नीति-शास्त्र के बड़े पण्डित थे और प्रियवादी थे ॥ १९ ॥ पापहीन राजा दशरथके वे मन्त्री थे और ऐसे गुणी थे, उन्हींके साथ राजा राज्यका पालन करते थे ॥ २० ॥ गुप्त दूतोंके द्वारा वे प्रजाके दुःख-सुख जाना करते थे, धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करते थे, और अधर्म का नाश करते थे ॥ २१ ॥ वे तीनों लोकोंमें

विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु वदान्यः सत्यसङ्गरः । स तत्र पुरुषव्याघ्रः शशास पृथिवीमिमाम् ॥२२॥
नाध्यगच्छद्विशिष्टं वा तुल्यं वा शत्रुमात्मनः । मित्रवान्नतसामन्तः प्रतापहतकण्टकः ॥
स शशास जगद्राजा दिवि देवपतिर्यथा ॥ २३ ॥

तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रहिते निविष्टैर्वृतोऽनुरक्तैः कुशलैः समर्थैः ।
स पार्थिवो दीप्तिमवाप युक्तस्तेजोमयैर्गोभिरिवोदितोऽर्कः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ८

तस्य चैवंप्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः । सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः ॥१॥
चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः । सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम् ॥२॥
स निश्चितां मतिं कृत्वा यष्टव्यमिति बुद्धिमान् । मन्त्रिभिः सह धर्मात्मा सर्वैरपि कृतात्मभिः ॥३॥
ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तम । शीघ्रमानय मे सर्वान्गुरूंस्तान्सपुरोहितान् ॥४॥
ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः । समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् ॥५॥
सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् । पुरोहितं वसिष्ठं च ये चाप्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥६॥
तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा । इदं धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥७॥

दाता तथा सत्यप्रतिज्ञ प्रसिद्ध थे, वे ही पुरुषसिंह इस पृथिवीका शासन करते थे ॥२२॥ समान बलवाला या अधिक बली कोई उनका शत्रु न था, हां उनके सच्चे मित्र थे, अधीनके राजा उनमें प्रेम रखते थे, उनके प्रतापसे छोटे-छोटे शत्रु आप ही दब गये थे, वे राजा पृथिवीका शासन करते थे जिस प्रकार देवलोकका शासन इन्द्र करते हैं ॥२३॥ उन उत्तम सलाह देनेवाले अनुरागी, प्रवीण और शक्तिमान् मन्त्रियोंके साथ राजा बड़ेही प्रतापी मालूम होते थे, जिस प्रकार अपनी उज्ज्वल किरणोंसे उदित सूर्य ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सातवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

राजा दशरथ ऐसे प्रभावशाली थे, धर्मात्मा थे, पर वे पुत्रके लिए सदा दुःखित रहा करते थे, उनके कोई पुत्र न था जिससे आगे वंश चलनेकी संभावना होती ॥ १ ॥ महात्मा राजाने विचारकर निश्चित किया कि पुत्रके लिए अश्वमेधयज्ञ मैं करूं ॥ २ ॥ बुद्धिमान् राजाने यज्ञ करनेका विचार निश्चित किया और अपने बुद्धिमान मन्त्रियोंसे भी सम्मति ली ॥ ३ ॥ राजाने सुमन्त्रसे कहा—हे मन्त्रिश्रेष्ठ, मेरे गुरुओं और पुरोहितोंको शीघ्र बुलाइए ॥ ४ ॥ शीघ्रता करनेवाले सुमन्त्र बहुत शीघ्रही उन वेदके ज्ञाता गुरुओं और पुरोहितोंको बुला लाये ॥ ५ ॥ सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, पुरोहित वसिष्ठ तथा अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वे बुला लाये ॥ ६ ॥ धर्मात्मा राजा दशरथने उन सबकी पूजा की और वे

मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम् । तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ॥८॥
तदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । कथं प्राप्स्याम्यहं कामं बुद्धिरत्र विचिन्त्यताम् ॥९॥
ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन् । वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखेरितम् ॥१०॥
ऊचुश्च परमप्रीताः सर्वे दशरथं वचः । संभाराः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥११॥
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । सर्वथा प्राप्स्यसे पुत्रानभिप्रेतांश्च पार्थिव ॥१२॥
यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता । ततस्तुष्टोऽभवद्राजा श्रुत्वैतद्द्विजभाषितम् ॥१३॥
अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षव्याकुललोचनः । संभाराः संभ्रियन्तां मे गुरूणां वचनादिह ॥१४॥
समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥१५॥
शान्तयश्चापि वर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि । शक्यः प्राप्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता ॥१६॥
नापराधो भवेत्कष्टो यद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे । छिद्रं हि मृगयन्ते स्म विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः ॥१७॥
विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति । तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते ॥१८॥
तथा विधानं क्रियतां समर्थाः साधनेष्विति । तथेति चाब्रुवन्सर्वे मन्त्रिणः प्रतिपूजिताः ॥१९॥
पार्थिवेन्द्रस्य तद्वाक्यं यथापूर्वं निशम्य ते । तथा द्विजास्ते धर्मज्ञा वर्धयन्तो नृपोत्तमम् ॥२०॥

धर्मार्थ-युक्त यह कोमल वचन बोले ॥७॥ पुत्रके लिए मैं बहुतही दुःखित रहा करता हूँ, मुझे थोड़ा भी सुख नहीं है, इस कारण पुत्रके लिए मैं अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ ॥ ८ ॥ मैं वह शास्त्रीय विधानके अनुसार करना चाहता हूँ । कृपाकर बतलाइए कि किस प्रकार से मेरी कामना पूरी होगी । ॥ ९ ॥ राजा दशरथने जो विचार प्रकट किये थे उनकी ब्राह्मणोंने बड़ी प्रशंसा की ॥ १० ॥ वे सब अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—सामग्रियाँ एकत्र करवाइए, और घोड़ा छोड़ दीजिए ॥ ११ ॥ सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाइए, निश्चय आप पुत्र पावेंगे और आपके अन्य मनोरथ भी पूरे होंगे ॥ १२ ॥ क्योंकि आपने पुत्र-प्राप्तिके लिए जो उपाय निश्चित किये हैं वे धर्मानुकूल हैं । ब्राह्मणोंकी बात सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ प्रसन्नताके कारण राजाकी आँखें जलसे भर गयीं । उन्होंने मन्त्रियोंसे कहा-गुरुओंकी आज्ञाके अनुसार आप लोग सामग्री एकत्र कीजिए ॥ १४ ॥ घोड़ा छोड़ दीजिए, उसकी रक्षाके लिए वीरोंको नियुक्त कीजिए, उपाध्यायको भी साथ जाने दीजिए, और सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञके लिए भूमि नियत कीजिए ॥ १५ ॥ शास्त्र और पद्धतिके अनुसार विघ्न दूर करनेके लिए शान्ति प्रयोग किये जायँ, ऐसे यज्ञका सम्पादन सब राजाओंके लिए सम्भव होसकता था ॥ १६ ॥ यदि इसमें अशुद्धि (क्रिया में अशुद्धि) होनेका भय न होता और कठिनता न होती, क्योंकि ब्रह्म-राक्षस और यज्ञ-कर्ता विद्वान् । त्रुटियाँ देखा करते हैं और त्रुटियोंके होनेपर यज्ञको नष्ट-भ्रष्ट करदेते हैं ॥ १७ ॥ अविधिपूर्वक यज्ञका कर्ता शीघ्रही नष्ट होजाता है, उसे फल नहीं होता इसलिए आपलोग ऐसा उपाय करें जिससे मेरा यह यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त हो ॥ १८ ॥ राजाने मंत्रियोंका सम्मान करके कहा—आपलोग निपुण हैं, ऐसा कीजिए जिसमें सब सामग्रियाँ इकट्ठी हो जायँ, कोई त्रुटि न रहने पावे । मंत्रियोंने 'हाँ' कहकर राजाकी आज्ञा स्वीकृत की ॥ १९ ॥ धर्म जाननेवाले ब्राह्मणोंने राजाकी सब बातें यथावत् सुनीं और राजाके कल्याणके लिए उन

अनुज्ञातास्ततः सर्वे पुनर्जग्मुर्यथागतम् । विसर्जयित्वा तान्विप्रान्सचिवानिदमब्रवीत् ॥२१॥
ऋत्विग्भिरुपसंदिष्टो यथावत्क्रतुराप्यताम् । इत्युक्त्वा नृपशार्दूलःसचिवान्समुपस्थितान्॥२२॥
विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः । ततः स गत्वा ताः पत्नीर्नरेन्द्रो हृदयंगमाः ॥२३॥
उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येऽहं सुतकारणात् । तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम् ॥
मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ९

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् । श्रूयतां तत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम् ॥१॥
ऋत्विग्भिरुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मया श्रुतः । सनत्कुमारो भगवान्पूर्वं कथितवान्कथाम् ॥२॥
ऋषीणां संनिधौ राजंस्तव पुत्रागमं प्रति । काश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुतः॥३॥
ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति । स वने नित्यसंवृद्धो मुनिर्वनचरः सदा ॥४॥
नान्यं जानाति विप्रेन्द्रो नित्यं पित्रानुवर्तनात् । द्वैविध्यं ब्रह्मचर्यस्य भविष्यति महात्मनः ॥५॥
लोकेषु प्रथितं राजन्विप्रैश्च कथितं सदा । तस्यैवं वर्तमानस्य कालः समभिवर्तत ॥६॥

लोगोंने उन्हें आशीर्वाद दिये ॥ २० ॥ राजासे आज्ञा लेकर वे ब्राह्मण अपने-अपने स्थानको गये, उन ब्राह्मणोंको विदा करके राजा मंत्रियोंसे बोले, ॥ २१ ॥ ऋत्विक् (यज्ञ करनेवाले) की आज्ञाके अनुसार आपलोग यज्ञ की सामग्रियाँ एकत्र करें । ऐसा कहकर राजश्रेष्ठ दशरथ आये हुए मन्त्रियोंको ॥ २२ ॥ विदा करके महलमें गए । अपनी स्त्रियोंसे वे ॥ २३ ॥ बोले—मैं पुत्रके लिए यज्ञ करूँगा, आप लोग दीक्षा लें, यज्ञके लिए नियम ग्रहण करें, इस प्रिय वचनके सुननेसे उनलोगोंके मुख-कमल खिल उठे, जिस तरह सरदी बीतनेपर कमल खिल जाता है ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका आठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ८ ॥

राजाके इस विचारको सुनकर सुमन्त्रने एकान्तमें कहा—महाराज सुनिए, जो बात पहले होचुकी है और जो मैंने पुराणोंमें सुनी है, आप भी सुनें ॥ १ ॥ यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा मैंने यह पुरानी कथा सुनी है। भगवान सनत्कुमारने यह कथा कही थी ॥ २ ॥ ऋषियोंसे आपके पुत्र उत्पन्न होनेकी कथा उन्होंने कही थी । काश्यपके पुत्र विभाण्डक हैं जो प्रसिद्ध हैं ॥ ३ ॥ ऋष्यशृंग नामसे प्रसिद्ध उनका पुत्र होगा । वह वनमें ही पालित होगा और सदा वनमें ही विचरण करेगा ॥ ४ ॥ वह अपने पिताकेही साथ रहेगा, इस कारण वह किसी दूसरेको न जान सकेगा । वह शरीर और मन दोनोंसे ब्रह्मचर्यका पालन करेगा ॥ ५ ॥ जो ब्रह्मचर्य प्रसिद्ध है और ब्राह्मण जिसका उपदेश करते हैं उस ब्रह्मचर्यका पालन करेगा । इस प्रकार ब्रह्मचर्य पालन करनेके कारण उसके विवाहका समय बीत जायगा ॥ ६ ॥ वह

अग्निं शुश्रूषमाणस्य पितरं च यशस्विनम् । एतस्मिन्नेव काले तु रोमपादः प्रतापवान् ॥७॥
अङ्गेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः । तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा ॥८॥
अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा । अनावृष्ट्यां तु वृत्तायां राजा दुःखसमन्वितः ॥९॥
ब्राह्मणाञ्छ्रुतसंवृद्धान्समानीय प्रवक्ष्यति । भवन्तः श्रुतकर्माणो लोकचारित्रवेदिनः ॥१०॥
समादिशन्तु नियमं प्रायश्चित्तं यथा भवेत् । इत्युक्तास्ते ततो राज्ञा सर्वे ब्राह्मणसत्तमाः ॥११॥
वक्ष्यन्ति ते महीपालं ब्राह्मणा वेदपारगाः । विभाण्डकसुतं राजन्सर्वोपायैरिहानय ॥१२॥
आनाय्य तु महीपाल ऋष्यशृङ्गं सुसत्कृतम् । विभाण्डकसुतं राजन्ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥१३॥
प्रयच्छ कन्यां शान्तां वै विधिना सुसमाहितः । तेषां तु वचनं श्रुत्वा राजा चिन्तां प्रपत्स्यते ॥
केनोपायेन वै शक्यमिहानेतुं स वीर्यवान् ॥ १४ ॥
ततो राजा विनिश्चित्य सह मन्त्रिभिरात्मवान् । पुरोहितममात्यांश्च प्रेषयिष्यति सत्कृतान् ॥१५॥
ते तु राज्ञो वचः श्रुत्वा व्यथितावनताननाः । न गच्छेम ऋषेर्भीता अनुनेष्यन्ति तं नृपम् ॥१६॥
वक्ष्यन्ति चिन्तयित्वा ते तस्योपायांश्च तान्क्षमान् । आनेष्यामो वयं विप्रं न च दोषो भविष्यति ॥१७॥
एवमङ्गाधिपेनैव गणिकाभिर्ऋषेः सुतः । आनीतोऽवर्षयद्देवः शान्ता चास्मै प्रदीयते ॥१८॥
ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति । सनत्कुमारकथितमेतावद्व्याहृतं मया ॥१९॥

अग्नि और पिताकी सेवा करेगा। उसी समय अंगदेशमें रोमपाद नामका एक प्रतापी राजा ॥ ७ ॥ होगा, वह राजा बड़ा बली होगा। उसके अपराधोंके कारण उसके राज्यमें बड़ा ही भयानक ॥ ८ ॥ अवर्षण होगा, जिससे लोग भयभीत हो जायँगे। इस अवर्षणसे राजा भी बड़े दुःखी होंगे ॥ ९ ॥ बड़े-बड़े ज्ञानी ब्राह्मणोंको बुलाकर राजा उनसे पूछेगा, आपलोग मेरे कर्म जानते हैं जिससे यह अवर्षण हुआ है, आपलोगोंको लोक-व्यवहारका भी ज्ञान है ॥ १० ॥ आपलोग मेरे लिए नियम बतलावें, प्रायश्चित्त बतलावें, राजाके ऐसा कहनेपर वे सब ॥ ११ ॥ वेदज्ञ ब्राह्मण राजासे यह कहेंगे कि किसी उपायसे विभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्यशृंगको आप यहाँ ले आवें ॥ १२ ॥ उनको (ऋष्यशृंगको) सत्कारपूर्वक यहाँ बुलवाइए ॥ १३ ॥ सावधान होकर अपनी शान्ता नामकी कन्या उन्हें विधिपूर्वक दान दीजिए। ब्राह्मणोंकी यह बात सुनकर राजा चिन्तित होजायँगे कि वे शक्तिमान ऋष्यशृंग किस उपायसे यहाँ लाए जासकते हैं ॥ १४ ॥ पुनः बुद्धिमान राजा अपने मन्त्रियोंके साथ विचार करेंगे और अपने पुरोहित तथा मन्त्रियोंको ऋष्यशृंगको ले आनेके लिए भेजेंगे ॥ १५ ॥ वे राजाकी इस ऋष्यशृङ्गको ले आनेकी आज्ञाको सुनकर बहुत दुःखी होंगे, उनका सिर झुक जायगा, ऋषिके भयसे भीत होकर वे राजासे प्रार्थना करेंगे कि हमलोग वहाँ न जायँगे ॥१६॥ और सोच-विचारकर ऐसे उपाय बतलावेंगे जिनसे मुनि यहां (राजधानीमें) आसकें। वे कहेंगे, इस उपायसे हमलोग ऋषिको ला सकेंगे और कोई अपराध भी न होगा ॥१७॥ इस प्रकार वेश्याओंको भेजकर राजा ऋषिको अपने नगरमें बुलवावेंगे, उनके आनेसे वृष्टि होगी और शान्ता नामकी अपनी कन्या राजा उन ऋष्यशृङ्ग तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होनेके विधान करेंगे। यह बात सनत्कुमारकी कही हुई मैंने आपसे कही ॥१९॥ दशरथ इस बात

अथ हृष्टो दशरथः सुमन्त्रं प्रत्यभाषत । यथर्ष्यशृङ्गस्त्वानीतो येनोपायेन सोच्यताम्॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे नवमः सर्गः ॥९॥

दशमः सर्गः १०

सुमन्त्रश्चोदितो राज्ञा प्रोवाचेदं वचस्तदा । यथर्ष्यशृङ्गस्त्वानीतो येनोपायेन मन्त्रिभिः ॥
तन्मे निगदितं सर्वं शृणु मे मन्त्रिभिः सह ॥ १ ॥
रोमपादमुवाचेदं सहामात्यः पुरोहितः । उपायो निरपायोऽयमस्माभिरभिचिन्तितः॥२॥
ऋष्यशृङ्गो वनचरस्तपःस्वाध्यायसंयुतः । अनभिज्ञस्तु नारीणां विषयाणां सुखस्य च ॥३॥
इन्द्रियार्थैरभिमतैर्नरचित्तप्रमाथिभिः । पुरमानाययिष्यामः क्षिप्रं चाध्यवसीयताम्॥ ४ ॥
गणिकास्तत्र गच्छन्तु रूपवत्यः स्वलंकृताः । प्रलोभ्य विविधोपायैरानेष्यन्तीह सत्कृताः॥ ५ ॥
श्रुत्वा तथेति राजा च प्रत्युवाच पुरोहितम् । पुरोहितो मन्त्रिणश्च तदा चक्रुश्च ते तथा ॥६॥
वारमुख्यास्तु तच्छ्रुत्वा वनं प्रविविशुर्महत् । आश्रमस्याविदूरेऽस्मिन्यत्नं कुर्वन्ति दर्शने ॥७॥
ऋषेः पुत्रस्य धीरस्य नित्यमाश्रमवासिनः । पितुः स नित्यसंतुष्टो नातिचक्राम चाश्रमात्॥८॥
न तेन जन्मप्रभृति दृष्टपूर्वं तपस्विना । स्त्री वा पुमान्वा यच्चान्यत्सत्त्वं नगरराष्ट्रजम्॥९॥

को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सुमन्त्रसे कहा—ऋष्यशृङ्ग किस उपायसे आवेंगे, वह बतलाइए ॥२०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका नवाँ सर्ग समाप्त ॥ ९ ॥

राजाके पूछनेपर सुमन्त्रने यह कहा-राजा रोमपादने अपने मन्त्रियोंसे परामर्श करके जिस उपाय-से ऋष्यशृङ्गको अपनी राजधानीमें बुलाया था वह आप अपने मन्त्रियोंके साथ सुनें, मैं कहता हूँ ॥ १ ॥ मन्त्रियोंके साथ पुरोहितने राजा रोमपादसे कहा कि हमलोगोंने ऐसा उपाय सोचा है जो निष्फल नहीं हो सकता ॥ २ ॥ ऋष्यशृङ्ग वनवासी हैं, वे तपस्या और वेदाध्ययनमें लगे रहते हैं, स्त्रीसुख तथा अन्य विषयसुखका ज्ञान उन्हें नहीं है ॥३॥ इन्द्रियोंको प्रिय मालूम होनेवाले विषयोंसे मनुष्योंका मन व्यथित होजाता है, वे उन विषयोंके वशमें होजाते हैं । इस प्रकार हमलोग ऋष्यशृङ्गको भी ला सकेंगे, आप इसीका प्रबन्ध करें ॥ ४ ॥ सुन्दरी वेश्याएँ अलंकृत होकर वहाँ जायँ और अनेक उपायोंसे उन्हें वशमें करके यहाँ ले आवें, ले आनेपर वेश्याओंको इनाम दिया जायगा ॥ ५ ॥ सुनकर राजाने भी पुरोहितके बतलाये उपाय करनेकी सम्मति दी, पुरोहित और मन्त्रियोंने वे सब उपाय किये ॥६॥ वेश्याएँ, मन्त्री और पुरोहितके कहनेसे,उस बड़े वनमें गयीं और महर्षिके आश्रमसे थोड़ीही दूरपर ठहरकर मुनिको देखनेका प्रयत्न करने लगीं ॥७॥ वह ऋषिपुत्र बड़ाही धीर था, सदा आश्रममेंही रहा करता था, वह अपने पितासे बड़ा प्रसन्न रहा करता था, इस कारण वह आश्रमके बाहर निकलता ही न था ॥ ८ ॥ उस तपस्वीने जन्मसे लेकर शहर या गाँवमें उत्पन्न होनेवाले किसी प्राणीको नहीं

ततः कदाचित्तं देशमाजगाम यदृच्छया। विभाण्डकसुतस्तत्र ताश्चापश्यद्वराङ्गनाः॥१०॥
ताश्चित्रवेषाः प्रमदा गायन्त्यो मधुरस्वरम्। ऋषिपुत्रमुपागम्य सर्वा वचनमब्रुवन् ॥११॥
कस्त्वं किं वर्तसे ब्रह्मञ्ज्ञातुमिच्छामहे वयम्। एकस्त्वं विजने दूरे वने चरसि शंस नः ॥१२॥
अदृष्टरूपास्तास्तेन काम्यरूपा वने स्त्रियः। हार्दात्तस्य मतिर्जाता आख्यातुं पितरं स्वकम्॥१३॥
पिता विभाण्डकोऽस्माकं तस्याहं सुत औरसः। ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातं नाम कर्म च मे भुवि॥१४॥
इहाश्रमपदोऽस्माकं समीपे शुभदर्शनाः। करिष्ये वोऽत्र पूजां वै सर्वेषां विधिपूर्वकम्॥१५॥
ऋषिपुत्रवचः श्रुत्वा सर्वासां मतिरास वै। तदाश्रमपदं द्रष्टुं जग्मुः सर्वास्ततोऽङ्गनाः ॥१६॥
गतानां तु ततः पूजामृषिपुत्रश्चकार ह। इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं मूलं फलं च नः ॥१७॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजां सर्वा एव समुत्सुकाः। ऋषेर्भीताश्च शीघ्रं तु गमनाय मतिं दधुः ॥१८॥
अस्माकमपि मुख्यानि फलानीमानि हे द्विज। गृहाण विप्र भद्रं ते भक्षयस्व च मा चिरम्॥१९॥
ततस्तास्तं समालिङ्ग्य सर्वा हर्षसमन्विताः। मोदकान्प्रददुस्तस्मै भक्ष्यांश्च विविधाञ्शुभान्॥२०॥
तानि चास्वाद्य तेजस्वी फलानीति स्म मन्यते। अनास्वादितपूर्वाणि वने नित्यनिवासिनाम्॥२१॥
आपृच्छ्य च तदा विप्रं व्रतचर्यां निवेद्य च। गच्छन्ति स्मापदेशात्ता भीतास्तस्य पितुःस्त्रियः॥२२॥

देखा था, वनवासियोंको छोड़कर अन्य स्त्री-पुरुषोंको भी उसने नहीं देखा था ॥९॥ एक बार अकस्मात् विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्ग वहां आये, जहाँ वेश्याएँ ठहरी थीं और वहाँ उन्होंने उन वेश्याओंको देखा ॥१०॥ उनके वेश बड़ेही सुन्दर थे, वे मीठे स्वरमें गारहीं थीं, ऋषिपुत्रके पास आकर वे बोलीं, ॥ ११ ॥ ब्रह्मन्, आप कौन हैं, क्या करते हैं—यह हमलोग जानना चाहती हैं, इस दूर वनमें आप अकेले भ्रमण करते हैं, हमलोगोंसे कहिए ॥ १२ ॥ ऋष्यशृङ्गने वैसी सुन्दर स्त्रियां नहीं देखी थीं, आज वनमें वैसी स्त्रियोंको देखकर उनके मनमें उनके प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ और अपने पिताका परिचय देनेके लिए वे उद्यत हुए ॥ १३ ॥ मेरे पिताका नाम विभाण्डक है, मैं उन्हींसे उत्पन्न हुआ हूँ। मैं ऋष्यशृङ्ग नामसे प्रसिद्ध हूँ, मेरे तपस्या आदि कर्म भी प्रसिद्ध हैं ॥ १४ ॥ सुन्दरियो, यहीं मेरा आश्रम है, मैं वहां आप सब लोगोंकी विधिपूर्वक पूजा करूँगा ॥ १५ ॥ ऋषिपुत्रकी बातें सुनकर उन सबकी इच्छा हुई और वे स्त्रियां उनका आश्रम देखनेके लिए वहां गयीं ॥ १६ ॥ वहां जानेपर ऋषिपुत्रने उनलोगोंकी पूजा की, अर्घ्य, पाद्य, फल मूल उनको दिये ॥ १७ ॥ ऋषिपुत्रकी पूजा लेकर वे स्त्रियां बहुत उत्सुक हुईं, वे ऋषिसे डर रहीं थीं, इसलिए उन लोगोंने शीघ्र वहाँसे जानेकी इच्छा प्रकट की ॥ १८ ॥ उनलोगोंने कहा—महाराज, हमलोगोंके भी ये उत्तम फल हैं, इन्हें, आप लें और शीघ्र खाजायँ, विलम्ब न करें ॥ १९ ॥ फिर उन सब स्त्रियोंने प्रसन्न होकर उन ऋषिकुमारका आलिङ्गन किया, लड्डू तथा खानेकी और भी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ उन लोगोंने ऋषिपुत्रको दीं ॥ २० ॥ उन सब वस्तुओंको खाकर ऋषिपुत्रने समझा कि ये सब फल ही हैं, क्योंकि वे सदा वनमें रहते थे और इसके पहले उन्होंने ऐसी चीजें खाई भी न थीं ॥ २१ ॥ अपने व्रतानुष्ठानके बहानेसे उन स्त्रियोंने मुनिपुत्रसे जानेकी आज्ञा ली, क्योंकि वे स्त्रियाँ मुनिके पितासे

गतासु तासु सर्वासु काश्यपस्यात्मजो द्विजः । अस्वस्थहृदयश्चासीद्दुःखाच्च परिवर्तते ॥२३॥
ततोऽपरेद्युस्तं देशमाजगाम स वीर्यवान् । विभाण्डकसुतः श्रीमान्मनसा चिन्तयन्मुहुः॥२४॥
मनोज्ञा यत्र ता दृष्टा वारमुख्याः स्वलंकृताः । दृष्ट्वैव च ततो विप्रमायान्तं हृष्टमानसाः ॥२५॥
उपसृत्य ततः सर्वास्तास्तमूचुरिदं वचः । एह्याश्रमपदं सौम्य अस्माकमिति चाब्रुवन् ॥२६॥
चित्राण्यत्र बहूनि स्युर्मूलानि च फलानि च । तत्राप्येष विशेषेण विधिर्हि भविता ध्रुवम् ॥२७॥
श्रुत्वा तु वचनं तासां सर्वासां हृदयंगमम् । गमनाय मतिं चक्रे तं च निन्युस्तथा स्त्रियः ॥२८॥
तत्र चानीयमाने तु विप्रे तस्मिन्महात्मनि । ववर्ष सहसा देवो जगत्प्रह्लादयंस्तदा ॥२९॥
वर्षेणैवागतं विप्रं तापसं स नराधिपः । प्रत्युद्गम्य मुनिं प्रह्वः शिरसा च महीं गतः ॥३०॥
अर्घ्यं च प्रददौ तस्मै न्यायतः सुसमाहितः । वव्रे प्रसादं विप्रेन्द्रान्मा विप्रं मन्युराविशेत् ॥३१॥
अन्तःपुरं प्रवेश्यास्मै कन्यां दत्त्वा यथाविधि । शान्तां शान्तेन मनसा राजा हर्षमवाप सः॥३२॥
एवं स न्यवसत्तत्र सर्वकामैः सुपूजितः । ऋष्यशृङ्गो महातेजाः शान्तया सह भार्यया ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे दशमः सर्गः ॥१०॥
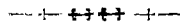
डर रही थीं ॥ २२ ॥ उन स्त्रियोंके चली जानेपर विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्गका मन दुखी हुआ, वे दुःखसे इधर-उधर घूमने लगे ॥ २३ ॥ दूसरे दिन विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्ग मनसे उन स्त्रियोंकी बातें सोचते हुए वहाँ आये, जहाँ उन्होंने उन स्त्रियोंको देखा था ॥ २४ ॥ अलङ्कारवती सुन्दरी स्त्रियोंको जहाँ उन्होंने देखा था, वहाँ आये । मुनिको आते हुए देखकर वे बहुत प्रसन्न हुईं ॥ २५ ॥ आगे जाकर उन लोगोंने मुनिसे कहा—महाराज, हमलोगोंके आश्रममें आइए ॥ २६ ॥ वहाँ अनेक प्रकारके उत्तम फलफूल मिलते हैं, वहाँ भी इसी तरहका सत्कार होता है, उसी तरह फल मूल मिलते हैं ॥ २७ ॥ उन सब स्त्रियोंके सुंदर वचन सुनकर मुनिपुत्र जानेके लिए तैयार होगये और वे स्त्रियाँ उनको लेकर आयीं ॥२८॥ उन महात्मा ब्राह्मणके उस राज्यमें आनेपर सहसा पानी बरसने लगा, जिससे सबलोग सुखी हुए, जगत् प्रसन्न हुआ ॥ २९ ॥ पानी बरसनेसे ही राजा रोमपादने जाना कि मुनि आगये । राजा आगे गये और भूमिष्ठ होकर उन्होंने प्रणाम किया ॥ ३० ॥ सावधान होकर विधिपूर्वक उन्होंने मुनिको अर्घ्य दिया और उन ऋषिसे वर माँगा, जिससे उन्हें क्रोध न हो, क्योंकि वे छलकरके यहाँ लाये गये थे ॥ ३१ ॥ राजा उनको अपने महलमें अपने साथ लेगये और विधिपूर्वक अपनी कन्या उन्होंने ऋषिको दी, शान्त चित्तसे शान्ता नामक कन्याको देकर राजा प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ इस प्रकार वे महातेजस्वी ऋष्यशृङ्ग अपनी शान्ता नामकी स्त्रीके साथ वहाँ रहने लगे, उन्हें सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हुईं ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकांडका दसवाँ सर्ग समाप्त ॥ १० ॥
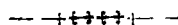
एकादशः सर्गः ११

भूय एव हि राजेन्द्र शृणु मे वचनं हितम् । यथा स देवप्रवरः कथयामास बुद्धिमान् ॥१॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातो भविष्यति सुधार्मिकः । नाम्ना दशरथो राजा श्रीमान्सत्यप्रतिश्रवः ॥२॥
अङ्गराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति । कन्या चास्य महाभागा शान्ता नाम भविष्यति॥३॥
पुत्रस्त्वङ्गस्य राज्ञस्तु रोमपाद इति श्रुतः । तं स राजा दशरथो गमिष्यति महायशाः ॥४॥
अनपत्योऽस्मि धर्मात्मञ्शान्ताभर्ता मम क्रतुम् । आहरेत त्वयाज्ञप्तः संतानार्थं कुलस्य च ॥५॥
श्रुत्वा राज्ञोऽथ तद्वाक्यं मनसा च विचिन्त्य च । प्रदास्यते पुत्रवन्तं शान्ताभर्तारमात्वान् ॥६॥
प्रतिगृह्य च तं विप्रं स राजा विगतज्वरः । आहरिष्यति तं यज्ञं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥७॥
तं च राजा दशरथो यशस्कामः कृताञ्जलिः । ऋष्यशृङ्गं द्विजश्रेष्ठं वरयिष्यति धर्मवित् ॥८॥
यज्ञार्थं प्रसवार्थं च स्वर्गार्थं च नरेश्वरः । लभते च स तं कामं द्विजमुख्याद्विशांपतिः॥९॥
पुत्राश्चास्य भविष्यन्ति चत्वारोऽमितविक्रमाः । वंशप्रतिष्ठानकराः सर्वभूतेषु विश्रुताः ॥१०॥
एवं स देवप्रवरः पूर्वं कथितवान्कथाम् । सनत्कुमारो भगवान्पुरा देवयुगे प्रभुः ॥११॥
स त्वं पुरुषशार्दूल समानय सुसत्कृतम् । स्वयमेव महाराज गत्वा सबलवाहनः ॥१२॥
सुमन्त्रस्य वचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथोऽभवत् । अनुमान्य वसिष्ठं च सूतवाक्यं निशाम्य च॥१३॥
सान्तःपुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः । वनानि सरितश्चैव व्यतिक्रम्य शनैः शनैः ॥१४॥

सुमन्त्रने राजासे पुनः कहा—महाराज, आप अपने हितकी वे बातें सुनिए, जो देवप्रवर बुद्धिमान सनत्कुमारने कही थीं ॥ १ ॥ उन्होंने कहा था, इक्ष्वाकुके कुलमें परमधार्मिक सत्यप्रतिज्ञ राजा दशरथ उत्पन्न होंगे ॥ २ ॥ अंगदेशके राजाके साथ उनकी मित्रता होगी, अंगराजको शान्ता नामकी एक श्रीमान भाग्यवती कन्या होगी ॥ ३ ॥ अङ्गदेशके राजपुत्रका नाम रोमपाद होगा, राजादशरथ उनके पास जायँगे ॥ ४ ॥ राजा दशरथ कहेंगे, महाराज मैं सन्तानहीन हूँ, शान्ताके पति ऋष्यशृङ्ग मेरा यज्ञ करावें आप उन्हें ऐसी आज्ञा दें, जिससे मेरे सन्तान हो और कुलकी रक्षा हो ॥ ५ ॥ राजा दशरथकी बात सुनकर तथा स्वयं विचारकर राजा रोमपाद, पुत्रवान् , शान्ताके पतिको भेजेंगे ॥६॥ ऋष्यशृङ्गको पानेसे राजा दशरथकी चिन्ता दूर होगी, वे प्रसन्नचित्त होकर यज्ञ करेंगे ॥ ७ ॥ द्विजश्रेष्ठ ऋष्यशृंगका राजा दशरथ वरण करेंगे अर्थात् यज्ञ करानेके लिए उन्हें चुनेंगे, धर्म और यशकी इच्छा रखनेवाले राजा दशरथ हाथ जोड़कर उनका वरण करेंगे ॥ ८ ॥ यज्ञ, पुत्र और स्वर्गके लिए राजा दशरथ उनका वरण करेंगे, उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा राजाके सभी मनोरथ पूरे होंगे ॥ ९ ॥ उन राजाके चार परम पराक्रमी पुत्र होंगे, उनसे राजाके वंशकी प्रतिष्ठा होगी (राजाका वंश चलेगा) और वे पुत्र सर्वत्र प्रसिद्ध होंगे ॥ १० ॥ उन देवश्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमारने ऐसी कथा पहले सतयुगमें कही थी ॥११॥ इस कारण हे पुरुषश्रेष्ठ, सेना-वाहन लेकर आप स्वयं जायँ और आदरपूर्वक उनको ले आवें ॥१२॥ सुमन्त्रकी बात सुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए, सूतकी कही बात उन्होंने वसिष्ठको सुनायी और उनकी सम्मति ली ॥ १३ ॥ वन नदियोंको धीरे-धीरे पार कर राजा दशरथ अपनी महारानियों

अभिचक्राम तं देशं यत्र वै मुनिपुंगवः । आसाद्य तं द्विजश्रेष्ठं रोमपादसमीपगम् ॥१५॥
ऋषिपुत्रं ददर्शाथो दीप्यमानमिवानलम् । ततो राजा यथान्यायं पूजां चक्रे विशेषतः ॥१६॥
सखित्वात्तस्य वै राज्ञः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । रोमपादेन चाख्यातमृषिपुत्राय धीमते ॥१७॥
सख्यं संबन्धकं चैव तदा तं प्रत्यपूजयत् । एवं सुसत्कृतस्तेन सहोषित्वा नरर्षभः ॥१८॥
सप्ताष्टदिवसान्राजा राजानमिदमब्रवीत् । शान्ता तव सुता राजन्सह भर्त्रा विशांपते ॥१९॥
मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम् । तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः ॥२०॥
उवाच वचनं विप्रं गच्छ त्वं सह भार्यया । ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा ॥२१॥
स नृपेणाभ्यनुज्ञातः प्रययौ सह भार्यया । तावन्योन्याञ्जलिं कृत्वा स्नेहात्संश्लिष्य चोरसा॥२२॥
ननन्दतुर्दशरथो रोमपादश्च वीर्यवान् । ततः सुहृदमापृच्छ्य प्रस्थितो रघुनन्दनः ॥२३॥
पौरेषु प्रेषयामास दूतान्वै शीघ्रगामिनः । क्रियतां नगरं सर्वं क्षिप्रमेव स्वलंकृतम्॥२४॥
धूपितं सिक्तसंमृष्टं पताकाभिरलंकृतम् । ततः प्रहृष्टाः पौरास्ते श्रुत्वा राजानमागतम्॥२५॥
तथा चक्रुश्च तत्सर्वं राज्ञा यत्प्रेषितं तदा । ततः स्वलंकृतं राजा नगरं प्रविवेश ह ॥२६॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्ह्रादैः पुरस्कृत्वा द्विजर्षभम् । ततः प्रमुदिताः सर्वे दृष्ट्वा वै नागरा द्विजम्॥२७॥

और मन्त्रियोंके साथ ऋष्यशृङ्गके पास गये ॥ १४ ॥ राजा उस स्थानपर पहुँचे जहाँ मुनि राजा रोमपादके आश्रयमें रहते थे ॥ १५ । राजाने अग्निके समान दीप्तिमान उस ऋषिपुत्रको देखा, तदनन्तर विधानपूर्वक उन्होंने ऋषिकी पूजा की ॥ १६ ॥ राजा रोमपाद और दशरथकी मित्रता थी, इस कारण प्रसन्नतापूर्वक राजा रोमपादने उन बुद्धिमान् ऋषिपुत्रसे ॥ १७ ॥ राजा दसरथके साथ अपनी मित्रता तथा सम्बन्धकी बात कही । राजा दशरथके सम्बन्धकी बात मालूम होनेपर उन्होंने राजा दसरथकी पूजा की । इस प्रकार ऋषिके द्वारा सत्कृत होनेपर राजा दशरथने ॥ १८ ॥ वहां अठारह दिन रहकर राजा रोमपादसे कहा कि, महाराज आपकी कन्या शान्ता अपने पतिके साथ ॥ १९ ॥ मेरे नगरमें चले, वहां बहुत बड़ा आवश्यक काम है । राजा रोमपादने मुनिपुत्रका वहां जाना स्वीकार किया ॥२० । राजा रोमपादने ऋषिपुत्रसे कहा कि आप अपनी स्त्रीके साथ राजा दशरथकी राजधानीमें जायँ । ऋष्यशृङ्गने भी जानेकी प्रतिज्ञा की ॥ २१ ॥ राजा रोमपादकी आज्ञा पाकर ऋष्यशृङ्ग जानेके लिए तयार हुए । जानेके समय रोमपाद और ऋषि दोनोंने आपसमें प्रणाम किया, परस्पर आलिङ्गन किया ॥२२॥ ऋष्यशृङ्ग राजा दशरथकी राजधानीमें जारहे हैं, इससे रोमपाद और राजा दसरथ दोनों प्रसन्न हुए, पुनः अपने मित्र रोमपादसे आज्ञा लेकर रघुनन्दन राजा दशरथने प्रस्थान किया ॥२३॥ राजा दशरथने तेज चलनेवाले दूत अपनी राजधानीमें नगर निवासियोंके पास भेजा और कहवाया कि शीघ्रही नगरको सजा दो ॥२४॥ राजा आगये हैं यह सुनकर नगरवासियोंने नगरमें पानीका छिड़काव किया, सुगन्ध धूप उन लोगोंने जलादी, पताकाएँ लगायीं, प्रसन्नतापूर्वक उन लोगोंने नगर सजाया ॥ २५ ॥ राजाने कहा था, नगरवासियोंने वैसाही नगर सजाया । राजाने सजे-सजाये नगरमें प्रवेश किया ॥२६॥ शंख, जैसा दुन्दुभी आदि मंगल वाद्य बजने लगे, ऋष्यशृङ्गको आगे करके राजाने नगरमें प्रवेश किया । नगरवासी मुनिको देखकर बड़े प्रसन्न हुए ॥२७॥ इन्द्रके समान पराक्रमी राजा दशरथके साथ नगरमें ऋषिको प्रवेश

प्रवेश्यमानं सत्कृत्य नरेन्द्रेणेन्द्रकर्मणा । यथा दिवि सुरेन्द्रेण सहस्राक्षेण काश्यपम् ॥२८॥
अन्तःपुरं प्रवेश्यैनं पूजां कृत्वा च शास्त्रतः । कृतकृत्यं तदात्मानं मेने तस्योपवाहनात् ॥२९॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि शान्तां दृष्ट्वा तथागताम् ।सह भर्त्रा विशालाक्षीं प्रीत्यानन्दमुपागमन् ॥३०॥
पूज्यमाना तु ताभिः सा राज्ञा चैव विशेषतः । उवास तत्र सुखिता कंचित्कालं सहद्विजा ॥३१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकादशः सर्गः ॥११॥

द्वादशः सर्गः १२

ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित्सुमनोहरे । वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत् ॥१॥
ततः प्रणम्य शिरसा तं विप्रं देववर्णिनम् । यज्ञाय वरयामास संतानार्थं कुलस्य च ॥ २ ॥
तथेति च स राजानमुवाच वसुधाधिपम् । संभाराः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥३॥
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । ततोऽब्रवीन्नृपो वाक्यं ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥४॥
सुमन्त्रावाहय क्षिप्रमृत्विजो ब्रह्मवादिनः । सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् ॥५॥
पुरोहितं वसिष्ठं च ये चान्ये द्विजसत्तमाः । ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः ॥६॥

करते देख नगरवासी प्रसन्न हुए, जैसे देवता देवलोकमें इन्द्रके साथ वामनको प्रवेश करते देख प्रसन्न हुए थे ॥२८॥ राजा ऋषिको महलमें लेगये, उन्होंने शास्त्रविधानके अनुसार उनकी पूजा की। ऋषिको ले आनेके कारण राजाने अपनेको कृतकृत्य समझा ॥ २९ ॥ बड़ी आँखवाली शान्ता अपने पतिके साथ-साथ आयी है यह देखकर सब महारानियां विशेष आनन्दित हुई ॥ ३० ॥ महारानियां तथा विशेषकर राजाके द्वारा सत्कृत होकर कुछ दिनों तक शान्ताने वहीं राजमहलमें ही निवास किया ॥३१॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ११ ॥
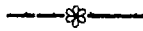
इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर बड़ाही मनोहर वसन्तकाल आया और उसी समय राजाने यज्ञ करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥ राजाने देवताके समान तेजस्वी उस ब्राह्मणको प्रणाम किया और सन्तान तथा कुलकी प्रतिष्ठाके लिए उनका वरण किया (यज्ञ करनेके लिए उनको चुना) ॥ २ ॥ मुनिने यज्ञ कराना स्वीकार किया और उन्होंने राजासे कहा—सामग्रियाँ एकत्र करवाइए, तथा घोड़ा छोड़िये ॥ ३ ॥ सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाइए—राजाने यह वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ४ ॥ अनन्तर उन्होंने सुमन्त्रसे कहा—ब्रह्मवेत्ता ऋत्विजोंको शीघ्र ले आओ, सुयज्ञ, वामदेव, जावालि, काश्यपको ले आओ ॥५॥ पुरोहित वसिष्ठको तथा और जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं उन सबको लेआओ। सुमन्त्र शीघ्रही वहाँ जाकर ॥ ६ ॥ उन समस्त वेदज्ञ ब्राह्मणोंको ले आये। धर्मात्मा राजा दशरथने उन

समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् । तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ॥७॥
धर्मार्थसहितं युक्तं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् । मम तातप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वै सुखम् ॥८॥
पुत्रार्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम । तदहं यष्टुमिच्छामि हयमेधेन कर्मणा ॥९॥
ऋषिपुत्रप्रभावेण कामान्प्राप्स्यामि चाप्यहम् । ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन् ॥१०॥
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखाच्च्युतम् । ऋष्यशृङ्गपुरोगाश्च प्रत्यूचुर्नृपतिं तदा ॥११॥
संभारा संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥१२॥
सर्वथा प्राप्स्यसे पुत्रांश्चतुरोऽमितविक्रमान् । यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता ॥१३॥
ततःप्रीतोऽभवद्राजा श्रुत्वा तु द्विजभाषितम् । अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षेणेदं शुभाक्षरम् ॥१४॥
गुरूणां वचनाच्छीघ्रं संभाराः संभ्रियन्तु मे । समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् ॥१५॥
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् । शान्तयश्चाभिवर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि ॥१६॥
शक्यः कर्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता । नापराधो भवेत्कष्टो यद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे ॥१७॥
छिद्रं हि मृगयन्त्येते विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः । विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति ॥१८॥
तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते । तथा विधानं क्रियतां समर्थाः करणेष्विह ॥१९॥
तथेति च ततः सर्वे मन्त्रिणः प्रत्यपूजयन् । पार्थिवेन्द्रस्य तद्वाक्यं यथाज्ञप्तमकुर्वत ॥२०॥
ततो द्विजास्ते धर्मज्ञमस्तुवन्पार्थिवर्षभम् । अनुज्ञातास्ततः सर्वे पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥२१॥

सबकी पूजा की ॥ ७ ॥ राजा दशरथ धर्मार्थयुक्त बहुतही मधुर वचन बोले,—पुत्रके लिए मैं बहुतही दुःखी हूँ, मुझे सुख नहीं है ॥८॥ पुत्रके लिए अश्वमेध यज्ञ करूँ ऐसा मैंने निश्चय किया है, अब वही यज्ञ करना चाहता हूँ ॥ ९ ॥ ऋषि-पुत्र ऋष्यशृंगके प्रभावसे मेरे मनोरथ पूरेंगे । ब्राह्मणोंने राजाकी बातकी प्रशंसा की ॥१०॥ वसिष्ठ, ऋष्यशृङ्ग आदि सभीने राजाके मुँहसे जो बात निकली थी वही राजासे पुनः कही ॥११॥ वह बात यह थी कि यज्ञकी तयारी कराओ, घोड़ा छोड़ो और सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाओ ॥१२॥ निश्चय परम पराक्रमी चार पुत्र आपके होंगे, क्योंकि पुत्रप्राप्तिके लिए आपको यह धर्मबुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १३ ॥ ब्राह्मणोंकी बात सुनकर राजा प्रसन्न हुए । प्रसन्न होकर राजाने मन्त्रियोंसे कहा ॥ १४ ॥ गुरुओंकी आज्ञाके अनुसार आपलोग सब सामग्रियाँ एकत्र कीजिए, वीरोंकी सेनाके साथ घोड़ा छोड़िए, घोड़ेके साथ उपाध्याय भी जायँ, ॥ १५ ॥ सरयूके उत्तर तीरपर यज्ञभूमि बनवाइए, शास्त्रानुसार विधिपूर्वक विघ्न दूर करनेके लिए शान्तिविधान हों ॥ १६ ॥ यदि इसमें अनेक विघ्नों और अनेक कठिनाइयोंकी सम्भावना न होती हो इस यज्ञको सभी राजा कर सकते थे, उन्हीं विघ्नोंके कारण अन्य राजा इस यज्ञको नहीं करते ॥ १७ ॥ विद्वान् और ब्रह्म-राक्षस सदा त्रुटियाँ देखा करते हैं, विधिहीन यज्ञ करनेवाला मनुष्य शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ ८ ॥ इस कारण मेरा यज्ञ विधिपूर्वक समाप्त हो वैसा उपाय आपलोग करें, क्योंकि आपलोग वैसा करनेमें समर्थ हैं ॥ १९ ॥ राजाकी बातें सुनकर मन्त्रियोंने उसीके अनुसार काम करना स्वीकार किया और उन लोगोंने वैसा किया भी ॥ २० ॥ ब्राह्मणोंने धर्मज्ञ राजा दशरथकी बड़ी प्रशंसा की और राजासे

गतानां तेषु विप्रेषु मन्त्रिणस्तान्नराधिपः । विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः ॥२२॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥
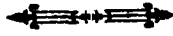
त्रयोदशः सर्गः १३

पुनः प्राप्ते वसन्ते तु पूर्णः संवत्सरोऽभवत् । प्रसवार्थं गतो यष्टुं हयमेधेन वीर्यवान् ॥१॥
अभिवाद्य वसिष्ठं च न्यायतः प्रतिपूज्य च । अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं प्रसवार्थं द्विजोत्तमम् ॥२॥
यज्ञो मे क्रियतां ब्रह्मन्यथोक्तं मुनिपुंगव । यथा न विघ्नाः क्रियन्ते यज्ञाङ्गेषु विधीयताम् ॥३॥
भवान्स्निग्धः सुहृन्मह्यं गुरुश्च परमो महान् । वोढव्यो भवता चैव भारो यज्ञस्य चोद्यतः ॥४॥
तथेति च स राजानमब्रवीद्द्विजसत्तमः । करिष्ये सर्वमेवैतद्भवता यत्समर्थितम् ॥५॥
ततोऽब्रवीद्द्विजान्वृद्धान्यज्ञकर्मसु निष्ठितान् । स्थापत्ये निष्ठितांश्चैव वृद्धान्परमधार्मिकान् ॥६॥
कर्मान्तिकाञ्शिल्पकारान्वर्धकीन्खनकानपि । गणकाञ्शिल्पिनश्चैव तथैव नटनर्तकान् ॥७॥
तथा शुचीञ्शास्त्रविदः पुरुषान्सुबहुश्रुतान् । यज्ञकर्म समीहन्तां भवन्तो राजशासनात् ॥८॥
इष्टका बहुसाहस्री शीघ्रमानीयतामिति । उपकार्याःक्रियन्तां च राज्ञो बहुगुणान्विताः ॥ ९ ॥
ब्राह्मणावसथाश्चैव कर्तव्याः शतशः शुभाः । भक्ष्यान्नपानैर्बहुभिः समुपेताः सुनिष्ठिताः ॥१०॥
तथा पौरजनस्यापि कर्तव्याश्च सुविस्तराः । आगतानां सुदूराच्च पार्थिवानां पृथक्पृथक् ॥११॥

आज्ञा लेकर वे अपने स्थानको गये ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके चले जानेपर राजाने मन्त्रियोंको भी जानेकी आज्ञा दी और वे स्वयं महलमें गये ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१२॥

पुनः वसन्तके आनेपर एक वर्ष पूरा हुआ, राजा दशरथ भी पुत्रप्राप्तिके लिए अश्वमेध यज्ञ करनेके लिए गये ॥ १ ॥ वसिष्ठको उन्होंने प्रणाम किया और पूजा की, और पुत्रप्राप्तिके हेतु विनय-युक्त वचन वे बोले ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, शास्त्रविधिके अनुसार आप यज्ञ करायें, जिससे यज्ञमें इन्द्र आदि विघ्न न करने पावें ॥ ३ ॥ आप मेरे परमस्नेही हैं, मित्र हैं तथा गुरु हैं, यज्ञका जो भार उपस्थित हुआ है आप उसे सँभालें ॥ ४ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठने राजासे कहा—जैसा आपने कहा है वह सब मैं करूँगा ॥ ५ ॥ यज्ञ करानेका भार लेकर वसिष्ठने, यज्ञ करानेमें निपुण वृद्ध ब्राह्मणोंको, यज्ञसम्बन्धी वस्तुओंको ले आनेवाले परम धार्मिक बूढ़े ब्राह्मणोंको, काममें सहायता देनेवाले भृत्योंको, चित्रकारोंको, बढ़इयों और खोदनेवालोंको, ज्योतिषियों, चमारों तथा नट, नर्तक आदिको, विशुद्ध शास्त्रवेत्ता और बहुज्ञोंको आज्ञा दी कि आप लोग राजाकी आज्ञासे यज्ञका प्रबन्ध करावें । ६–७–८ ॥ कई हजार ईंटे मँगवाइए, राजाओंके लिए, उपकार्या (कपड़ेका घर) बनवाइए, जिसमें सब तरहकी सुबिधा हो ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंके रहनेके लिए भी सैकड़ों सुन्दर मकान बनवाइए, जिसमें अन्न जलकी अच्छी व्यवस्था हो ॥ १० ॥ नगरवासियोंके लिये भी अच्छे-अच्छे घर बनवाये जाँय, दूर से आये राजाओंके लिए भी

वाजिवारणशालाश्च तथा शय्यागृहाणि च । भटानां महदावासा वैदेशिकनिवासिनाम् ॥१२॥
आवासा बहुभक्ष्या वै सर्वकामैरुपस्थिताः । तथा पौरजनस्यापि जनस्य बहुशोभनम् ॥१३॥
दातव्यमन्नं विधिवत्सत्कृत्य न तु लीलया । सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः ॥१४॥
न चावज्ञा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादपि । यज्ञकर्मसु येऽव्यग्राः पुरुषाः शिल्पिनस्तथा ॥१५॥
तेषामपि विशेषेण पूजा कार्या यथाक्रमम् । ये स्युः संपूजिताः सर्वे वसुभिर्भोजनेन च ॥१६॥
यथा सर्वं सुविहितं न किंचित्परिहीयते । तथा भवन्तः कुर्वन्तु प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥१७॥
ततः सर्वे समागम्य वसिष्ठमिदमब्रुवन् । यथेष्टं तत्सुविहितं न किंचित्परिहीयते ॥१८॥
यथोक्तं तत्करिष्यामो न किंचित्परिहास्यते । ततः सुमन्त्रमाहूय वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥१९॥
निमन्त्रयस्व नृपतीन्पृथिव्यां ये च धार्मिकाः । ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः ॥२०॥
समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान् । मिथिलाधिपतिं शूरं जनकं सत्यवादिनम् ॥२१॥
तमानय महाभागं स्वयमेव सुसत्कृतम् । पूर्वसंबन्धिनं ज्ञात्वा ततः पूर्वं ब्रवीमि ते ॥२२॥
तथा काशिपतिं स्निग्धं सततं प्रियवादिनम् । सद्वृत्तं देवसंकाशं स्वयमेवानयस्व ह ॥२३॥
तथा केकयराजानं वृद्धं परमधार्मिकम् । श्वशुरं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ॥२४॥
अङ्गेश्वरं महेष्वासं रोमपादं सुसत्कृतम् । वयस्यं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ॥२५॥
तथा कोसलराजानं भानुमन्तं सुसत्कृतम् । मगधाधिपतिं शूरं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥२६॥

अलग-अलग घर होने चाहिएँ ॥ ११ ॥ घोड़े और हाथियोंके लिए भी घर बनवाइए, शयनगृह भी बनवाइए, विदेशी पहलवानोंके लिए भी बड़े बड़े घर होने चाहिएँ ॥ १२ ॥ जो घर बनवाये जाँय उनमें खानेकी सामग्री अधिक रखी जाँय, अन्य आवश्यक वस्तुओंका भी प्रबन्ध किया जाय, नगरवासियोंको अन्न दिया जाय, वह ॥१३॥ विधिपूर्वक आदरके साथ दिया जाय, रुखाईके साथ नहीं। सब वर्णवालोंका सत्कार किया जाय और उनकी पूजा हो ॥ १४ ॥ किसी कारणवश या क्रोधवश भी किसीका तिरस्कार न हो। जो शिल्पी यज्ञके कार्योंमें विशेष नहीं लगे हुए हैं ॥१५॥ उनका भी अच्छी तरहसे आदर-सत्कार हो, जब वे धन तथा भोजनके द्वारा सन्तुष्ट किए जायँगे ॥१६॥ तब यज्ञके सभी काम विधिवत् सम्पन्न होंगे, कोई भी त्रुटि न होने पावेगी, इस कारण मेरे ऊपर प्रेम करके आपलोग वैसाही करें ॥१७॥

वे सब वसिष्ठके यहाँ पुनः आकर बोले-महाराज सब प्रबन्ध होगया, किसी बातकी कमी नहीं है ॥ १८ ॥ अब आपकी आज्ञाके अनुसार और सब प्रबन्ध हम लोग करेंगे, किसी बातकी त्रुटि न होने पावेगी। तब सुमन्तको बुलाकर वसिष्ठने कहा ॥ १९ ॥ सब राजाओंको निमन्त्रित करो, पृथिवीमें जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धार्मिक हैं उन सबको भी निमन्त्रण दो ॥ २० ॥ सब देशोंसे आदर-पूर्वक मनुष्योंको लेआओ। वीर सत्यवादी मिथिलाके राजा जनकको ॥ २१ ॥ स्वयं जाकर आदरपूर्वक लेआओ, क्योंकि वे पुराने सबन्धी हैं, इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ ॥ २२ ॥ काशीके महाराजको भी स्वयं जाकर ले आओ, क्योंकि वे हमलोगोंके स्नेही हैं, प्रियवादी हैं, सदाचारी हैं और देवचरित्र हैं ॥ २३ ॥ केकय देशके बूढ़े राजाको और उनके पुत्रको भी जाकर ले आओ, वे परम धार्मिक हैं और महाराज दशरथके श्वसुर हैं ॥ २४ ॥ अंगदेशके राजा धनुर्धारी रोमपादको जाकर पुत्रके साथ आदर-

मागधिश्च परमोदारं सत्कृतं पुरुषर्षभम्। राज्ञः शासनमादाय चोदयस्व नृपर्षभान॥
प्राचीनान्सिन्धुसौवीरान्सौराष्ट्रेयांश्च पार्थिवान ॥२७॥
दाक्षिणात्यान्नरेन्द्रांश्च समस्तानानयस्व ह । सन्ति स्निग्धाश्च ये चान्ये राजानः पृथिवीतले॥२८
तानानय यथा क्षिप्रं सानुगान्सहबान्धवान । एतान्दूतैर्महाभागैरानयस्व नृपाज्ञया ॥२९॥
वसिष्ठवाक्यं तच्छ्रुत्वा सुमन्त्रस्त्वरितं तदा । व्यादिशत्पुरुषांस्तत्रराज्ञामानयने शुभान॥३०॥
स्वयमेव हि धर्मात्मा प्रयातो मुनिशासनात् । सुमन्त्रस्त्वरितो भूत्वा समानेतुं महामतिः ॥३१॥
ते च कर्मान्तिकाः सर्वे वसिष्ठाय महर्षये । सर्वं निवेदयन्ति स्म यज्ञं यदुपकल्पितम् ॥३२॥
ततः प्रीतो द्विजश्रेष्ठस्तान्मुनिरब्रवीत् । अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा॥३३॥
अवज्ञया कृतं हन्याद्दातारं नात्र संशयः । ततः कैश्चिदहोरात्रैरुपयाता महीक्षितः ॥३४॥
बहूनि रत्नान्यादाय राज्ञो दशरथस्यह । ततो वसिष्ठः सुप्रीतो राजानमिदमब्रवीत् ॥३५॥
उपयाता नरव्याघ्र राजानस्तव शासनात् । मयापि सत्कृताः सर्वे यथार्हं राजसत्तम॥३६॥
यज्ञियं च कृतं सर्वं पुरुषैः सुसमाहितैः। निर्यातु च भवान्यष्टुं यज्ञायतनमन्तिकात् ॥३७॥
सर्वकामैरुपहृतैरुपेतं वै समन्ततः । द्रष्टुमर्हसि राजेन्द्र मनसेव विनिर्मितम् ॥३८॥

पूर्वक ले आओ, वे महाराज दशरथके मित्र हैं ॥ २५ ॥ कोशल देशके राजा भानुमानको, सर्व शास्त्र- ज्ञाता, उद्यमी, उदार और वीर मगधराजको बड़े आदरके साथ ले आओ । राजाकी आज्ञा लेकर पूर्व- देशके राजाओंको ॥ २६ ॥ सिन्धुदेश, सौवीर और सौराष्ट्र देशके राजाओंको भी निमन्त्रित करो । २७॥ दक्षिणके देशके सब राजाओं को बुलाओ, पृथिवीमें हम लोगोंके स्नेही और जो राजा हों उनको भी बुलाओ ॥ २८ ॥ भाईबन्द, नौकर-चाकरके साथ इन सबको शीघ्रही बुलाओ । प्रतिष्ठित दूत भेजकर इन सबको राजाकी आज्ञासे बुलवाओ ॥ २९ ॥

वसिष्ठ की आज्ञा पाकर सुमन्त्रने शीघ्रही राजाओंको निमन्त्रित करनेके लिए श्रेष्ठदूतोंको आज्ञा दी ॥ ३० ॥ मुनिकी आज्ञासे अन्य राजाओंके यहाँ स्वयं जानेके लिए धर्मात्मा और बुद्धिमान सुमन्त्र स्वयं शीघ्रतापूर्वक चलपड़े ॥ ३१ ॥

उन कारीगरोंने, जिनको वसिष्ठने यज्ञ-सम्बन्धी काम करनेकी आज्ञा दी थी, आकर यज्ञके लिए जो-जो तयारी होचुकी थी वह सब वसिष्ठसे कहीं ॥ ३२ ॥ मुनि वसिष्ठ इससे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—जो कोई तुम लोगोंसे कुछ माँगे, उसे तिरस्कारके साथ मत दो और उपहास करके भी मत दो ॥ ३३ ॥ तिरस्कारके साथ को काम किया जाताहै, उससे अवश्यही दाताका नाश होता है।

थोड़े दिनोंके बाद राजा लोग अयोध्यामें आने लगे ॥३४॥ वे लोग राजा दशरथके लिए बहुत- सा रत्न लेकर आए। उनके आनेसे वसिष्ठ बहुत प्रसन्न हुए और वे राजा दशरथसे बोले,॥ ३५ ॥ महा- राज, आपकी आज्ञासे ये सब राजा लोग आये हैं, राजश्रेष्ठ ! मैंने भी जो जिस योग्य है उसका वैसा सत्कार किया है ॥ ३६ ॥ हमारे आदमियोंने सावधानीसे यज्ञकी सब सामग्रियाँ (स्रुक, स्रुवा आदि) एकत्र कर दी हैं, आप यज्ञ करनेके लिए चलें, यज्ञ-मण्डप पासही है ॥ ३७ ॥ सब आवश्यक सामग्रियाँ यथास्थान रखी गयी हैं, राजश्रेष्ठ, आप चलकर देखें, इतनी शीघ्र तयारी हुई है, मानो मनके ही द्वारा

तथा वसिष्ठवचनादृष्यशृङ्गस्य चोभयोः । दिवसे शुभनक्षत्रे निर्यातो जगतीपतिः ॥३९॥
ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्व एव द्विजोत्तमाः । ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य यज्ञकर्मारभंस्तदा ॥४०॥
यज्ञवाटं गताः सर्वे यथाशास्त्रं यथाविधि । श्रीमांश्च सह पत्नीभी राजा दीक्षामुपाविशत्॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

चतुर्दशः सर्गः १४

अथ संवत्सरे पूर्णे तस्मिन्प्राप्ते तुरङ्गमे । सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत॥ १ ॥
ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य कर्म चक्रुर्द्विजर्षभाः । अश्वमेधे महायज्ञे राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ॥ २ ॥
कर्म कुर्वन्ति विधिवद्याजका वेदपारगाः । यथाविधि यथान्यायं परिक्रामन्ति शास्त्रतः ॥ ३ ॥
प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा तथैवोपसदं द्विजाः । चक्रुश्च विधिवत्सर्वमधिकं कर्म शास्त्रतः ॥ ४ ॥
अभिपूज्य तदा हृष्टाः सर्वे चक्रुर्यथाविधि । प्रातःसवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुंगवाः ॥ ५ ॥
ऐन्द्रश्च विधिवद्दत्तो राजा चाभिषुतोऽनघः । माध्यन्दिनं च सवनं प्रावर्तत यथाक्रमम् ॥ ६ ॥
तृतीयसवने चैव राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः । चक्रुस्ते शास्त्रतो दृष्ट्वा यथा ब्राह्मणपुंगवाः ॥ ७ ॥

ये तयारियाँ हुई हों ॥ ३८ ॥ इस प्रकार वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके कहनेसे उत्तम दिनके शुभ नक्षत्रमें राजा अपने घरसे निकले (यज्ञ-भूमिमें जानेके लिए उन्होंने प्रस्थान किया) ॥ ३९ ॥ तब वसिष्ठ आदि अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋष्यशृंगको आगे करके यज्ञभूमिमें गये ॥ ४० ॥ उनलोगोंने शास्त्र और विधिके अनुसार यज्ञ प्रारम्भ किया, महाराजने भी अपनी महारानियोंके साथ यज्ञकी दीक्षा (यज्ञसम्बन्धी यजमानके नियम) ली ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकांडका तेरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १३ ॥

इस प्रकार एक वर्ष पूरा होनेपर घोड़ा लौट आया और सरयू नदीके उत्तर तीरपर राजाका यज्ञ प्रारम्भ हुआ ॥ १ ॥ सर्वत्र प्रसिद्ध राजा दशरथके बड़ी श्रद्धा और तयारीसे किये जानेवाले यज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मण, ऋष्यशृङ्गकी देख भालमें अपना काम करने लगे ॥२॥ वेदज्ञ याजक (यज्ञ करानेवाले) विधान, क्रम और शिक्षाके अनुसार (जैसी उत्तम शिक्षा उन्हें मिली थी) अपना-अपना कर्म सम्पादन करने लगे ॥३॥ शास्त्रके अनुसार प्रवर्ग्य (इस नामका अश्वमेधयज्ञमें किया जानेवाला एक कर्म) और उपसद (यह भी उसी यज्ञका एक अङ्ग है) कर्मोंको पहले करके यज्ञ-सम्बन्धी अन्य सब कर्म ब्राह्मणोंने किये ॥ ४ ॥ इस यज्ञमें किये जानेवाले कर्मोंके देवताओंका विधिपूर्वक पूजन करके प्रसन्न होकर मुनिप्रवरोंने प्रातःसवन (इस नामका एक कर्म) करके अन्य सब कर्म विधिपूर्वक किये ॥ ५ ॥ पवित्र राजाने इन्द्रको विधिवत् उनका भाग-हवि दिया और सोमलताका रस निकाला, तदनन्तर क्रमपूर्वक प्रातःसवन करनेके पश्चात् माध्यन्दिन (मध्याह्नमें होनेवाला) सवन प्रारम्भ हुआ ॥ ६ ॥ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उन महात्मा राजा दशरथका तीसरा सवन भी शास्त्रोंसे जानकर विधिपूर्वक कराया ॥७॥ ऋष्यशृङ्ग आदि ऋषियोंने

आह्वयांचक्रिरे तत्र शक्रादीन्विबुधोत्तमान् । ऋष्यशृङ्गादयो मन्त्रैः शिक्षाक्षरसमन्वितैः ॥ ८ ॥
गीतिभिर्मधुरैः स्निग्धैर्मन्त्राह्वानैर्यथार्हतः । होतारो ददुरावाह्य हविर्भागान्दिवौकसाम् ॥ ९ ॥
न चाहुतमभूत्तत्र स्खलितं वा न किंचन । दृश्यते ब्रह्मवत्सर्वं क्षेमयुक्तं हि चक्रिरे ॥१०॥
न तेष्वहःसु श्रान्तो वा क्षुधितो वा न दृश्यते । नाविद्वान्ब्राह्मणः कश्चिन्नाशतानुचरस्तथा॥११॥
ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते । तापसा भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥१२॥
वृद्धाश्च व्याधिताश्चैव स्त्रीबालाश्च तथैव च । अनिशं भुञ्जमानानां न तृप्तिरुपलभ्यते ॥१३॥
दीयतां दीयतामन्नं वासांसि विविधानि च । इति संचोदितास्तत्र तथा चक्रुरनेकशः ॥१४॥
अन्नकूटाश्च दृश्यन्ते बहवः पर्वतोपमाः । दिवसे दिवसे तत्र सिद्धस्य विधिवत्तदा ॥१५॥
नानादेशादनुप्राप्ताः पुरुषाः स्त्रीगणास्तथा । अन्नपानैः सुविहितास्तस्मिन्यज्ञे महात्मनः ॥१६॥
अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः । अहो तृप्ताः स्म भद्रं ते इति शुश्राव राघवः ॥१७॥
स्वलंकृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान्पर्यवेषयन् । उपासन्ते च तानन्ये सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥१८॥
कर्मान्तरे तदा विप्रा हेतुवादान्बहूनपि । प्राहुः सुवाग्मिनो धीराः परस्परजिगीषया ॥१९॥

स्वरवण आदिसे शुद्ध मन्त्रोंके द्वारा इन्द्र आदि उत्तम देवताओंका उस यज्ञमें आवाहन किया ॥ ८ ॥ मधुर सामवेदके मंत्रोंके गानसे तथा मनोरम मन्त्रोंसे देवताओंका आवाहन करके जिसका जो भाग था वह होताओंने उन-उन देवताओंको दिया ॥ ९ ॥ वहाँ अहुत (शास्त्रोक्त हवनके विरुद्ध) कुछ भी नहीं हुआ, किसी कर्ममें कोई त्रुटि भी नहीं हुई, क्योंकि वहांके सभी कर्म मन्त्रोंके द्वारा हुए, इस कारण सभी कर्म पूर्ण हुए ॥१०॥ यज्ञके दिनोंमें कोई भी अपने कामसे थका नहीं, कोई भी भूखा दिखायी न पड़ा, वहां कोई भी मूर्ख ब्राह्मण न था, सभी पण्डित थे, और ऐसा कोई न था जिसके सौ शिष्य न हों ॥११॥ वहाँ ब्राह्मणोंको नित्य भोजन दिया जाता था, शूद्रोंको भी भोजन दिया जाता था, सनातनी तपस्वियों और श्रमणों (बौद्ध संन्यासियों) को भी भोजन दिया जाता था ॥ १२ ॥ वृद्ध, रोगी, स्त्री और बालकोंको भी उसी प्रकार भोजन दिया जाता था। वहांका भोजन इतना स्वादिष्ट था कि दिनरात खानेपर भी खानेवाले तृप्त नहीं होते थे ॥ १३ ॥ अन्न तथा अनेक प्रकारके वस्त्र याचकोंको दो—अधिकारियोंकी ऐसी आज्ञा पाकर उन लोगोंने वैसाही किया अर्थात् अन्न और वस्त्र दिये ॥ १४ ॥ वहां प्रतिदिन पर्वतके समान अन्नकी अनेक राशि दीख पड़ती थी, और पके अन्नकी भी राशि उसी प्रकार पर्वतके समान ऊँची दीख पड़ती थी ॥ १५ ॥ महात्मा दशरथके उस यज्ञमें अनेक देशोंसे आये हुए स्त्री-पुरुष अन्नपानसे खूब तृप्त किये गये ॥ १६ ॥ भोजन बहुत उत्तम बना है और स्वादिष्ट है, ब्राह्मण भोजनकी इस प्रकार प्रशंसा करते थे। 'हमलोग खूब तृप्त हुए, आपका कल्याण हो', राजा ऐसे शब्द वहाँ सुनते थे ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंको अन्न परोसनेवाले अलङ्कृत थे, राजासे जो अलङ्कार आदि मिले थे वे सब उन लोगोंने पहने थे। उन परोसनेवालोंकी सहायता करनेवाले जो पुरुष थे वे मणिका कुण्डल धारण किये हुए थे ॥ १८ ॥ एक कर्मकी समाप्ति और दूसरे कर्मके प्रारम्भमें जो समय मिलता था, उसमें वक्ता और धीर ब्राह्मण परस्पर जीतनेकी इच्छासे भिन्न-भिन्न शास्त्रोंकी युक्तियों से

दिवसे दिवसे तत्र संस्तरे कुशला द्विजाः। सर्वकर्माणि चक्रुस्ते यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥२०॥
नाषडङ्गविदत्रासीन्नाव्रतो नाबहुश्रुतः। सदस्यास्तस्य वै राज्ञो नावादकुशलो द्विजः॥२१॥
प्राप्ते यूपोच्छ्रयेतस्मिन्षड्बैल्वाःखादिरास्तथा। तावन्तो बिल्वसहिताः पर्णिनश्च तथाऽपरे ॥२२॥
श्लेष्मातकमयो दिष्टो देवदारुमयस्तथा। द्वावेव तत्र विहितौ बाहुव्यस्तपरिग्रहौ ॥२३॥
कारिताः सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः। शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालंकृता भवन्॥२४॥
एकविंशतियूपास्ते एकविंशत्यरत्नयः। वासोभिरेकविंशद्भिरेकैकं समलंकृताः ॥२५॥
विन्यस्ता विधिवत्सर्वे शिल्पिभिः सुकृता दृढाः। अष्टास्रयः सर्व एव श्लक्ष्णरूपसमन्विताः ॥२६॥
आच्छादितास्ते वासोभिःपुष्पैर्गन्धैश्च पूजिताः। सप्तर्षयो दीप्तिमन्तो विराजन्ते यथा दिवि ॥२७॥
इष्टकाश्च यथान्यायं कारिताश्च प्रमाणतः। चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्रकुशलैःशिल्पकर्मणि ॥२८॥
स चित्यो राजसिंहस्य संचितः कुशलैर्द्विजैः। गरुडो रुक्मपक्षो वै त्रिगुणोऽष्टादशात्मकः ॥२९॥
नियुक्तास्तत्र पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम्। उरगाः पक्षिणश्चैव यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥३०॥
शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जलचराश्च ये। ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदाः ॥३१॥

शास्त्रार्थ करते थे ॥ १९ ॥ प्रतिदिन उस यज्ञमें नियुक्त ब्राह्मणोंने शास्त्रीय आज्ञाओंके अनुसार सब कर्म किये ॥ २० ॥ राजाके उस यज्ञमें कोई भी ऐसा निरीक्षक ब्राह्मण न था जो षडङ्ग न जानता हो, जो व्रत न रखता हो, जो बहुश्रुत न हो और जो शास्त्रार्थ करनेमें निपुण न हो ॥ २१ ॥ यज्ञमें यूप (एक प्रकारका स्तम्भ) गाड़नेके समय, बेल वृक्षकी लकड़ी के छ यूप गाड़े गये, उनके पासही छ यूप खैरकी लकड़ीके गाड़े गये और छ पलासकी लकड़ीके यूप गाड़े गये ॥ २२ ॥ श्लेष्मातक (इस नामका कोई वृक्ष) और देवदारुके दो यूप वहाँ गाड़े गये, इनका विस्तार दोनों हाथ फैलानेके बराबर था, अथवा ये दो-दो हाथकी दूरीपर गाड़े गये थे ॥ २३ ॥ शास्त्रज्ञ और यज्ञ करानेमें निपुण विद्वानोंके द्वारा ये सब कर्म कराये गये और शोभाके लिए ये यूप सोनेसे सुशोभित किये गये ॥ २४ ॥ इस प्रकार उस यज्ञमें इक्कीस यूप गाड़े गये, उनका परिमाण इक्कीस अरत्नि (चौबीस अंगुलका परिमाण) था, उन इक्कीसोंपर एक-एक वस्त्र डाला गया ॥२५॥ वे यूप शिल्पियोंके द्वारा उत्तम बने हुए थे, उनपर चित्र बने हुए थे, वे मजबूत बने हुए थे, उनमें आठ कोने थे और वे बड़ेही चिकने और सुन्दर थे ॥ २६ ॥ वस्त्रोंसे ढक जानेपर, फूल और गन्धसे पूजित होनेपर वे यूप बड़ेही सुन्दर मालूम होने लगे, जिस प्रकार आकाशमें सप्तर्षि शोभित होते हैं ॥२७॥ यज्ञ कर्ममें निपुण ब्राह्मणोंने विधान और प्रमाणके अनुसार ईंटें बनवायीं, और उसमें अग्निकी स्थापना की ॥ २८ ॥ प्रवीण ब्राह्मणोंने राजश्रेष्ठ दशरथके यज्ञके लिए चयनके द्वारा प्राप्त अग्निकी स्थापना की, अग्निस्थापनकी जो वेदी बनी थी, वह पंख फैलाये उस गरुड़के समान थी, जिसके पंख सुवर्णके हों। उस वेदीपर त्रिगुण (तीन ईंटें) रखी थीं और अठारह प्रस्तार थे ॥ २९ ॥ अधिष्ठाता देवताके स्थानपर उनके पशु रखे गये थे—साँप, पक्षी आदि, शास्त्रोंमें जिन पशु-पक्षियोंके रखनेकी आज्ञा है ॥३०॥ यज्ञमें वध करनेके लिए घोड़ा तथा अन्य जल-चर प्राणियोंको शास्त्रानुसार ऋषियोंने यूपोंमें बाँधा ॥ ३१ ॥

पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा । अश्वरत्नोत्तमं तत्र राज्ञो दशरथस्य ह ॥३२॥
कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः । कृपाणैर्विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥३३॥
पतत्त्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा । अवसद्रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया ॥३४॥
होताऽध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन् । महिष्या परिवृत्याथ वावातामपरां तथा ॥३५॥
पतत्त्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रियः । ऋत्विक्परमसंपन्नः श्रपयामास शास्त्रतः ॥३६॥
धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रति स्म नराधिपः । यथाकालं यथान्यायं निर्णुदन्पापमात्मनः ॥३७॥
हयस्ययानि चाङ्गानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः । अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत्समस्ताः षोडशर्त्विजः॥३८
प्लक्षशाखासु यज्ञानामन्येषां क्रियते हविः । अश्वमेधस्य यज्ञस्य वैतसो भाग इष्यते ॥३९॥
त्र्यहोऽश्वमेधः संख्यातः कल्पसूत्रेण ब्राह्मणैः । चतुष्टोममहस्तस्य प्रथमं परिकल्पितम् ॥४०॥
उक्थ्यं द्वितीयं संख्यातमतिरात्रं तथोत्तरम् । कारितास्तत्र बहवो विहिताः शास्त्रदर्शनात् ॥४१॥
ज्योतिष्टोमायुषी चैवमतिरात्रौ च निर्मितौ । अभिजिद्विश्वजिच्चैवमाप्तोर्यामो महाक्रतुः ॥४२॥
प्राचीं होत्रे ददौ राजा दिशं स्वकुलवर्धनः । अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥४३॥

उस यज्ञमें तीन सौ पशु यूपोंमें बांधे गये, राजा दशरथका वह श्रेष्ठ घोड़ा (जो भ्रमण करके लौटा है) भी बांधा गया ॥ ३२ ॥ महारानी कौशल्याने उस घोड़ेको पोंछकर प्रदक्षिणा करके प्रसन्नतापूर्वक तलवारकी तीनवारसे मारा ॥ ३३ ॥ उस वध किये हुए घोड़ेके पास सावधानचित्त होकर धर्मकी कामनासे महारानी कौशल्याने एक रात निवास किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर होता, उद्गाता तथा अध्वर्युने महिषी, परिवृत्ति और वावाता श्रेणिकी रानियोंका घोड़ेके अंगसे स्पर्श कराया, (महिषी उस रानीको कहते हैं जिसका राजाके साथ राज्याभिषेक किया गया हो, शूद्र जातिकी राजाकी स्त्री परिवृत्ति कही जाती है, और वैश्य जातिकी राजाकी स्त्री वावाता कही जाती है) ॥३५॥ जितेन्द्रिय ऋत्विकने उस घोड़ेकी चर्बी निकाली और श्रौत-प्रयोगमें निपुण उन ऋत्विक्ने उसे शास्त्रानुसार पकाया ॥ ३६ ॥ राजा दशरथने हवनके धूमकी गन्ध और हवन की हुई उस चर्बीकी गन्ध, समयपर विधानके अनुसार सूँघी, जिससे राजाके पाप दूर हुए ॥ ३७ ॥ घोड़ेके समस्त अंगोंको सोलह ऋत्विक् ब्राह्मणोंने अग्निमें हवन किया ॥ ३८ ॥ अन्य यज्ञोंकी हवि पकड़ीकी लकड़ीपर रखकर दीजाती है, पर अश्वमेधकी हवि वेतकी लकड़ी पर रखकर दीजाती है ॥ ३९॥ कल्पसूत्र और ब्राह्मण वचनोंके द्वारा अश्वमेध तीन दिनोंका बतलाया गया है। उसका पहले दिनका कृत्य अग्निष्टोम नामक यज्ञ किया गया ॥ ४० ॥ दूसरे दिनका कृत्य उक्थ्य (ज्योतिष्टोमका अंग और तीसरे दिनका कृत्य अतिरात्र नामका कृत्य ब्राह्मणोंने कराये। अश्वमेध यज्ञके समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंने और भी अनेक यज्ञ शास्त्रानुसार कराये ॥ ४१ ॥ ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञ कराये, अभिजित् और विश्वजित नामक यज्ञ कराये, ये सातवें और आठवें थे ॥ ४२ ॥

अपने कुलकी वृद्धि चाहनेवाले राजाने पूर्व दिशा होताको दक्षिणामें दी, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और ब्रह्माको दक्षिण दिशा दी (अपने राज्यके उन दिशाओंका भाग दिया) ॥ ४३ ॥ उद्गा-

उद्गात्रे तु तथोदीचीं दक्षिणैषा विनिर्मिता । अश्वमेधे महायज्ञे स्वयंभूविहिते पुरा ॥४४॥
क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः । ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः ॥४५॥
एवं दत्त्वा प्रहृष्टोऽभूच्छ्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः । ऋत्विजस्त्वब्रुवन्सर्वे राजानं गतकिल्विषम् ॥४६॥
भवानेव महीं कृत्स्नामेको रक्षितुमर्हति । न भूम्या कार्यमस्माकं न हि शक्ताः स्म पालने ॥४७
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप । निष्क्रयं किंचिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति ॥४८॥
मणिरत्नं सुवर्णं वा गावो यद्वा समुद्यतम् । तत्प्रयच्छ नृपश्रेष्ठ धरण्या न प्रयोजनम् ॥४९॥
एवमुक्तो नरपतिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । गवां शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः ॥५०॥
दशकोटिं सुवर्णस्य रजतस्य चतुर्गुणम् । ऋत्विजस्तु ततः सर्वे प्रददुः सहिता वसु ॥५१॥
ऋष्यशृङ्गाय मुनये वसिष्ठाय च धीमते । ततस्ते न्यायतः कृत्वा प्रविभागं द्विजोत्तमाः ॥५२॥
सुप्रीतमनसः सर्वे प्रत्यूचुर्मुदिता भृशम् । ततः प्रसर्पकेभ्यस्तु हिरण्यं सुसमाहितः ॥५३॥
जाम्बूनदं कोटिसंख्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा । दरिद्राय द्विजायाथ हस्ताभरणमुत्तमम् ॥५४॥
कस्मैचिद्याचमानाय ददौ राघवनन्दनः । ततः प्रीतेषु विधिवद्द्विजेषु द्विजवत्सलः ॥५५॥
प्रणाममकरोत्तेषां हर्षव्याकुलितेन्द्रियः । तस्याशिषोऽथ विविधाब्राह्मणैः समुदाहृताः ॥५६॥
उदारस्य नृवीरस्य धरण्यां पतितस्य च । ततः प्रीतमना राजा प्राप्य यज्ञमनुत्तमम् ॥५७॥

ताको उत्तर दिशा दक्षिणामें राजाने दी, ब्रह्माके द्वारा प्रकाशित इस अश्वमेध यज्ञमें राजाने ये दक्षिणाएँ दीं ॥ ४४ ॥ पुरुष-श्रेष्ठ राजा दसरथने शास्त्रानुसार यज्ञ समाप्त किया। कुलवृद्धिकी कामना रखनेवाले राजाने ऋत्विक् आदि यज्ञकर्ताओंको दक्षिणामें पृथिवी दी ॥४५॥ इस प्रकार दक्षिणा देकर इक्ष्वाकुनन्दन राजा दसरथ बहुत प्रसन्न हुए। यज्ञ-कर्तागण पापरहित राजासे बोले ॥ ४६ ॥ इस समस्त पृथिवीकी रक्षा केवल आपही कर सकते हैं, पृथिवीकी हमलोगोंको आवश्यकता नहीं है, हमलोग उसका पालन नहीं कर सकते ॥४७॥ महाराज हमलोग सदा पढ़ने-पढ़ानेमें लगे रहते हैं, इसलिए आप दक्षिणाके बदले कोई ऐसी वस्तु दें जिसके लिए हमलोगोंको कुछ प्रयत्न करना न पड़े ॥४८॥ महाराज! मणि, रत्न, सुवर्ण, गौ तथा और जो कुछ वर्तमान हो वह आप हमलोगोंको दक्षिणामें दें, पृथिवीकी जरूरत नहीं है ॥४९॥ वेदज्ञ ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर राजाने दस लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दीं ॥५०॥ दस करोड़ सोना (सोनेका सिक्का) और चालीस करोड़ चांदीके सिक्के ब्राह्मणोंको राजाने दिये। सब ऋत्विजोंने मिलकर वह समस्त धन ॥ ५१ ॥ बुद्धिमान् वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके सामने रख दिये, उन लोगोंने भी न्यायपूर्वक उस धनका सब ब्राह्मणोंमें विभाग कर दिया ॥ ५२ ॥ दक्षिणा पानेपर ब्राह्मणोंने कहा कि हमलोग प्रसन्न हैं। जो ब्राह्मण केवल यज्ञ देखने आये थे उनको भी सावधान होकर राजाने ॥ ५३ ॥ एक करोड़ सोनेके सिक्के दिये। और एक दरिद्र ब्राह्मण हाथका उत्तम गहना मांग रहा था राजाने उसे वही दिया। ५४ ॥ इस प्रकार ब्राह्मण-भक्त राजाने ब्राह्मणोंको प्रसन्न किया ॥ ५५ ॥ हर्षसे राजाकी आंखोंमें जल भर आया था, उन्होंने ब्राह्मणोंको प्रणाम किये। ब्राह्मणोंने उनको अनेकों प्रकारके आशीर्वाद दिये ॥ ५६ ॥ उदार, वीर राजाने ब्राह्मणोंको पृथिवीमें पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ५७ ॥

पापापहं स्वर्नयनं दुस्तरं पार्थिवर्षभैः । ततोऽब्रवीदृष्यशृङ्गं राजा दसरथस्तदा ॥५८॥
कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत । तथेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तमः ॥
भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः ॥ ५६ ॥

स तस्य वाक्यं मधुरं निशम्य प्रणम्य तस्मै प्रयतो नृपेन्द्रः ।
जगाम हर्षं परमं महात्मा तमृष्यशृङ्गं पुनरप्युवाच ॥ ६० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः १५

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किंचिदिदमुत्तरम् । लब्धसंज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत् ॥ १ ॥
इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात् । अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः ॥ २ ॥
ततः प्राक्रामदिष्टिं तां पुत्रीयां पुत्रकारणात् । जुहावाग्नौ च तेजस्वी मन्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ३ ॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः । भागप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि ॥ ४ ॥
ताः समेत्य यथान्यायं तस्मिन्सदसि देवताः । अब्रुवँल्लोककर्तारं ब्रह्माणं वचनं ततः ॥ ५ ॥

तदनन्तर पाप दूर करनेवाले, स्वर्ग लेजानेवाले और दूसरे राजाओंके द्वारा न करने योग्य उस श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञको समाप्त कर राजा दसरथने ऋष्यशृङ्गसे कहा ॥ ५८ ॥ महाराज कुल बढ़ानेवाला कर्म (पुत्रेष्टि यज्ञ) आप करें, उन ब्राह्मणप्रवरने राजाकी बात स्वीकार की और कहा—राजन् आपके चार पुत्र होंगे, जिनसे आपका कुल प्रसिद्ध होगा ॥ ५९ ॥ ब्रह्मचारी राजाने ऋष्यशृङ्गके वे मधुर वचन सुने, उनको प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्न हुए। ऋष्यशृङ्ग से राजाने पुनः वही प्रार्थनाकी ॥६०॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौदहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १४ ॥

बुद्धिमान और वेदज्ञ (ऋष्यशृङ्गने) ध्यान (समाधि) लगाकर राजा दसरथके प्रश्नका उत्तर सोचा, पुनः ध्यान टूटनेपर (जब उन्हें बाहरी विषयोंका ज्ञान हुआ तब) वे राजासे बोले ॥ १ ॥ राजन्, पुत्र उत्पन्न होनेके लिए मैं पुत्रेष्टि यज्ञ करूँगा, अथर्ववेदमें जो मंत्र कहे गये हैं उन्हींके द्वारा मैं यज्ञ करूँगा। विधानपूर्वक उस यज्ञके करनेसे अवश्यही सिद्धि होती है, अवश्यही फल होता है ॥ २ ॥ तदनन्तर उस पुत्रीय यज्ञका (जिससे पुत्र उत्पन्न होता हो) पुत्र उत्पन्न होनेके लिए करना प्रारम्भ किया। तेजस्वी ऋष्यशृङ्गने वेदोक्त विधानके अनुसार अग्निमें हवन किया ॥ ३ ॥ गन्धर्व, देवता, सिद्ध (एक देवयोनि) और ऋषि अपने-अपने भाग लेनेके लिए मिलकर उस यज्ञमें आये ॥ ४ ॥ वे सब देवगण विधिपूर्वक उस सभामें आये और शिष्टाचारके अनुसार लोक-सृष्टि-कर्ता ब्रह्माके पास जाकर बोले ॥ ५ ॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः । सर्वान्नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः ॥ ६ ॥
त्वया तस्मै वरो दत्तः प्रीतेन भगवंस्तदा । मानयन्तश्च तं नित्यं सर्वं तस्य क्षमामहे ॥ ७ ॥
उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छ्रितान्द्वेष्टि दुर्मतिः । शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति ॥ ८ ॥
ऋषीन्यक्षान्सगन्धर्वान्ब्राह्मणानसुरांस्तदा । अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥ ९ ॥
नैनं सूर्यः प्रतपति पार्श्वे वाति न मारुतः । चलोर्मिमाली तं दृष्ट्वा समुद्रोऽपि न कम्पते ॥१०॥
तन्महन्नो भयं तस्माद्राक्षसाद्घोरदर्शनात् । वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि ॥११॥
एवमुक्तः सुरैः सर्वैश्चिन्तयित्वा ततोऽब्रवीत् । हन्तायं विदितस्तस्य वधोपायो दुरात्मनः ॥१२॥
तेन गन्धर्वयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम् । अवध्योऽस्मीति वागुक्ता तथेत्युक्तं च तन्मया ॥१३॥
नाकीर्तयदवज्ञानात्तद्रक्षो मानुषांस्तदा । तस्मात्स मानुषाद्वध्यो मृत्युर्नान्योऽस्य विद्यते ॥१४॥
एतच्छ्रुत्वा प्रियं वाक्यं ब्रह्मणा समुदाहृतम् । देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तेऽभवंस्तदा ॥१५॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः । शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥१६॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा । तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ॥१७॥
ब्रह्मणा च समागम्य तत्र तस्थौ समाहितः । तमब्रुवन्सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ॥१८॥

महाराज, आपके वरके प्रभावसे रावण नामका राक्षस हम सब लोगोंको पीड़ा देता है, हमलोग स्वयं या और किसी उपायसे उसका शासन नहीं कर सकते ॥ ६ ॥ महाराज, प्रसन्न होकर आपने उसे वर दिया है, आपके वरकी प्रतिष्ठा रखनेके लिए हमलोग उसके सब अपराधोंको क्षमा करते हैं ॥ ७ ॥ तीनों लोकवासियोंको वह दुःख देता है, वह दुर्बुद्धि जो बड़े हैं उनसे द्वेष करता है और देवराज इन्द्रको भी परास्त करना चाहता है ॥८॥ आपके वरदानसे वह उद्दण्ड होगया है, वह ऋषि,यक्ष गन्धर्व, ब्राह्मण और असुरोंको भी पीड़ा देता है ॥ ९ । सूर्य भी उसके सामने नहीं तपता, उसके पास हवा जोरसे नहीं बहती, रावणको देखकर समुद्र भी नहीं काँपता, जिसमें सदा लहरियाँ उठा करती हैं ॥ १० ॥ उस घोरदर्शन (जिसको देखनेसे भय मालूम हो) राक्षससे हम लोगोंको बड़ाही भय है, भगवन् ! उसके वधके लिए आप कोई उपाय कीजिए ॥ ११ ॥ सब देवताओंके ऐसा कहनेपर (वर देनेके समयकी बात) सोच-विचारकर ब्रह्माने कहा—उस दुरात्मा राक्षसको मारनेका उपाय पहलेसेही निश्चित है ॥ १२ ॥ उस समय (वर लेनेके समय) उस राक्षसने कहा था कि गन्धर्व, यक्ष, देवता और राक्षसोंके द्वारा मैं अवध्य होऊँ, ये मुझे मार न सकें, मैंने भी उसकी बात स्वीकार कर ली थी ॥ १३ ॥ उसने मनुष्यसे अवध्य होनेका वर नहीं माँगा था, इसलिए कि वह मनुष्योंको छोटा समझता था, इस कारण वह मनुष्यके ही द्वारा मारा जायगा, उसकी मृत्युका और दूसरा उपाय नहीं है ॥१४॥

ब्रह्माकी कही इस प्रिय बातको सुनकर देवता और ऋषि उस समय बड़ेही प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥ इसी समय महातेजस्वी विष्णु वहाँ आये । उनके हाथोंमें शंख, चक्र, और गदा थी, वे पीतवस्त्र पहने थे ॥ १६ ॥ जिस तरह मेघपर चढ़कर सूर्य आते हैं, उसी तरह गरुड़पर चढ़कर विष्णु आये, चमकीले सोनेका उनका केयूर (हाथका एक गहना) था, सभी देवताओंने उन्हें प्रणाम किया ॥ १७ ॥ विष्णु आकर ब्रह्माके साथ मिले अर्थात् राक्षसको मारनेका उपाय उन्होंने सोचा और वे वहाँ सावधान होकर

त्वांनियोच्यामहे विष्णोलोकानांहितकाम्यया।राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥१९॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः। अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च॥२०॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम्। तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम्॥२१॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्। सहिदेवान्सगन्धर्वान्सिद्धांश्च ऋषिसत्तमान्॥२२॥
राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योद्रेकेण बाधते। ऋषयश्च ततस्तेन गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥२३॥
क्रीडन्तो नन्दनवने रौद्रेण विनिपातिताः। वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह ॥२४॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः। त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परन्तप ॥२५॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु। एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदशपुंगवः ॥२६॥
पितामहपुरोगांस्तान्सर्वलोकनमस्कृतः। अब्रवीत्त्रिदशान्सर्वान्समेतान्धर्मसंहितान् ॥२७॥
भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्। सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम्॥२८॥
हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्। दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥२९॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन्पृथिवीमिमाम्। एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान्॥३०॥
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः। ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मानं चतुर्विधम्॥३१॥

बैठ गये। नम्रतापूर्वक सब देवताओंने उनकी स्तुति की और वे बोले ॥१८॥ विष्णो, लोक-कल्याणके लिए हमलोग यह भार आपपर देते हैं। विभो, अयोध्याके राजा महाराज दशरथकी, ॥ १९ ॥ जो धर्मज्ञ हैं, दाता हैं, तथा महर्षिके समान तेजस्वी हैं उनकी, तीनों रानियोंके जो श्री ह्री और कीर्तिके समान हैं ॥ २० ॥ आप अपना चार भागकरके पुत्र बनें। वहाँ मनुष्य बनकर आप उस बढ़े हुए समस्त संसारके शत्रु ॥ २१ ॥ रावणको युद्धमें अवश्य मारें, क्योंकि वह देवताओंके द्वारा अवध्य है। देवता गन्धर्व, सिद्ध तथा ऋषियोंको ॥ २२ ॥ यह मूर्ख राक्षस रावण, बलकी अधिकताके कारण, पीड़ा देता है। ऋषि, गन्धर्व तथा अप्सराओंको ॥ २३ ॥ नन्दनवनमें क्रीड़ा करते समय क्रूर राक्षसने मारा है। मुनियोंके साथ मिलकर हमलोग उसके वधके लिए आये हैं, अर्थात् वधका उपाय सोचनेके लिए एकत्र हुए हैं ॥ २४ ॥ सिद्ध, गन्धर्व आदि सभी आपकी शरण आये हैं, क्योंकि, हे शत्रुनाशन भगवान् आपही हम सब लोगोंके रक्षक हैं ॥२५॥ देवशत्रुओंके नाश करनेके लिए आप मनुष्योंके लोकमें आवें, आप मनुष्य-शरीर धारण करें। देवताओंने देवश्रेष्ठ विष्णुकी इस प्रकार स्तुति की ॥ २६ ॥ सबके द्वारा पूजित विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओंसे—जो धर्मपूर्वक उपस्थित हुए थे—बोले ॥ २७ ॥ आपलोग भय छोड़दें, आपका कल्याण होगा, आपके कल्याणके लिए, दुःख दूर करनेके लिए पुत्र, पौत्र, अमात्य, मन्त्री, भाई बन्धुके साथ ॥ २८ ॥ उस अजेय और देवता तथा ऋषियोंको भय देनेवाले क्रूर राक्षसका मैं बध करूंगा। दस हजार और दस सौ वर्षों तक ॥ २९ ॥ इस पृथ्वीका पालन करता हुआ मैं इस पृथिवीमें निवास करूँगा। विष्णुने देवताओंको ऐसा वर दिया, क्योंकि वे आत्मवान हैं, स्वाधीन हैं, वे अपनी इच्छाके अनुसार जन्म धारण कर सकते हैं, उनके जन्म धारण करनेके लिये कर्मकी आवश्यकता नहीं हैं ॥ ३० ॥ विष्णुने मनुष्यलोकमें अपने जन्मग्रहण करनेके योग्य स्थान ढूँढ़ा, उन्होंने निश्चय किया कि अयोध्यामें जन्म धारण करूँगा। ऐसा निश्चय करके भगवान् विष्णुने अपना चार भाग (चार

पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् । ततो देवर्षिगन्धर्वाः सरुद्राः साप्सरोगणाः ॥
स्तुतिभिर्दिव्यरूपाभिस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३२॥
तमुद्धतं रावणमुग्रतेजसं प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वरद्विषम् ।
विरावणं साधु तपस्विकण्टकं तपस्विनामुद्धरतं भयावहम् ॥ ३३ ॥
तमेव हत्वा सबलं सबान्धवं विरावणं रावणमुग्रपौरुषम् ।
स्वर्लोकमागच्छ गतज्वरश्चिरं सुरेन्द्रगुप्तं गतदोषकल्मषम् ॥ ३४ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥
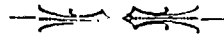
षोडशः सर्गः १६

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः । जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः । यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥ २ ॥
एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् । मानुषं रूपमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥ ३ ॥
स हि तेपे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दमः । येन तुष्टोऽभवद्ब्रह्मा लोककृल्लोकपूर्वजः ॥४ ॥
संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः । नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥५॥

रूप) किया ॥ ३१ ॥ राजा दशरथको अपना पिता बनाना निश्चय किया अर्थात् दशरथके यहाँ जन्म ग्रहण करनेका विचार पक्का किया, पुनः देवता, ऋषि, गन्धर्व, रुद्र तथा अप्सराओंने भगवानके शुद्ध रूपके वर्णन करनेवाली स्तुतियोंसे उनकी स्तुति की ॥ ३२ ॥ उस प्रसिद्ध पराक्रमी, अहङ्कारी और इन्द्र-के शत्रु रावणको मारिये, वह सबको तंग करता है, वह तपस्वियोंका शत्रु है और उनके लिये भयदायी है ॥ ३३ ॥ उस परम पराक्रमी और सबको पीड़ा देनेवाले रावणका बान्धवोंके साथ वध करके दोष-पापसे रहित, इन्द्रके द्वारा रक्षित स्वर्गलोकमें आप आनन्दपूर्वक आवें, शत्रुओंका नाश करके आप अपने लोकमें जाँय ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पन्द्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १५ ॥

देवताओंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर नारायण, रावणके वधका उपाय जानते हुए भी इस प्रकार मधुर वचन बोले ॥१॥ हे देवगण, उस राक्षसके वधका उपाय क्या है, जिस उपायके अवलम्बन-से मैं उस ऋषियोंके शत्रु रावणको मार सकूँगा ॥ २ ॥ विष्णुकी यह बात सुनकर सभी देवता अविनाशी विष्णुसे इस प्रकार बोले—आप मनुष्य-रूप धरकर युद्धमें रावणको मारें ॥३॥ उस शत्रु-ओंका दमन करनेवाले राक्षसने बहुत दिनों तक बड़ी कठोर तपस्या की है, उसकी तपस्यासे संसारकी सृष्टि करनेवाले लोकपितामह—ब्रह्मा उसपर प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ प्रभु ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस राक्षसको वरदान दिया कि मनुष्यको छोड़कर और किसी प्राणीसे तुमको भय न होगा, तुम मारे न जाओगे ॥ ५ ॥ रावणने जान-बूझकर मनुष्यसे रक्षा पानेका वर नहीं मांगा था (क्योंकि उसका विश्वास था

अवज्ञाताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः । एवं पितामहात्तस्माद्वरदानेन गर्वितः ॥ ६ ॥
उत्सादयति लोकांस्त्रीन्स्त्रियश्चाप्युपकर्षति । तस्मात्तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परंतप ॥ ७ ॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान्। पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥ ८ ॥
स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन्काले महाद्युतिः । अयजत्पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिसूदनः ॥ ९ ॥
स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम् । अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः॥ १० ॥
ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् । प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महाबलम् ॥ ११ ॥
कृष्णं रक्ताम्बरधरं रक्तास्यं दुन्दुभिस्वनम् । स्निग्धहर्यक्षतनुजश्मश्रुप्रवरमूर्धजम् ॥ १२ ॥
शुभलक्षणसंपन्नं दिव्याभरणभूषितम् । शैलशृङ्गसमुत्सेधं दृप्तशार्दूलविक्रमम् ॥ १३ ॥
दिवाकरसमाकारं दीप्तानलशिखोपमम् । तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम् ॥१४॥
दिव्यपायससंपूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम्। प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव ॥१५॥
समवेक्ष्याब्रवीद्वाक्यमिदं दशरथं नृपम् । प्राजापत्यं नरं विद्धि मामिहाभ्यागतं नृप ॥१६॥
ततः परं तदा राजा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः । भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किमहं करवाणि ते ॥१७॥

कि ये तो हमलोगोंके भोजन हैं, इनसे क्या बुराई हो सकती है) । इस प्रकार ब्रह्मासे वर पाकर वह बहुत अहङ्कारी होगया है, ॥ ६ ॥ और तीनों लोकोंको पीड़ा देता है, स्त्रियोंका भी हरण करता है, अतएव हे शत्रु-विनाशन, मनुष्यके ही द्वारा उसका वध होसकेगा ॥ ७॥ देवताओंकी ऐसी बात सुनकर आत्मवानविष्णुने (इच्छानुसार जन्म-धारण करनेकी शक्ति रखनेवाले) दसरथको ही अपना पिता बनाना निश्चित किया, अर्थात् उन्हींके यहां जन्म लेना निश्चित किया ॥ ८ ॥

महातेजस्वी और शत्रुसूदन राजा दशरथ भी उस समय तक अपुत्र थे, उस समय पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे उन्होंने भी पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया ॥ ९ ॥ विष्णुने मनुष्य-जन्म-धारण करना निश्चित किया, तदनन्तर ब्रह्मासे बात-चीत उन्होंने की, महर्षियों तथा देवताओंने उनकी पूजा की, पुनः विष्णु वहांसे अन्तर्धान होगये ॥ १० ॥

तदनन्तर यजमान राजा दसरथकी यज्ञाग्निसे बड़ा तेजस्वी, महाबली और महापराक्रमी (अलौकिक कार्य भी पराक्रम द्वारा करदेनेवाला) प्राणी प्रकट हुआ ॥ ११ ॥ वह काला था, लाल वस्त्र पहने हुए था, उसका मुँह लाल था, नक्कारेकी आवाजके समान आवाज थी, सिंहके बालके समान उसकी दाढ़ी और मस्तकके बाल थे ॥ १२ ॥ उस पुरुषमें उत्तम लक्षण विद्यमान थे, दिव्य आभरण वह धारण किये था। पर्वतके शिखरके समान ऊँचा था । दृप्त सिंहके समान उसकी गति थी, सूर्यके समान उसका तेज चारो ओर फैल रहा था, पासवालोंके लिए उसका ॥ १३ ॥ तेज जलती अग्नि-शिखाके समान असह्य था । (वह तेजस्वी पुरुष) एक उत्तम सुवर्णके बड़े पात्रको, जो चाँदीके पात्रसे ढँका हुआ था ॥ १४ ॥ जो दिव्य पायस (तस्मै) से भरा था, दोनों हाथोंसे पकड़कर प्रकट हुआ, मानो मायामयी (अद्भुत) प्रिय स्त्रीको दोनों हाथोंसे पकड़कर प्रकट हुआ हो ॥ १५ ॥ दसरथको देखकर उसने यह कहा, राजन्, मैं प्रजापति ब्रह्माके यहाँसे आया हुआ हूँ, मैं आपके यहाँ आया हूँ ऐसा आप समझें ॥ १६ ॥ उसकी बात सुनकर राजा दसरथने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—भगवन्, मैं

अथो पुनरिदं वाक्यं प्राजापत्यो नरोऽब्रवीत्। राजन्नर्चयता देवानद्य प्राप्तमिदं त्वया ॥१८॥
इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम्। प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम्॥१९॥
भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै। तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान्यदर्थं यजसे नृप ॥२०॥
तथेति नृपतिः प्रीतः शिरसा प्रतिगृह्य ताम्। पात्रीं देवान्नसंपूर्णां देवदत्तां हिरण्मयीम् ॥२१॥
अभिवाद्य च तद्भूतमद्भुतं प्रियदर्शनम्। मुदा परमया युक्तश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥२२॥
ततो दशरथः प्राप्य पायसं देवनिर्मितम्। बभूव परमप्रीतः प्राप्य वित्तमिवाधनः ॥२३॥
ततस्तदद्भुतप्रख्यं भूतं परमभास्वरम्। संवर्तयित्वा तत्कर्म तत्रैवान्तरधीयत ॥२४॥
हर्षरश्मिभिरुद्द्योतं तस्यान्तःपुरमाबभौ। शारदस्याभिरामस्य चन्द्रस्येव नभोंऽशुभिः ॥२५॥
सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत्। पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः ॥२६॥
कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा। अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥२७॥
कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्। प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम् ॥२८॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः। एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक्॥२९॥
ताश्चैवं पायसं प्राप्य नरेन्द्रस्योत्तमस्त्रियः। संमानं मेनिरे सर्वाः प्रहर्षोदितचेतसः ॥३०॥

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान्प्रतिपेदिरे तदा ॥ ३१ ॥

आपका यहाँ स्वागत करता हूँ, आपके लिए मैं क्या करूँ ? ॥ १७ ॥ राजाके उत्तरमें उस प्राजापत्य मनुष्यने कहा—राजन, देवताओंके लिए आपने यज्ञ किया है और आपको यह मिला है ॥१८॥ महाराज, यह पायस है और देवताओंका बनाया है, इसे आप लें, इससे आपको पुत्र होगा और आरोग्य-वृद्धिके लिए यह उत्तम वस्तु है ॥ १९ ॥ आप अपनी योग्य स्त्रियों महारानियोंको यह खानेके लिए दें, उनसे आपको पुत्र होगा; राजन, जिस पुत्रप्राप्तिके लिए आप यज्ञ कर रहे हैं ॥ २० ॥ राजा दसरथने प्रसन्न होकर उस देवताके यहाँसे आये, देवान्नसे पूर्ण, सुवर्ण-पात्रको लेकर प्रणाम किया ॥ २१ ॥ वह प्राणी अद्भुत था, पर देखनेमें भयानक न था; किन्तु सुन्दर था। उसकी राजा दसरथने बड़ी प्रसन्नतासे प्रदक्षिणा की ॥ २२ ॥

देवताओंका बनाया पायस पाकर राजा दसरथ बहुत प्रसन्न हुए, वे वैसेही प्रसन्न हुए जिस प्रकार दरिद्र धन पाकर प्रसन्न होता है ॥ २३ ॥ वह अद्भुत शरीर-धारी परम तेजस्वी प्राणी यह सब काम समाप्तकर वहीं अन्तर्धान होगया ॥ २४ ॥ राजा दसरथकी महारानियाँ बहुतही शोभित हुई, जिस प्रकार शरद ऋतुके रमणीय चन्द्रमाकी किरणोंसे आकाशकी शोभा होती है ॥ २५ ॥ राजा रानियोंके महलमें गये और उन्होंने कौशल्यासे कहा—यह पायस लो, इससे तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा ॥२६॥ उस पात्रमेंका आधा पायस राजाने कौसल्याको दिया और उस आधेका आधा सुमित्राको॥२७॥ बचे हुएका आधा भाग राजाने कैकयीको दिया। पुनः उस पायसके बचे हुए आधे भागको ॥ २८ ॥ सोचकर सुमित्राको महाबुद्धिमान राजाने दिया। इस प्रकार राजाने अपनी महारानियों में वह पायस बाँट दिया ॥ राजा दसरथकी महारानियाँ पायस पाकर बहुत प्रसन्न हुई और उन्होंने समझा कि महा-

ततस्तु राजा प्रतिवीक्ष्य ताः स्त्रियः प्ररूढगर्भाः प्रतिलब्धमानसः ।
बभूव हृष्टस्त्रिदिवे यथा हरिः सुरेन्द्रसिद्धर्षिगणाभिपूजितः ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षोडशः सर्गः ॥१६॥

सप्तदशः सर्गः १७

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः । उवाच देवताः सर्वाः स्वयंभूर्भगवानिदम् ॥१॥
सत्यसंधस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः । विष्णोःसहायान्बलिनःसृजध्वं कामरूपिणः॥२॥
मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमाञ्जवे । नयज्ञान्बुद्धिसंपन्नान्विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥३॥
असंहार्यानुपायज्ञान्दिव्यसंहननान्वितान् । सर्वास्त्रगुणसंपन्नानमृतप्राशनानिव ॥४॥
अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वीणां तनूषु च । यक्षपन्नगकन्यासु ऋक्षविद्याधरीषु च ॥५॥
किन्नरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च । सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान् ॥६॥
पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुंगवः । जृम्भमाणस्य सहसा मम वक्त्रादजायत ॥७॥

राजने पायस देनेमें पक्षपात नहीं किया ॥ ३० ॥ महाराजकी महारानियोंने अलग-अलग उस पायसको खाकर शीघ्र ही अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी गर्भ धारण किया ॥ ३१ ॥ राजाने अपनी महारानियोंको गर्भवती देखा और उन्होंने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ समझा । वे वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे इन्द्र, सिद्ध और ऋषियोंके द्वारा पूजित होनेपर भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥३२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सोलहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १६ ॥

महात्मा राजा दसरथके यहाँ, जब भगवान विष्णुने पुत्र रूपसे उत्पन्न होना स्वीकार किया, उस समय ब्रह्माने सब देवताओंसे ऐसा कहा ॥ १ ॥ सत्यप्रतिज्ञ, वीर और हमलोगोंके हितैषी विष्णुके सहायकों की (मर्त्यलोकमें) आपलोग सृष्टि करें, जो बलवान हों और अपनी इच्छाके अनुसार अपने रूपमें परिवर्तन कर सकते हों, ॥२॥ जो माया (राक्षसोंके छल कपटको) जान सकें, वीर हों, वायुके समान हों, नीति जाननेवाले हों, वेगवाले बुद्धिमान् हों और जो पराक्रममें विष्णुके समान हों, ॥ ३ ॥ जो शत्रुके द्वारा अपने पक्षसे हटाये न जासकें, अवसरके अनुसार उपाय करनेकी बुद्धि रखते हों, जिनके शरीरकी गठन अलौकिक हो, अस्त्र-विद्याका पूरा ज्ञान रखते हों, जो देवताओंके समान हों ॥ ४ ॥ प्रधान अप्सराओं, गन्धर्वकी स्त्रियों, यक्ष और नागकी कन्याओं, भालुकी स्त्रियों, विद्याधरियों, किन्नरियों और वानरियोंमें अपने समान पराक्रमी पुत्र आपलोग उत्पन्न करें, पर उनका वानरका रूप होना चाहिए ॥ ५—६ ॥ मैंने (ब्रह्माने) पहले ही जाम्बवान्‌को उत्पन्न किया है, वह भालुओंका प्रधान है, मैं एक बार जँभाई लेरहा था कि सहसा मेरे मुँहसे वह उत्पन्न होगया ॥ ७ ॥

ते तथोक्ता भगवता तत्प्रतिश्रुत्य शासनम् । जनयामासुरेवं ते पुत्रान्वानररूपिणः ॥ ८ ॥
ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः । चारणाश्च सुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः ॥ ९ ॥
वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम् । सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतां वरः ॥१०॥
बृहस्पतिस्त्वजनयत्तारं नाम महाकपिम् । सर्ववानरमुख्यानां बुद्धिमन्तमनुत्तमम् ॥११॥
धनदस्य सुतः श्रीमान्वानरो गन्धमादनः । विश्वकर्मा त्वजनयन्नलं नाम महाकपिम् ॥१२॥
पावकस्य सुतः श्रीमान्नीलोऽग्निसदृशप्रभः । तेजसा यशसा वीर्यादत्यरिच्यत वीर्यवान् ॥१३॥
रूपद्रविणसंपन्नावश्विनौ रूपसंमतौ । मैन्दं च द्विविदं चैव जनयामासतुः स्वयम् ॥१४॥
वरुणो जनयामास सुषेणं नाम वानरम् । शरभं जनयामास पर्जन्यस्तु महाबलः ॥१५॥
मारुतस्यौरसः श्रीमान्हनूमान्नाम वानरः । वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे ॥१६॥
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान्बलवानपि । ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः ॥१७॥
अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः । ते गजाचलसंकाशा वपुष्मन्तो महाबलाः ॥१८॥
ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे । यस्य देवस्य यद्रूपं वेषो यश्च पराक्रमः ॥१९॥
अजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक्पृथक् । गोलाङ्गूलेषु चोत्पन्नाः किंचिदुन्नतविक्रमाः ॥२०॥

देवताओंने ब्रह्माकी बातें सुनीं और उसके अनुसार काम करनेका उनलोगोंने वचन दिया, तथा वानर-रूपधारी पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ ऋषि, महात्मा, सिद्ध, विद्याधर, नाग, चारण इन सबने वानर पुत्र उत्पन्न किये जो सबके सब वीर थे ॥ ९ ॥ महेन्द्र पर्वतके समान विशालकाय वालिको इन्द्रने उत्पन्न किया जो वानरोंका राजा हुआ । तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्यने सुग्रीवको उत्पन्न किया ॥ १० ॥ बृहस्पतिने तार नामक एक बहुत बड़े वानरको उत्पन्न किया, यह सब वानरोंमें अधिक बुद्धिमान् था, इससे बढ़कर बुद्धिमान् दूसरा वानर नहीं था ॥ ११ ॥ गन्धमादन नामक वानरको कुबेरने उत्पन्न किया । विश्वकर्माने नल नामक एक बहुत बड़े वानरको उत्पन्न किया ॥ १२ ॥ अग्निका पुत्र नील हुआ जो अग्निके समानही तेजस्वी था । वह तेज, यश और पराक्रमके कारण एक विलक्षणही प्राणी मालूम होता था ॥ १३ ॥ अपने रूपके लिए प्रसिद्ध रूपवान् और धनवान् अश्विनोंने मन्द और द्विविद नामक वानरोंको स्वयं उत्पन्न किया ॥ १४ ॥ वरुणने सुषेण नामक वानरको उत्पन्न किया । महाबलवान पर्जन्य (इस नामका मेघोंका एक देवता) ने शरभको उत्पन्न किया ॥ १५ ॥ हनुमान् नामक वानर वायुके द्वारा उत्पन्न हुए, जिनका शरीर वज्रके समान गठा हुआ था और जो गरुड़के समान वेगवान थे ॥ १६ ॥ ये सब श्रेष्ठ वानरोंमें बुद्धिमान् और बलवान थे । ऐसे कई हजार वानर उत्पन्न हुए, ये सब रावणके वधके लिए उद्यत होंगे ॥ १७ ॥ इनके बलका अन्दाजा कोई नहीं कर सकता था, ये सभी वीर अनेक प्रकारसे चलनेवाले, अपनी इच्छासे अनेक रूप धरनेवाले और हाथी तथा पर्वतके समान विशालकाय थे ॥ १८ ॥ भालु और गोपुच्छ वानर (जिनकी पूँछ गौकी पूँछके समान थी) शीघ्रही उत्पन्न हुए । जिस देवताका जैसा वेष, जैसा रूप और जैसा पराक्रम था ॥ १९ ॥ उसीके अनुसार वे सब वानर उत्पन्न हुए । गोपुच्छ जातिके वानरोंमें भी बड़े पराक्रमी वानर उत्पन्न हुए ॥ २० ॥ भालुकी स्त्रियों तथा किन्न-

ऋक्षीषु च तथा जाता वानराः किन्नरीषु च। देवा महर्षिगन्धर्वास्तार्क्ष्ययक्षा यशस्विनः ॥२१॥
नागाः किंपुरुषाश्चैव सिद्धविद्याधरोरगाः। बहवो जनयामासुर्हृष्टास्तत्र सहस्रशः ॥२२॥
चारणाश्च सुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः। वानरान्सुमहाकायान्सर्वान्वै वनचारिणः ॥२३॥
अप्सरःसु च मुख्यासु तथा विद्याधरीषु च। नागकन्यासु च तदा गन्धर्वीणां तनूषु च ॥
कामरूपबलोपेता यथाकामविचारिणः। ॥ २४ ॥
सिंहशार्दूलसदृशा दर्पेण च बलेन च। शिलाप्रहरणाः सर्वे सर्वे पर्वतयोधिनः ॥२५॥
नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः। विचालयेयुः शैलेन्द्रान्भेदयेयुः स्थिरान्द्रुमान् ॥२६॥
क्षोभयेयुश्च वेगेन समुद्रं सरितां पतिम्। दारयेयुः क्षितिं पद्भ्यामाप्लवेयुर्महार्णवान् ॥२७॥
नभस्तलं विशेयुश्च गृह्णीयुरपि तोयदान्। गृह्णीयुरपि मातङ्गान्मत्तान्प्रव्रजतो वने ॥२८॥
नर्दमानांश्च नादेन पातयेयुर्विहङ्गमान्। ईदृशानां प्रसूतानि हरीणां कामरूपिणाम् ॥२९॥
शतं शतसहस्राणि यूथपानां महात्मनाम्। ते प्रधानेषु यूथेषु हरीणां हरियूथपाः ॥३०॥
बभूवुर्यूथपश्रेष्ठान्वीरांश्चाजनयन्हरीन्। अन्ये ऋक्षवतः प्रस्थानुपतस्थुः सहस्रशः ॥३१॥
अन्ये नानाविधाञ्छैलान्काननानि च भेजिरे। सूर्यपुत्रं च सुग्रीवं शक्रपुत्रं च वालिनम् ॥३२॥
भ्रातावुपतस्थुस्ते सर्वे च हरियूथपाः। नलं नीलं हनूमन्तमन्यांश्च हरियूथपान् ॥३३॥

रियोंके गर्भसेभी वानर उत्पन्न हुए। देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुड़, तथा ॥ २१ ॥ नाग, किंपुरुष, सिद्ध, विद्याधर, उरग (मालूम होता है कि इस नामसे प्रसिद्ध नागजातिकी कोई शाखा है) इन सबने प्रसन्नता-पूर्वक जहाँ-तहाँ हजारों पुत्र उत्पन्न किये ॥ २२ ॥ चारणोंने वीर पुत्र उत्पन्न किये, जो वनचारी वानर थे, जिनका शरीर बड़ाही विशाल था ॥ २३ ॥ प्रधान अप्सराओं, विद्याधरियों, नागकन्याओं और गन्धर्वकी स्त्रियोंमें इच्छानुसार रूपधारी, बली और इच्छानुसार भ्रमण करनेवाले चारणोंने पुत्र उत्पन्न किये ॥ २४ ॥ ये सिंह और बाघके समान घमंडी तथा बलवान् थे, शिलाएँ (पत्थर) इनका अस्त्र हुईं और पर्वतोंको अस्त्र बनाकर ये युद्ध करनेवाले थे ॥ २५ ॥ नख और आयुध इन सबके अस्त्र हुए। ये सब, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रको जाननेवाले हुए। ये पर्वतोंको भी उखाड़ सकते थे और स्थिर वृक्षोंको भी तोड़ सकते थे॥ २६ ॥ अपने वेगसे समुद्रको भी क्षुभित करनेवाले थे, पैरोंके आघातसे पृथ्वीको फोड़नेवाले थे और बड़े-बड़े समुद्रोंको पार करनेवाले थे ॥ २७ ॥ आकाशमें जासकते थे, मेघोंको रोक सकते थे, वनमें घूमते हुए मतवाले हाथियोंको भी पकड़ सकते थे ॥ २८ ॥ अपने गर्जनसे आकाशमें उड़ते हुए पक्षी भी ये नीचे गिरा दे सकते थे। स्वेच्छारूपधारी ऐसे वानर उत्पन्न किये गये ॥ २९ ॥ जिनकी संख्या एक करोड़ थी। वे वानर प्रधान-प्रधान वानर-यूथोंके अधिपति हुए ॥ ३० ॥ इन प्रधान यूथपतियोंने भी वीर वानर उत्पन्न किये। इन वानरोंमेंसे हजारों ऋक्षवान् पर्वत पर चले गये ॥ ३१ ॥ अन्य वानर भिन्न-भिन्न पर्वतों और वनोंमें जाकर रहने लगे। सूर्यपुत्र सुग्रीव और इन्द्रके पुत्र बालि ॥ ३२ ॥ इन दोनों भाइयोंकी सेवामें अनेक यूथपति वानर रह गये। नल, नील, हनुमान् तथा अन्य वानर सेनापतियोंकी सेवामें भी अनेक वानर रहे ॥ ३३ ॥ वे सब-के-सब गरुड़के समान

ते तार्क्ष्यबलसंपन्नाः सर्वे युद्धविशारदाः । विचरन्तोऽर्दयन्सर्वान्सिंहव्याघ्रमहोरगान् ॥३४॥
महाबलो महाबाहुर्वाली विपुलविक्रमः । जुगोप भुजवीर्येण ऋक्षगोपुच्छवानरान् ॥३५॥
तैरियं पृथिवी शूरैः सपर्वतवनार्णवा । कीर्णा विविधसंस्थानैर्नानाव्यञ्जनलक्षणैः ॥३६॥
तैर्मेघवृन्दाचलकूटसंनिभैर्महाबलैर्वानरयूथपाधिपैः ।
बभूव भूर्भीमशरीररूपैः समावृता रामसहायहेतोः ॥ ३७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः १८

निवृत्ते तु क्रतौ तस्मिन्हयमेधे महात्मनः । प्रतिगृह्यामरा भागान्प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥१॥
समाप्तदीक्षानियमः पत्नीगणसमन्वितः । प्रविवेश पुरीं राजा सभृत्यबलवाहनः ॥२॥
यथार्हं पूजितास्तेन राज्ञा च पृथिवीश्वराः । मुदिताः प्रययुर्देशान्प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥३॥
श्रीमतां गच्छतां तेषां स्वगृहाणि पुरात्ततः । बलानि राज्ञां शुभ्राणि प्रहृष्टानि चकाशिरे ॥४॥
गतेषु पृथिवीशेषु राजा दशरथः पुनः । प्रविवेश पुरीं श्रीमान्पुरस्कृत्य द्विजोत्तमान् ॥५॥

बलवान् थे, युद्धविद्यामें निपुण थे, इधर-उधर विचरण करनेके समय सिंह, व्याघ्र तथा बड़े-बड़े साँप, जो कुछ भी उन्हें मिल जाता, उसे मार डालते थे ॥ ३४ ॥ महाबाहु बालि बड़ा पराक्रमी था, वह अपने पराक्रमसे ऋक्ष और गोपुच्छ जातिके वानरोंकी रक्षा करता था ॥ ३५ ॥ शूर युद्धमें उत्साह रखनेवाले), अनेक प्रकारकी सूरत शकलवाले, परस्पर पहिचानके लक्षणवाले उन वानरोंसे पर्वत, वन और समुद्र सहित समस्त पृथिवी भर गयी ॥ ३६ ॥ मेघ-समूह तथा पर्वतशिखरके समान शरीरवाले महाबलवान् वानर यूथपतियोंसे यह समस्त पृथिवी भर गयी । ये सब रामचन्द्रकी सहायताके लिए अवतीर्ण हुए थे और इनका शरीर बड़ा ही भयानक था ॥ ३७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकांडका सत्रहवाँ सर्ग समाप्त ॥ १७ ॥

महात्मा दशरथके उस अश्वमेध यज्ञके समाप्त होनेपर देवगण अपना-अपना यज्ञीय भाग लेकर जहाँ से आये थे वहाँ गये, अर्थात् अपने-अपने घर गये ॥ १ ॥ यज्ञके लिए जो दीक्षा राजाने ली थी, वह भी समाप्त हुई, वे अपनी महारानियोंके संग भृत्य, सेना, सवारी आदिके साथ अयोध्यापुरीमें गये ॥ २ ॥ राजा दसरथने निमन्त्रित राजाओंका यथायोग्य आदर-सत्कार किया और वे वसिष्ठको प्रणाम करके अपने-अपने देशोंको गये ॥ ३ ॥ जब वे बड़े-बड़े ऐश्वर्यशाली राजा अयोध्यासे अपने घरके लिए चले उस समय उनकी स्वच्छ और प्रसन्न सेनाकी बड़ी शोभा हुई ॥ ४ ॥ राजा लोगोंके बिदा होनेपर

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यश्रृङ्गः सुपूजितः । अनुगम्यमानो राज्ञा च सानुयात्रेण धीमता ॥६॥
एवं विसृज्य तान्सर्वान्राजा संपूर्णमानसः । उवास सुखितस्तत्र पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन् ॥७॥
ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः । ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥८॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु । ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥९॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम् । कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥१०॥
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम् । लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥११॥
कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा । यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥१२॥
भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः । साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागःसर्वैःसमुदितो गुणैः॥१३॥
अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ । वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥१४॥
पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः । सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ॥१५॥
राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक् । गुणवन्तोऽनुरूपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः ॥१६॥

राजा दसरथने ब्राह्मणोंको आगे करके अपनी नगरीमें प्रवेश किया ॥ ५ ॥ अपनी पत्नी शान्ताके साथ ऋष्यश्रृङ्ग गये । राजाने इनका बड़ाही आदर-सत्कार किया था, वे स्वयं अपने भृत्योंके साथ ऋषिके साथ गये ॥ ६ ॥ इस प्रकार राजाका मनोरथ पूरा हुआ, उन्होंने निमंत्रित राजाओंको बिदा कर दिया, वे सुखपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे और पुत्रोत्पत्तिकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ७ ॥

यज्ञ समाप्त होने पर छ ऋतुएँ और बीतीं अर्थात् एक वर्ष बीता, बारहवें चैत महीनेमें नवमी तिथिको ॥ ८ ॥ जब पुनर्वसु नक्षत्र था, पाँच (रवि, मंगल, शनि, गुरु, शुक्र) ग्रह अपने उच्चस्थानमें वर्तमान थे, बृहस्पति चन्द्रमाके साथ थे कर्कट लग्नमें ॥ ९ ॥ कौसल्याने अलौकिक लक्षणोंसे युक्त रामको उत्पन्न किया, वे जगन्नाथ थे, वे सबसे नमस्कृत थे (अथवा वे रावणादिके वधके द्वारा सब लोगोंके दुःख दूर करेंगे, उस समय सब लोगोंकी पूजा प्राप्त करेंगे) ॥ १० ॥ इक्ष्वाकुवंशमें विष्णुके आधे भागसे पुत्र उत्पन्न हुआ अर्थात् विष्णुका अंशभूत पुत्र हुआ । उसकी आँखें लाल थीं, हाथ लम्बे थे, ओठ लाल थे और स्वर नगारेके शब्दके समान दूर तक फैलनेवाला था ॥ ११ ॥ उस अद्भुत तेजस्वी पुत्रको पानेसे कौसल्याकी बड़ी शोभा हुई, जिस प्रकार देवराज वज्रपाणि इन्द्रसे अदितिकी शोभा हुई थी ॥१२॥ महारानी कैकेयीने भरत नामक पुत्र उत्पन्न किया, यह पुत्र रामचन्द्रके समान पराक्रमी था, यह विष्णुके चौथेभागसे उत्पन्न हुआ था तथा अन्य समस्त गुण इसमें वर्तमान थे ॥१३॥ लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक दो पुत्रोंको सुमित्राने उत्पन्न किया, ये बड़ेही वीर, अस्त्र-विद्यामें बड़े प्रवीण और रामचन्द्रके अनुयायी हुए ॥ १४ ॥ सुन्दर बुद्धिवाले भरत पुष्य नक्षत्र और मीन लग्नमें उत्पन्न हुए, सुमित्राके दोनों पुत्र श्लेषा नक्षत्रमे उत्पन्न हुए जब कि सूर्य कर्कट लग्नमें उदित हुआ था ॥ १५ ॥ इस प्रकार महात्मा राजा दसरथके चार पुत्र उत्पन्न हुए, उन चारोंमें पृथक्-पृथक् अनन्य साधारण गुण थे, उनमें योग्य व्यवहार था, बड़े छोटेका जैसा व्यवहार होना चाहिए वैसा था, वे प्रोष्ठपदके समान कान्तिमान् थे (पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदको प्रोष्ठपद कहते हैं, इन

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥१७॥
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः । रथ्याश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः ॥१८॥
गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः । विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विताः ॥१९॥
प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधबन्दिनाम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः ॥२०॥
अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत् । ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम् ॥२१॥
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा । वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा ॥२२॥
ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि । अदद्द्ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु ॥२३॥
तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत् । तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः ॥२४॥
बभूव भूयो भूतानां स्वयंभूरिव संमतः । सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः ॥२५॥
सर्वे ज्ञानोपसंपन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः । तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥२६॥
इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः । गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु संमतः ॥२७॥
धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः । बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः॥२८॥

दोनों नक्षत्रोंमें दो-दो ताराएँ होती हैं, दो-दो आपसमें मिली हुई होती हैं और फिर चारों मिली हुई होती हैं, इसी तरह यहाँ भी दो-दो भाई साथ थे और चारो एक थे) ॥ १६ ॥

इस प्रसन्नताके समय गन्धर्वगण मधुर स्वरमे गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, देवताओंके नगाड़े बजने लगे और आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ १७ ॥ अयोध्यामें बहुत बड़ा उत्सव हुआ, बहुत आदमियोंकी भीड़ हुई । रास्ते मनुष्योंसे तथा नट-नर्तकोंसे भरगये ॥१८॥ गानेवाले, बजानेवाले तथा वेदपाठ करनेवालेके कारण वे मार्ग बोलते हुए मालूम होते थे और वे मार्ग रत्नोंमे भरे हुए थे (विक्रीके लिए रत्न रखे गये होंगे या राजाकी ओरमे लोगोंके लूटनेके लिए रखे गये होंगे) ॥ १९ ॥ सूत, मागध, वन्दियों (यश गानेवाले) को जो देना था, वह राजाने दिया, ब्राह्मणोंको धन तथा हजारों गौ दक्षिणामें दीं ॥२० ॥ ग्यारह दिन बीतनेपर राजाने उन पुत्रोंके नाम-संस्कार किये, ज्येष्ठ पुत्रका नाम राम, और कैकयीके पुत्रका नाम भरत रखा गया ॥ २१ ॥ सुमित्राके एक लड़केका नाम लक्ष्मण और दूसरेका शत्रुघ्न रखा गया । महर्षि वशिष्ठने प्रसन्नतापूर्वक इनका नामकरण-संस्कार किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों, नगरवासियों तथा राज्यके अन्य मनुष्योंको भोजन कराया गया और ब्राह्मणोंको उज्ज्वल बहुतसा रत्न दिया गया ॥ २३ ॥ उन पुत्रोंके जन्म-संबन्धी अन्य कृत्य भी राजाने कराये । ज्येष्ठ रामचन्द्र उन सबमें पताकाके समान थे, पिताको बहुतही प्रिय थे ॥ २४ ॥ रामचन्द्र अन्य प्राणियोंको भी ब्रह्माके समान आदरणीय हुए । वे चारो वेदज्ञ थे, चारो शूर थे और चारो लोक-कल्याण करनेवाले थे ॥ २५ ॥ वे सभी ज्ञानी थे, सभी गुणवान् थे, फिर भी उनमें सत्यपराक्रमी तेजस्वी रामचन्द्र ॥ २६ ॥ सबको प्रिय थे, जिस प्रकार निर्मल (पूर्णिमाका) चन्द्रमा सबको प्रिय होता है । हाथी और घोड़ेकी सवारी तथा रथ हाँकनेमें रामचन्द्र बड़े निपुण हुए ॥ २७ ॥ धनुर्वेदके अभ्यासमें सदा लगे रहते थे और पिताकी सेवा करते थे । अपने आश्रितोंको धन देनेवाले

रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः । सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ॥२९॥
लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो बहिःप्राण इवापरः । न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥३०॥
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना । यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ॥३१॥
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् । भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः ॥३२॥
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः । स चतुर्भिर्महाभागैः पुत्रैर्दशरथः प्रियैः ॥३३॥
बभूव परमप्रीतो देवैरिव पितामहः । ते यदा ज्ञानसंपन्नाःसर्वे समुदिता गुणैः ॥३४॥
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः । तेषामेवंप्रभावाणां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ॥३५॥
पिता दशरथो हृष्टो ब्रह्मा लोकाधिपो यथा । ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः ॥३६॥
पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः । अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति ॥३७॥
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायः सबान्धवः । तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः ॥३८॥
अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । स राज्ञो दर्शनाकांक्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह॥३९॥
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनः सुतम् । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राज्ञो वेश्म प्रदुद्रुवुः ॥४०॥
संभ्रान्तमनसः सर्वे तेन वाक्येन चोदिताः । ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा ॥४१॥

लक्ष्मण बाल्यावस्थासे ही रामचन्द्रके अनुगत थे, उनकी सेवा-शुश्रूषा किया करते थे ॥ २८ ॥ सबको आनन्द देनेवाले बड़े भाई रामचन्द्रके सब प्रिय कार्य लक्ष्मण अपने शरीरसे करते थे ॥ २९ ॥ लक्ष्मण रामचन्द्रके बाहर चलनेवाले प्राणोंके समान प्रिय थे, पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र लक्ष्मणके बिना सो भी नहीं सकते थे ॥ ३० ॥ रामचन्द्रके लिए जो उत्तम भोजन आता था, उसे वे लक्ष्मणके बिना नहीं खाते थे। जब रामचन्द्र घोड़ेपर चढ़कर शिकारके लिए जाते थे, ॥ ३१ ॥ तब लक्ष्मण धनुष लेकर उनके पीछे-पीछे उनके शरीरकी रक्षा करते हुए जाते थे। लक्ष्मणका छोटा भाई शत्रुघ्न भरतको ॥ ३२ ॥ प्राणोंके समान प्रिय था और भरत उसको प्राणोंके समान प्रिय थे। राजा दशरथ अपने गुणवान् इन चारो पुत्रोंसे बहुतही प्रसन्न थे, जैसे चारो देवताओं (दिक्पाल) से ब्रह्मा प्रसन्न रहते हैं। वे सब जब ज्ञानसम्पन्न हुए, गुणोंसे युक्त हुए ॥ ३४ ॥ लोकापवाद से डरनेवाले, मर्यादाका पालन करनेवाले, सब विषयोंकी जानकारी रखनेवाले तथा भूत भविष्यके जानकार हुए, तब सबका ऐसा प्रभाव तथा तेजस्विता ॥ ३५ ॥ देखकर पिता राजा दशरथ प्रसन्न हुए। पुरुष-सिंह वे भी वेदोंका अध्ययन करने लगे ॥ ३६ ॥ वे पिताकी सेवामें तत्पर रहा करते थे, धनुर्वेदमें प्रवीण होगये थे। अब राजा दशरथ उनलोगोंके विवाहके लिए ॥ ३७ ॥ अपने पुरोहित तथा बान्धवोंके साथ विचारने लगे। महात्मा राजा दशरथ मन्त्रियोंके साथ इसका विचार करने लगे ॥३८॥ उसी समय महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र आये। उन्होंने द्वारपालसे कहा कि मैं राजाको देखना चाहता हूँ ॥ ३९ ॥ राजासे शीघ्र कहो कि मैं गाधिका पुत्र और कौशिकगोत्र विश्वामित्र आया हूँ। मुनिकी यह बात सुनकर द्वारपाल, राजा दशरथके महलकी ओर दौड़े ॥ ४० ॥ मुनिके उस वाक्यसे वे सब-के-सब घबड़ा गये। उस समय राजाके महलमें जाकर "विश्वामित्र ऋषि ॥४१॥ आये हैं" यह

प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः समाहितः ॥४२॥
प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः । स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम् ॥४३॥
प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत् । स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥४४॥
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् । पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च ॥४५॥
कुशलं कौशिको राज्ञः पर्यपृच्छत्सुधार्मिकः । अपि ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जिताः ॥४६॥
दैवं च मानुषं चैव कर्म ते साध्वनुष्ठितम् । वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुङ्गवः ॥४७॥
ऋषींश्च तान्यथान्यायं महाभाग उवाच ह । ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम् ॥४८॥
विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्च यथार्हतः । अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम् ॥४९॥
उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन् । यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके ॥५०॥
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै । प्रनष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः ॥५१॥
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने । कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः ॥५२॥
पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद । अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥५३॥
यस्माद्विप्रेन्द्रमद्राक्षं सुप्रभाता निशा मम । पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ॥५४॥

उनलोगोंने इक्ष्वाकुवंशी राजा दसरथसे कहा । द्वारपालोंकी बात सुनकर राजा पुरोहितके साथ सावधान हो प्रसन्नतापूर्वक उनकी अगवानीके लिए चले, मानो ब्रह्माकी अगवानी इन्द्र कर रहे हों । राजाने उन तपस्वीको देखा, जो तपस्याके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे थे और जो बड़े उग्र नियमोंका पालन करनेवाले थे ॥ ४३ ॥ राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिको अर्घ्य दिया । मुनिने शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण किया ॥ ४४ ॥ मुनिने राजासे नित्य-कुशल पूछी, नगर, खजाना, राज्य, भाईबन्द, मित्रोंकी ॥ ४५ ॥ कुशल धार्मिक कौशिकने पूछी । क्या तुम्हारे अधीनके राजा जो तुम्हारे शत्रु होगये थे और जिनको तुमने परास्त किया था, तुम्हारी शरण आये ? ॥४६॥ होम, देवता, पूजा आदि तथा सामवेद आदि मनुष्य-कर्म तुम्हारे चल रहे हैं ? पुनः मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने वसिष्ठके पास जाकर उनकी कुशल पूछी ॥ ४७ ॥ तदनन्तर राजाकी सभामें वर्तमान अन्य ऋषियोंसे भी कुशल पूछी, वे सब बहुत प्रसन्न हुए । पुनः वे सब राजाके महलमें गये ॥ ४८ ॥ राजाके द्वारा पूजा की जाने पर वे योग्य आसनोंपर बैठे । प्रसन्न होकर राजा विश्वामित्र मुनिसे ॥ ४९ ॥ बोले । परम उदार प्रसन्न राजाने उनकी पूजा भी की । जैसे किसीको अमृत मिलजाय, जैसे सूखे देशमें पानी हो जाय, ॥ ५० ॥ जैसे किसी पुत्रहीनको अपनी विवाहिता स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न हो, जैसे खोई हुई चीज मिलजाय, जैसे पुत्र-विवाह आदि उत्सवोंमें हर्ष होता है ॥ ५१ ॥ आपके आगमनको भी मैं वैसे ही समझता हूँ । महामुने, आपका स्वागत ! मैं प्रसन्न होकर आपके किस ऊँचे मनोरथको पूरा करूँ ॥ ५२ ॥ महाराज, आप मेरी सब सेवाओंके योग्य, मानद (अपने आगमनसे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले) हैं प्रसन्नताकी बात है कि आप आगये हैं । आज मेरा जन्म सफल हुआ और जीवन धन्य हुआ ॥ ५३ ॥ आज मैंने उस ब्राह्मणश्रेष्ठको देखा है जिसने पहले राजर्षि शब्द और तपस्याके द्वारा अपना गौरव

ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया । तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम ॥५५॥
शुभक्षेत्रगतश्चाहं तव संदर्शनात्प्रभो । ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति ॥५६॥
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थं परिवृद्धये । कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत ॥५७॥
कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान्मम । मम चायमनुप्राप्तो महानभ्युदयो द्विज ॥
तवागमनजः कृत्स्नो धर्मश्चानुत्तमो द्विज । ॥५८॥

इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुखमात्मवता विनीतमुक्तम् ।
प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टः परमऋषिः परमं जगाम हर्षम् ॥ ५९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः १९

तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् । हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥
सदृशं राजशार्दूल तवैव भुवि नान्यतः । महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः ॥ २ ॥

फैलाया है। अब मेरी रात समाप्त हुई, मेरे दुःख दूर हुए ॥ ५४ ॥ आपने ब्रह्मर्षिका पद पाया और राजर्षि थे ही इन दोनों ही कारणोंसे आप मेरे पूज्य हैं। महाराज, आपका जो यह परम पवित्र आगमन है वह मेरे लिए आश्चर्य है ॥ ५५ ॥ महाराज, आपके दर्शन होनेसे मैं पुण्यतीर्थक्षेत्रमें वर्तमान हूं (आपके आगमनसे मेरा घर तीर्थ हो गया है)। महाराज, कहिए, क्या चाहते हैं जिसके लिए आपका यह आगमन है ? ॥ ५६ ॥ मैं आपके द्वारा अनुगृहीत होकर आपके आनेका उद्देश्य जानकर उसको पूर्ण करनेका प्रयत्न करूंगा। हे सुव्रत, कार्यके विषयमें—वह सिद्ध होगा कि नहीं—आप विचार न करें ।५७। मैं आपके सब मनोरथोंको पूरा करूंगा, आप मेरे आराध्य हैं, यह (आपका आना) मेरे लिए बड़ा अभ्युदय है और महान धर्म है (जो मैंने पाया है) ॥ ५८ ॥ आत्मवान् (अपनी बातके पक्के) राजाके वचन कान और हृदयको सुख देनेवाले सुनकर श्रेष्ठ ऋषि विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए। इन ऋषिके गुण-सम्बन्धी यश चारों ओर फैले हुए थे ॥ ५९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अट्ठारहवाँ सर्ग समाप्त ॥१८॥
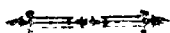
विस्तारके साथ कही हुई राजा दशरथकी उत्तम बातें सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्र रोमांचित हुए और वे बोले ॥ १ ॥ महाराज, इस पृथ्वीमें ऐसी बातें आपके ही द्वारा कही जाने योग्य हैं, दूसरेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि आपका जन्म बड़े कुलमें हुआ है और आपको वसिष्ठका उपदेश प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ राजन, जो बात मेरे हृदयमें है, जिसके लिए मैं आया हूँ, राजश्रेष्ठ, आप उसे स्वीकार करें

यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम् । कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः ॥ ३ ॥
अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ । तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥ ४ ॥
व्रते तु बहुशश्चीर्णे समाप्त्यां राक्षसाविमौ । मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ॥ ५ ॥
तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम् । अवधूते तथाभूते तस्मिन्नियमनिश्चये ॥ ६ ॥
कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे । न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥ ७ ॥
तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते । स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८ ॥
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि । शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने । श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः ॥१०॥
त्रयाणामपि लोकानां ख्यातिं गमिष्यति । न च तौ राममासाद्य शक्तौ स्थातुं कथंचन ॥११॥
न च तौ राघवादन्यो हन्तुमुत्सहते पुमान् । वीर्योत्सिक्तौ हि तौ पापौ कालपाशवशं गतौ॥१२॥
रामस्य राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः । न च पुत्रगतं स्नेहं कर्तुमर्हसि पार्थिव ॥१३॥
अहं ते प्रतिजानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ । अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१४॥

और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें (राजाने कहा है कि जो कहिए सो दूँ, कार्य-सिद्धि न होगी ऐसा संदेह न करें) ॥ ३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, मैं सिद्धिके लिए योगकी दीक्षा लिया करता हूँ, पर कामरूपी दो राक्षस विघ्न कर दिया करते हैं ॥ ४ ॥ मेरे यज्ञ आदि नियम प्रारम्भ होते हैं, और जब उनकी समाप्तिका समय आता है तब ये मारीच और सुबाहु जो बलवान हैं और सुशिक्षित हैं (विघ्न करते हैं) ॥ ५ ॥ उस वेदि-पर माँस और रुधिरकी वृष्टि कर देते है, और मेरे व्रत, संकल्प आदि नष्ट-भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ६ ॥ मेरा परिश्रम व्यर्थ होता है, मैं उत्साहहीन होकर उस देशसे निकला हूँ, आपके यहाँ आया हूँ, राजन, उनपर क्रोध करनेकी भी इच्छा नहीं होती ॥ ७ ॥ क्योंकि यज्ञका समय क्रोध करने और शाप देनेका नहीं है । इसलिए, राजन् , आप सच्चे वीर अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रको मुझे दें, यद्यपि वे काकपक्ष धारण करते है, (कानोंके पास रखी जानेवाली चोटी, क्षत्रियोंके बालकोंको ऐसी चोटी रखी जाती हैं) अर्थात् बालक हैं, फिर भी वीर हैं और मैं अपने अलौकिक तेजसे इनकी रक्षा करूँगा ॥ ९ ॥ और ये उन राक्षसोंका नाश कर सकेंगे, जो मेरे यज्ञमें विघ्न करते हैं और इनका (रामका) अनेक कल्याण भी मैं करूँगा, इसमें आप सन्देह न करें । १० ॥ मेरे द्वारा जो कल्याण प्राप्त होगा उससे रामचन्द्रको ख्याति तीनों लोकोंमें होगी, और वे राक्षस रामचन्द्रके सामने कभी ठहर न सकेंगे ॥ ११ ॥ महाराज, रामचन्द्रको छोड़कर दूसरा कोई उन दोनों राक्षसोंको मार नहीं सकता, उनको अपनी वीरताका बड़ा घमण्ड है । वे इस समय पापी होरहे हैं, उनके सिरपर काल नाच रहा है ॥ १२ ॥ राजन् , वे महात्मा रामचन्द्रके सामने ठहर न सकेंगे, आप पुत्रका स्नेह न करें (रामचन्द्र मेरे पुत्र हैं, बालक हैं, वे कैसे इन राक्षसों-का सामना करेंगे, इन बातोंका विचार न करें) ॥ १३ ॥ राजन, मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि वे राक्षस रामचन्द्रके द्वारा अवश्य मारे जायँगे । राजन् , सत्यपराक्रमी रामचन्द्रको मैं जानता हूँ (अर्थात ये विष्णु हैं, इन्होंने राक्षसोंके नाशके लिए ही आपके घर अवतार धारण किया है) ॥ १४ ॥

वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः। यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि ॥१५॥
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि। यद्यभ्यनुज्ञां काकुत्स्थ ददते तव मन्त्रिणः ॥१६॥
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ततो रामं विसर्जय। अभिप्रेतमसंसक्तमात्मजं दातुमर्हसि ॥१७॥
दशरात्रं हि यज्ञस्य रामं राजीवलोचनम्। नात्येति कालो यज्ञस्य यथायं मम राघव ॥१८॥
तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः। इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ॥१९॥
विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामतिः। स तन्निशम्य राजेन्द्रो विश्वामित्रवचः शुभम् ॥२०॥
शोकेन महताविष्टश्चचाल च मुमोह च। लब्धसंज्ञस्ततोत्थाय व्यषीदत भयान्वितः ॥२१॥

इति हृदयमनोविदारणं मुनिवचनं तदतीव शुश्रुवान्।
नरपतिरभवन्महान्महात्मा व्यथितमनाः प्रचचाल चासनात् ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः २०

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम्। मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

महातेस्वी वसिष्ठ तथा तपस्या करनेवाले ये सब ऋषि भी रामचन्द्रको जानते हैं। राजन्, धर्मकी प्राप्ति (याचककी मनोरथ-पूर्ति तथा अपनी प्रतिज्ञाके पालनसे होनेवाला धर्म) और यश यदि आप पृथिवीमें ॥ १५ ॥ स्थिर रखना चाहते हैं तो आप अवश्य ही रामचन्द्रको मुझे दें, यदि आपके मन्त्री आपको वैसा करनेकी सलाह दें ॥ १६ ॥ वसिष्ठ आदि मन्त्रियोंसे आप पूछ लें यदि वे कहें तो आप मुझे अपने उस पुत्रको दें जिसे मैं चाहता हूँ और बड़ा होनेके कारण आपकी भी जिसमें वैसी आसक्ति नहीं है ॥ १७ ॥ दस रातके लिए आप मुझे राजीवलोचन रामचन्द्रको दें, मेरे यज्ञको दस ही दिन बाकी हैं। यज्ञका जो समय मैंने बतलाया है उससे विलम्ब न होगा, दस रातके बाद ये लौट आवेंगे ॥ १८ ॥ राजन्, जैसा मैं कहता हूँ वैसा आप करें, आपका कल्याण होगा, आप मनमें शोक न करें, इस प्रकार धर्म और अर्थयुक्त वचन ॥ १९ ॥ धर्मात्मा, महातेस्वी, बुद्धिमान विश्वामित्र कहकर चुप हुए। विश्वामित्रके उन उत्तम वचनोंको सुनकर ॥ २० ॥ राजाको बहुत बड़ा दुःख हुआ, वे विचलित हो गये और उन्हें मूर्छा आगयी। होश आनेपर राजा बहुत डर गये और विषाद करने लगे ॥२१॥ राजा हृदय और मनको विदारित करनेवाले वैसे, मुनिके वचन सुनकर बहुतही व्यथित हुए और अपने स्थानसे डोलगये ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उन्नीसवां सर्ग समाप्त ॥ १९ ॥

राजश्रेष्ठ राजा दसरथ विश्वामित्रकी बातें सुनकर थोड़ी देरके लिए बेहोश हो गये। जब उन्हें होश

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः। न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ २ ॥
इयमक्षौहिणी सेना यस्याहं पतिरीश्वरः। अनया सहितो गत्वा योद्धाहं तैर्निशाचरैः ॥ ३ ॥
इमे शूराश्च विक्रान्ता भृत्या मेऽस्त्रविशारदाः। योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि ॥ ४ ॥
अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि। यावत्प्राणान्धरिष्यामि तावद्योत्स्ये निशाचरैः ॥५॥
निर्विघ्ना व्रतचर्या सा भविष्यति सुरक्षिता। अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि ॥ ६ ॥
बालो ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम्। न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः ॥ ७ ॥
न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि राक्षसाः। विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ॥ ८ ॥
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि। यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत ॥ ९ ॥
चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय। षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ॥१०॥
कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायं न रामं नेतुमर्हसि। चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम ॥११॥
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि। किंवीर्या राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च के च ते ॥१२॥
कथंप्रमाणाः के चैतान्रक्षन्ति मुनिपुङ्गव। कथं च प्रतिकर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम् ॥१३॥
मामकैर्वा बलैर्ब्रह्मन्मया वा कूटयोधिनाम्। सर्वं मे शंस भगवन्कथं तेषां मया रणे ॥१४॥

आया तब वे बोले, ॥ १ ॥ मेरा कमलनयन राम अभी सोलह वर्षसे भी कम अर्थात् पन्द्रह वर्षका है। राक्षसोंसे युद्ध करनेकी शक्ति मैं उसमें नहीं देखता ॥ २ ॥ यह मेरी अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं सेनापति और स्वामी हूँ, इस सेनाके साथ जाकर मैं स्वयं उन राक्षसोंसे युद्ध कर सकता हूँ ॥ ३ ॥ ये मेरे सेवक बड़े पराक्रमी, युद्धमें उत्साह रखनेवाले और अस्त्र-विद्याके पूरे ज्ञाता हैं, ये राक्षसोंसे युद्ध कर सकते हैं। अतः आप रामचन्द्रको न ले जायँ ॥ ४ ॥ जब तक मैं हाथोंमें धनुष लेकर युद्धक्षेत्रमें आगे रक्षा करनेके लिए तैयार हूँ, जबतक मेरे प्राण वर्तमान हैं, तबतक मैं ही राक्षसोंसे युद्ध करूँगा ॥ ५ ॥ महाराज, मैं चलूँगा, यज्ञके लिए आपकी दीक्षा भी निर्विघ्नतापूर्वक सुरक्षित होगी, आप रामको न ले जायँ ॥ ६ । रामचन्द्र बालक हैं, अस्त्रविद्याका इन्हें पूरा-पूरा अभ्यास नहीं है, शत्रुकी बलवत्ता और निर्बलता भी ये नहीं समझ सकते, और न इन्हें अस्त्रोंका बल है और न ये युद्ध-विद्यामें निपुण हैं ॥ ७ ॥ ये राक्षसोंके साथ युद्ध करनेके योग्य नहीं हैं, क्योंकि राक्षस छलसे युद्ध किया करते हैं और मैं रामचन्द्रके बिना एक क्षण भी जीना नहीं चाहता ॥ ८ ॥ अतएव हे मुनिश्रेष्ठ, आप रामचन्द्रको न ले जायँ। हे सुव्रत ब्रह्मन्, आप रामचन्द्रको ले जाना ही चाहते हों। ९ ॥ तो सेना और मेरे साथ आप रामचन्द्रको ले जायँ। कौशिक, साठ हजार वर्ष मुझे उत्पन्न हुए बीत गये ॥ १० ॥ बड़े कष्टोंसे रामचन्द्रका जन्म हुआ है, आप रामचन्द्रको न ले जाँय। यद्यपि मेरे चार पुत्र हैं, पर मेरी सबसे अधिक प्रीति ॥ ११ ॥ धर्मात्मा जेठे पुत्रमें ही है, अतः आप रामचन्द्रको न ले जाँय। वे राक्षस (जो आपके यज्ञमें विघ्न पहुँचाते हैं) कैसे बली हैं, वे किसके पुत्र हैं ॥ १२ ॥ मुनिश्रेष्ठ, वे कितने लम्बे चौड़े हैं, उनका रक्षक कौन है, रामचन्द्र उन राक्षसोंका संहार कैसे कर सकेंगे, ॥ १३ ॥ मेरी सेना या मुझसे ही उन कपटसे युद्ध करनेवाले राक्षसोंका संहार कैसे हो सकेगा, भगवन् यह सब आप कहें। मैं ही उनके

स्थातव्यं दुष्टभावानां वीर्योत्सिक्ता हि राक्षसाः। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१५॥
पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः। स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ॥१६॥
महाबलो महावीर्यो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः। श्रूयते च महाराज रावणो राक्षसाधिपः ॥१७॥
साक्षाद्वैश्रवणभ्राता पुत्रो विश्रवसो मुनेः। यदा न खलु यज्ञस्य विघ्नकर्ता महाबलः ॥१८॥
तेन संचोदितौ तौ तु राक्षसौ च महाबलौ। मारीचश्च सुबाहुश्च यज्ञविघ्नं करिष्यतः ॥१९॥
इत्युक्तो मुनिना तेन राजोवाच मुनिं तदा। नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः॥२०॥
स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ कुरुष्व मम पुत्रके। मम चैवाल्पभाग्यस्य दैवतं हि भवान्गुरुः ॥२१॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षाः पतगपन्नगाः। न शक्ता रावणं सोढुं किं पुनर्मानवा युधि ॥२२॥
स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावणः। तेन चाहं न शक्तोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः॥२३॥
सबलो वा मुनिश्रेष्ठ सहितो वा ममात्मजैः। कथमप्यमरप्रख्यं संग्रामाणामकोविदम् ॥२४॥
बालं मे तनयं ब्रह्मन्नैव दास्यामि पुत्रकम्। अथ कालोपमौ युद्धे सुतौ सुन्दोपसुन्दयोः ॥२५॥
यज्ञविघ्नकरौ तौ ते नैव दास्यामि पुत्रकम्। मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ॥२६॥
तयोरन्यतरं योद्धुं यास्यामि ससुहृद्गणः। अन्यथा त्वनुनेष्यामि भवन्तं सहबान्धवः ॥२७॥

साथ युद्धमें ॥ १४ ॥ कैसे ठहर सकूँगा, क्योंकि वे बड़े ही दुष्ट विचारवाले होते हैं और बड़े बलवान् होते हैं। राजाके ये वचन सुनकर विश्वामित्र बोले ॥ १५ ॥

रावण नामका राक्षस है, पुलस्त्यके वंशमें उसका जन्म हुआ है, ब्रह्मासे उसने वर पाया है और वह त्रिलोकको बड़ी पीड़ा दे रहा है। १६ ॥ महाराज, सुना जाता है कि वह बड़ा बली है, बड़ा पराक्रमी है, बहुतसे राक्षस उसके अनुचर हैं, वह राक्षसोंका राजा है ॥ १७ ॥ वह कुबेरका भाई है और विश्रवा मुनिका पुत्र है। वह स्वयं तो मेरे यज्ञमें विघ्न नहीं करता ॥ १८ ॥ पर मारीच और सुबाहु नामक दो बलवान् राक्षसोंको उसने प्रेरित किया है, वे ही दोनों मेरे यज्ञमें विघ्न करते हैं ॥ १९ ॥ मुनिके इतना कहनेपर राजाने मुनिसे कहा कि मैं उन दुष्टोंके साथ युद्धमें नहीं ठहर सकता हूँ ॥ २० ॥ सो हे धर्मज्ञ, आप मेरे इस दयनीय पुत्रपर दया करें। यद्यपि आपकी आज्ञाके पालन न करनेके कारण मैं अल्पभाग्य हूँ, आप मेरे गुरु हैं, देवता हैं ॥ २१ ॥ देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी और सर्प इनमें भी कोई रावणसे युद्ध नहीं कर सकता, फिर मनुष्य उसके सामने क्या है ॥ २२ ॥ वह रावण पराक्रमियोंका पराक्रम नष्ट कर देता है, (उसके सामने जानेसे पराक्रमी भी हिम्मत हार बैठता है), उस रावण या उसकी सेनाके साथ मैं युद्ध नहीं कर सकता ॥२३॥ मुनिश्रेष्ठ, अपनी सेना और अपने पुत्रोंको साथ लेकर भी मैं युद्ध नहीं कर सकता। देवताके समान सुन्दर और रणका पूरा-पूरा ज्ञान न रखनेवाले ॥ २४ ॥ बालक पुत्रको, ब्रह्मन् मैं कभी न दूँगा। सुन्द, उपसुन्दके दोनों लड़के युद्धमें कालके समान हैं। २५ ॥ और वे ही आपके यज्ञमें विघ्न करते हैं, उन्हींसे सामना है, मैं अपना दयनीय पुत्र न दूँगा, मारीच और सुबाहु दोनों पराक्रमी और शिक्षित हैं ॥ २६ ॥ इन दोनोंमेंके किसी एकसे मैं अपने मित्रोंके साथ युद्ध करनेके लिए जा सकता हूँ। यदि आपको यह स्वीकार न हो तो मैं आपसे प्रार्थना करूंगा,

इति नरपतिजल्पनाद्द्विजेन्द्रं कुशिकसुतं सुमहान्विवेश मन्युः ।
सुहुत इव मखेऽग्निराज्यसिक्तः समभवदुज्ज्वलितो महर्षिवह्निः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः २१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम् । समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम् ॥१॥
पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि । राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥२॥
यदीदं ते क्षमं राजन्गमिष्यामि यथागतम् । मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सुहृद्वृतः ॥३॥
तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः । चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भयं महत् ॥४॥
त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः । नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥५॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः । धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि ॥६॥
त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः । स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥ ७ ॥

(आपकी आज्ञा-पालन न करनेके अपराधको क्षमा कराऊँगा), अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ आपको विनती करूंगा ॥ २७ ॥ राजा दसरथकी इन बातोंसे कुशिकगोत्री ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वामित्रको क्रोध आया, ऋषि क्रोधसे आग-बबूला हो गये, जिस प्रकार यज्ञकी अग्निमें हवन किया गया हो, घी डाला गया हो और वह अग्नि प्रज्वलित हो गयी हो, वैसे ही मुनि भी प्रज्वलित हुए ॥२८॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२०॥
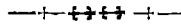
जिसमें स्नेहके कारण अक्षर स्पष्ट रूपमें नहीं हैं राजाके ऐसे वचन सुनकर कौशिक क्रोधित हुए और वे राजासे बोले, ॥ १ ॥ पहले प्रतिज्ञा करके, अब आप अपनी उस प्रतिज्ञाको तोड़ना चाहते हैं । रघुवंशियोंकी यह रीति नहीं है । ऐसा होना तो इस कुलका ही नाश है ॥ २ ॥ राजन्, यदि आप प्रतिज्ञा तोड़नेको उचित समझते हैं, उससे होनेवाले फलको उचित समझते हैं, तो मैं अपने स्थानपर जाता हूँ, आपकी प्रतिज्ञा झूठी हुई, महाराज आप अपने मित्रोंके साथ सुखी हों ॥ ३ ॥ विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया, फिर भी बुद्धिमत्ताके कारण उन्होंने राजाका कोई अनिष्ट नहीं किया । समूची पृथिवी हिलने लगी, और देवता भी बड़े भयभीत हुए ॥ ४ ॥ समस्त जगत् डरगया है—यह देखकर सदाचारी और धीर वसिष्ठ राजासे बोले ॥ ५ ॥ महाराज, आप इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए हैं, आप शरीरधारी धर्मके समान हैं, आप धीर हैं, सदाचारी हैं, आपको धर्मका त्याग न करना चाहिए ॥ ६ ॥ रघुवंशी राजा दसरथ धर्मात्मा हैं, यह बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, आप अपने धर्मका पालन करें, (आप अपने स्वरूपका स्मरण करें,) अधर्म न करें (अपने स्वभावके विरुद्ध काम न करें) ॥ ७ ॥

प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः। इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय ॥ ८ ॥
कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः। गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा ॥ ९ ॥
एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वरः। एष विद्याधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥१०॥
एषोऽस्त्रान्विविधान्वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे। नैनमन्यः पुमान्वेत्ति न च वेत्स्यन्ति केचन ॥११॥
न देवा नर्षयः केचिन्नामरा न च राक्षसाः। गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः ॥१२॥
सर्वास्त्राणि कृशाश्वस्य पुत्राः परमधार्मिकाः। कौशिकाय पुरा दत्ता यदा राज्यं प्रशासति ॥१३॥
तेऽपि पुत्राः कृशाश्वस्य प्रजापतिसुतासुताः। नैकरूपा महावीर्या दीप्तिमन्तो जयावहाः ॥१४॥
जया च सुप्रभा चैव दक्षकन्ये सुमध्यमे। ते सूतेऽस्त्राणि शस्त्राणि शतं परमभास्वरम् ॥१५॥
पञ्चाशतं सुताँल्लेभे जया लब्धवरा वरान्। वधायासुरसैन्यानाममेयानरूपिणः ॥१६॥
सुप्रभाजनयच्चापि पुत्रान्पञ्चाशतं पुनः। संहारान्नाम दुर्धर्षान्दुराक्रामान्बलीयसः ॥१७॥
तानि चास्त्राणि वेत्त्येष यथावत्कुशिकात्मजः। अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित् ॥१८॥
तेनास्य मुनिमुख्यस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः। न किंचिदस्त्यविदितं भूतं भव्यं च राघव ॥१९॥
एवंवीर्यो महातेजा विश्वामित्रो महायशाः। न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि ॥२०॥

'करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके जो अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता उसके अश्वमेध आदि यज्ञ निष्फल हो जाते हैं तथा कुआँ, तालाब आदि खुदवाना निष्फल होजाता है। इसलिए राजन्, आप रामचन्द्रको ऋषिके साथ विदा करें ॥ ८ ॥ रामचन्द्रको अस्त्रोंका ज्ञान हो या न हो, राक्षस इनसे युद्ध न कर सकेंगे, क्योंकि विश्वामित्र इनकी रक्षा करेंगे, जिस प्रकार अग्निके द्वारा अमृतकी रक्षा होती है ॥ ९ ॥ ये विश्वामित्र शरीरधारी धर्म हैं, पराक्रमियोंमें श्रेष्ठ हैं, इनका ज्ञान बहुत है और तपस्याके निधि हैं ॥ १० ॥ ये विश्वामित्र अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र जानते हैं, त्रिलोकमें स्थावर, जंगम आदि कोई भी इनके स्वरूपको नहीं जानता और कोई जानेगा भी नहीं ॥ ११ ॥ देवता, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा नाग ये भी नहीं जानते। परम धार्मिक कृशाश्व ऋषिके पुत्र ये सब अस्त्र कौशिकको दिये गये जब वे राज्यशासन करते थे ॥ १३ ॥ वे अस्त्र कृशाश्वके पुत्र ही हैं, वे प्रजापतिकी कन्याके पुत्र हैं, वे कई तरहके हैं, वे बड़े बलवान् हैं, उनमें बड़ा तेज है उनसे युद्धमें अवश्य विजय होती है ॥ १४ ॥ दक्षप्रजापतिकी दो सुन्दरी कन्याएँ थीं, जया और सुप्रभा। उनलोगोंने सौ अस्त्र और शस्त्र उत्पन्न किये हैं, वे बड़े ही प्रकाशमान हैं ॥ १५ ॥ जयाने वर पाकर पचास पुत्र उत्पन्न किये, ये बड़े ही उत्तम हैं, इनका प्रभाव बहुत बड़ा है और ये शरीरधारी नहीं हैं, राक्षसों की सेनाको वध करनेके लिए ये उत्पन्न हुए हैं ॥ १६ ॥ सुप्रभाने भी पचास पुत्र उत्पन्न किये, उनके नाम संहार है, वे बड़े बलवान् हैं, कोई उनपर आक्रमण नहीं कर सकता और न कोई उनका सामना कर सकता है ॥ १७ ॥ ये कुशिकगोत्री विश्वामित्र उन अस्त्रोंको जानते हैं, ये धर्मात्मा अन्य नये-नये अस्त्रोंको उत्पन्न करनेकी भी शक्ति रखते हैं ॥१८॥ हे दसरथ, ये विश्वामित्र प्रधान ऋषियोंमेंसे हैं, ये धर्म जाननेवाले हैं, महात्मा हैं, भूत और भविष्य कुछ भी इनसे छिपा नहीं है ॥ १९ ॥ मिश्वामित्र ऐसे पराक्रमी हैं, बड़े यशस्वी हैं,

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः । तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते ॥२१॥
इति मुनिवचनात्प्रसन्नचित्तो रघुवृषभश्च मुमोद पार्थिवः ।
गमनमभिरुरोच राघवस्य प्रथितयशाः कुशिकात्मजाय बुद्ध्या ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः २२

तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम् । प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम् ॥ १ ॥
कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च । पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम् ॥ २ ॥
स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा । ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ ३ ॥
ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा । विश्वामित्रगतं रामं दृष्ट्वा राजीवलोचनम् ॥ ४ ॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः । शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः प्रयाते तु महात्मनि ॥ ५ ॥
विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः । काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ॥ ६ ॥
कलापिनौ धनुष्पाणी शोभयानौ दिशो दश । विश्वामित्रं महात्मानं त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ॥ ७ ॥

इनके साथ रामचन्द्रके जानेमें आप किसी प्रकारका सन्देह न करें ॥ २० ॥ उन राक्षसोंका दमन स्वयं विश्वामित्र ही कर सकते हैं, पर तुम्हारे पुत्रके कल्याणकी इच्छासे ये तुम्हारे पुत्रको माँग रहे हैं ॥ २१ ॥ वसिष्ठजीके वचनोंको सुनकर राजाओंमें अग्रगामी, रघुश्रेष्ठ राजा दसरथ प्रसन्न हुए, उनके मनके सन्देह जाते रहे । यशस्वी राजाने विश्वामित्रको प्रसन्न करनेके लिए रामचन्द्रको भेजना मन ही मन स्वीकार किया ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एक्कीसवां सर्ग समाप्त ॥२१॥

वसिष्ठके वैसा कहनेपर राजा दसरथने स्वयं प्रसन्न होकर लक्ष्मणके साथ रामचन्द्रको बुलाया ॥१॥ माता और पिताने रामचन्द्रके लिए स्वस्तिवाचन (रक्षाके लिए की जानेवाली एक धार्मिक क्रिया) किया, पुरोहित वसिष्ठने माङ्गलिक मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया ॥ २ ॥ तदनन्तर पुत्र रामचन्द्रका सिर सूँघकर राजा दसरथने प्रसन्नतापूर्वक विश्वामित्रको समर्पित किया ॥ ३ ॥ उस समय वायु बड़ी सुहावनी बहने लगी, जिसमें धूलिके कण न थे । राजीव-लोचन रामचन्द्र जब विश्वामित्रके पास आये ॥ ४ ॥ तब देवताओंके नगाड़ेकी ध्वनिके साथ बड़ी पुष्प-वृष्टि हुई । जब महात्मा विश्वामित्र अयोध्यासे विदा हुए, उस समय शंख और नगाड़ेका मङ्गल-सूचक शब्द हुआ ॥ ५ ॥ आगे-आगे विश्वामित्र जा रहे थे, उनके पीछे महायशस्वी रामचन्द्र जा रहे थे और बालक लक्ष्मण धनुष लेकर रामचन्द्रके पीछे जा रहे थे ॥ ६ ॥ राम और लक्ष्मण धनुष धारण किये हुए थे पीठकी ओर दोनों कन्धोंपर बाण रखनेका तूणीर बँधा हुआ था, इनसे दशों दिशाएँ शोभित हो रही थीं, मालूम होता था कि महात्मा विश्वामित्रके पीछे पीछे तीन सिरवाले

अनुजग्मतुरक्षुद्रौ पितामहमिवाश्विनौ । अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयन्तावनिन्दितौ ॥ ८ ॥
तदा कुशिकपुत्रं तु धनुष्पाणी स्वलंकृतौ । बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तौ महाद्युती ॥ ९ ॥
कुमारौ चारुवपुषौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ । अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयेतामनिन्दितौ ॥१०॥
स्थाणुं देवमिवाचिन्त्यं कुमाराविव पावकी । अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे ॥११॥
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत । गृहाण वत्स सलिलं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥१२॥
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा । न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः ॥१३॥
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः । न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन ॥१४॥
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत्सदृशस्तव । बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥१५॥
न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये । नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ ॥१६॥
एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत्सदृशस्तव । बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥१७॥
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम । बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥१८॥
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि । पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ॥१९॥

दो सांप जा रहे हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार ब्रह्माका अनुगमन दोनों अश्विनीकुमार करते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ वीर राम और लक्ष्मण विश्वामित्रका अनुगमन करने लगे, ये दोनों श्रीमान् थे, दीप्तिमान् थे, इनमें कोई दोष न था, शरीर और मन दोनों ही दोषहीन थे ॥ ८ ॥ ये दोनों धनुष लिये हुए थे, वीर वेषसे सजे हुए थे, अँगुलित्राण (अँगुलियोंकी रक्षा करनेकी एक वस्तु दस्तानेकी तरहकी) पहने हुए थे, तलवार लिये हुए थे, बड़ेही सुन्दर मालूम होते थे ॥ ९ ॥ सुन्दर शरीरवाले कुमार राम और लक्ष्मण दोनों भाई शोभा और दीप्तिसे युक्त थे, निर्दोष थे, इनसे विश्वामित्र शोभित हो रहे थे ॥ १० ॥ अचिन्तनीय प्रभाववाले महादेवके दोनों स्कन्द और विशाखके समान दोनों राम और लक्ष्मण अयोध्यासे आधा योजन (दो कोश) जाकर सरयूके दक्षिण तटपर पहुँचे ॥ ११ ॥ उस समय विश्वामित्रने बड़े कोमल स्वरमें " राम " ऐसा कहा और कहा, वत्स, जल लेओ, जिसमें समय न बीतने पावे। (जो विद्या मैं देना चाहता हूँ उसके लिए योग्य मुहूर्त आया है, वह बीतने न पावे) ॥ १२ ॥ यह मन्त्र लो, ये मन्त्र बला और अतिबला नामक अस्त्र-विद्याके हैं । इस विद्याके प्रभावसे तुम्हें न कोई शारीरिक परिश्रम और न मानसिक कष्ट होगा और न रूपमें ही किसी प्रकारका परिवर्तन होगा ॥ १३ ॥ सोते या असावधान किसी भी दशामें राक्षस तुम्हारा अपकार नहीं कर सकते, तुम्हारे समान बलवान् पृथिवीमें कोई न रहेगा ॥१४॥ बला और अतिबला इन विद्याओंके जान लेनेसे, हे रामचन्द्र, तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान कोई न रहेगा ॥ १५ ॥ सौभाग्य, अधिक पराक्रम, ज्ञान, बुद्धि-सम्बन्धी विचार और किसी प्रकारके संशयके मिटाने आदिमें, हे अनघ, हे निष्पाप, तुम्हारे समान कोई न होगा ॥ १६ ॥ इन दोनों विद्याओंके पा जानेपर तुम्हारे समान कोई न होगा, क्योंकि ये बला और अतिबला विद्याएँ सब प्रकारके ज्ञानकी माताएँ हैं ॥ १७ ॥ हे नरोत्तम राम, विद्याओंके प्रभावसे तुम्हें भूख-प्यासका कष्ट न होगा। सबकी रक्षाके लिए इन विद्याओंको ग्रहण करो ॥ १८ ॥ इन विद्याओंके अध्ययनसे मनुष्यका संसारमें यश भी होता है, क्योंकि ये दोनों विद्याएँ ब्रह्माकी पुत्री

प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि पार्थिव । कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ॥२०॥
तपसा संभृते चैते बहुरूपे भविष्यतः । ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः ॥२१॥
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः । विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भीमविक्रमः ॥२२॥
सहस्ररश्मिर्भगवाञ्शरदीव दिवाकरः । गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजः ।
ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां सुसुखं त्रयः ॥२३॥
दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां तृणशयनेऽनुचिते तदोषिताभ्याम् ।
कुशिकसुतवचोनुलालिताभ्यां सुखमिव सा विबभौ विभावरी च ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः २३

प्रभातायां तु शर्वर्यां विश्वामित्रो महामुनिः । अभ्यभाषत काकुत्स्थौ शयानौ पर्णसंस्तरे ॥ १ ॥
कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते । उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकम् ॥ २ ॥
तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ । स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जेपतुः परमं जपम् ॥ ३ ॥
कृताह्निकौ महावीर्यौ विश्वामित्रं तपोधनम् । अभिवाद्यातिसंहृष्टौ गमनायाभितस्थतुः ॥ ४ ॥

(उत्पन्न की हुई) हैं और बड़ी तेजस्विनी हैं ॥१९॥ हे काकुत्स्थ, तुम इन विद्याओंके ग्रहण करनेके सर्वथा योग्य हो, इसलिए तुम्हें देनेके लिए मेरी इच्छा हुई है । इन विद्याओंके तुम्हारे पास जानेसे बड़े-बड़े लाभ होंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ इन विद्याओंको मैंने तपस्याके द्वारा प्राप्त किया है, तुम्हारे यहाँ जानेसे इनका बहुत विस्तार होगा । रामचन्द्रने आचमन किया और शुद्ध होकर प्रसन्नता पूर्वक ॥ २१ ॥ उन ब्रह्मज्ञानी मुनिसे उन विद्याओंको ग्रहण किया । विद्यासे युक्त होनेपर बड़े भारी पराक्रमोके समान वे उसीप्रकार शोभित होने लगे ॥२२॥ जिस प्रकार हजार किरणों वाले भगवान् सूर्य शरद् ऋतुमें शोभित होते हैं । गुरु विश्वामित्रके पैर दबाना आदि सब काम करके, उस रात्रिमें सरयूके तीरपर तीनोंने सुखपूर्वक निवास किया ॥२३॥ दशरथ राजाके दुलारे दोनों पुत्र उस रात्रिमें तृण-शयनपर सोये, यद्यपि उनके लिए तृणकी शय्या अनुचित है, फिर भी विश्वामित्र-के वचनों (कथा आदि) से वे प्रसन्न रहे और इस प्रकार वह रात आनन्दसे बीती ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २२ ॥

रातके बीतनेपर महामुनि विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणसे जो तृणके बिछौनेपर सो रहे थे, कहा ॥ १ ॥ राम, तुम्हारे समान पुत्र पाकर कौसल्या सुपुत्रवती है (ऐसे सुपुत्रको इस समय न सोना चाहिए) । प्रातःकालकी सन्ध्या (रात और दिनकी सन्धि) हो रही है, हे नरश्रेष्ठ, उठो प्रतिदिन किये जानेवाले देवकर्मोंको करो ॥ २ ॥ उन ऋषिके अत्यन्त उदार वचन सुनकर उन दोनों नरपुङ्गवोंने स्नान किया, अर्घ्य दिया और गायत्रीका जप किया ॥ ३ ॥ वे महापराक्रमी वीर आह्निक

तौ प्रयान्तौ महावीर्यौ दिव्यां त्रिपथगां नदीम् । ददृशाते ततस्तत्र सरय्वाः संगमे शुभे ॥ ५ ॥
तत्राश्रमपदं पुण्यमृषीणां भावितात्मनाम् । बहुवर्षसहस्राणि तप्यतां परमं तपः ॥ ६ ॥
तं दृष्ट्वा परमप्रीतौ राघवौ पुण्यमाश्रमम् । ऊचतुस्तं महात्मानं विश्वामित्रमिदं वचः ॥ ७ ॥
कस्यायमाश्रमः पुण्यः को न्वस्मिन्वसते पुमान् । भगवञ्छ्रोतुमिच्छावः परं कौतूहलं हि नौ ॥ ८ ॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुंगवः । अब्रवीच्छ्रूयतां राम यस्यायं पूर्व आश्रमः ॥ ९ ॥
कन्दर्पो मूर्तिमानासीत्काम इत्युच्यते बुधैः । तपस्यन्तमिह स्थाणुं नियमेन समाहितम् ॥१०॥
कृतोद्वाहं तु देवेशं गच्छन्तं समरुद्गणम् । धर्षयामास दुर्मेधा हुंकृतश्च महात्मना ॥११॥
अवध्यातश्च रुद्रेण चक्षुषा रघुनन्दन । व्यशीर्यन्त शरीरात्स्वात्सर्वगात्राणि दुर्मतेः ॥१२॥
तत्र गात्रं हतं तस्य निर्दग्धस्य महात्मनः । अशरीरः कृतः कामः क्रोधाद्देवेश्वरेण ह ॥१३॥
अनङ्ग इति विख्यातस्तदाप्रभृति राघव । स चाङ्गविषयः श्रीमान्यत्राङ्गं स मुमोच ह ॥१४॥
तस्यायमाश्रमः पुण्यस्तस्येमे मुनयः पुरा । शिष्या धर्मपरा वीर तेषां पापं न विद्यते ॥१५॥
इहाद्य रजनीं राम वसेम शुभदर्शन । पुण्ययोः सरितोर्मध्ये श्वस्तरिष्यामहे वयम् ॥१६॥
अभिगच्छामहे सर्वे शुचयः पुण्यमाश्रमम् । इह वासःपरोऽस्माकं सुखं वत्स्यामहे निशाम् ॥१७॥

कृत्य करके और विश्वामित्र मुनिको प्रणाम करके जानेके लिए तयार हुए ॥ ४ ॥ उन वीरोंने चलते-चलते दिव्य गङ्गानदीका दर्शन सरयू नदीके सङ्गमस्थान पर किया ॥ ५ ॥ वहाँ ब्रह्मज्ञानी महर्षिका पवित्र आश्रम था, जिसमें ऋषि हजारों वर्षोंसे तपस्या कर रहे थे ॥ ६ ॥ उस पवित्र आश्रमको देखकर राम और लक्ष्मण दोनों बहुत प्रसन्न हुए, उन लोगोंने महात्मा विश्वामित्रसे यह बात पूछी ॥ ७ ॥ यह किसका पवित्र आश्रम है, और इसमें कौन पुरुष रहता है यह हमलोग जानना चाहते हैं, इसके जाननेकी हमलोगोंकी बड़ी उत्कण्ठा है ॥ ८ ॥ उन दोनों के वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र हँसकर बोले, राम, सुनो, जिसका यह पूर्व आश्रम है ॥ ९ ॥ जो 'काम' इस नामसे प्रसिद्ध है वह कन्दर्प (काम) पहले मूर्तिमान् (शरीरधारी) था। शिव इस आश्रममें चित्त स्थिर करके नियमसे तपस्या करते थे। विवाह करके देवताओंके साथ जाते हुए उन महादेवका चित्त मूर्ख कामदेवने विकृत कर दिया। महात्मा शिवने उसे हुँकार किया (हुँ करके उसे डरवाया) ॥११॥ हे रघुनन्दन, महादेवने एक आंखसे उसे देखा और उस मूर्खके शरीरके सब अङ्ग नष्ट होगये ॥१२॥ महात्मा शिवके द्वारा जलाये जानेपर उसका समस्त शरीर जल गया, क्रोधसे महादेवने कामको शरीर-हीन कर दिया ॥१३॥ हे राघव, तभीसे कामदेव 'अनङ्ग' नामसे प्रसिद्ध हुआ। जिस देशमें कामदेवने अपना शरीर छोड़ा है वह देश अङ्ग देश कहा जाता है ॥१४॥ उन्हीं शिवका यह पवित्र आश्रम है, हे वीर, ये सब धर्मपरायण मुनि उन्हींके शिष्य हैं, ये मुनि निष्पाप हैं ॥ १५ ॥ हे शुभदर्शन राम, इन पवित्र नदियोंके सङ्गमपर यहीं शिवाश्रममें आज रातको हमलोग निवास करें और कल नदी पार करें ॥ १६ ॥ हमलोग पवित्र होकर इस पवित्र आश्रममें चलें, यहाँ हमलोगोंका

स्नाताश्च कृतजप्याश्च हुतहव्या नरोत्तम । तेषां संवदतां तत्र तपोदीर्घेण चक्षुषा ॥१८॥
विज्ञाय परमप्रीता मुनयो हर्षमागमन् । अर्घ्यं पाद्यं तथातिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे ॥१९॥
रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नतिथिक्रियाम् । सत्कारं समनुप्राप्य कथाभिरभिरञ्जयन् ॥२०॥
यथार्हमजपन्संध्यामृषयस्ते समाहिताः । तत्र वासिभिरानीता मुनिभिः सुव्रतैः सह ॥२१॥
न्यवसन्त सुखं तत्र कामाश्रमपदे तथा । कथाभिरभिरामाभिरभिरामौ नृपात्मजौ ।
रमयामास धर्मात्मा कौशिको मुनिपुंगवः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः २४

ततः प्रभाते विमले कृताह्निकमरिंदमौ । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य नद्यास्तीरमुपागतौ ॥ १ ॥
ते च सर्वे महात्मानो मुनयः संशितव्रताः । उपस्थाप्य शुभां नावं विश्वामित्रमथाब्रुवन् ॥ २ ॥
आरोहतु भवान्नावं राजपुत्रपुरस्कृतः । अरिष्टं गच्छ पन्थानं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥ ३ ॥
विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वा तानृषीन्प्रतिपूज्य च । ततार सहितस्ताभ्यां सरितं सागरंगमाम् ॥ ४ ॥

निवास बड़ा उत्तम होगा, रातको हमलोग सुखपूर्वक यहाँ रहेंगे ॥ १७ ॥ हमलोग स्नान करेंगे, और जप करके हवन करेंगे (इस स्थानपर इन बातोंको सुविधा है)। इस प्रकार आपसमें सलाह करनेवाले विश्वामित्र आदिका आगमन उन ऋषियोंने दूरकी बात जान लेनेवाले ज्ञान-चक्षुके द्वारा । १८ ॥ जानलिया (जान लिया कि ये लोग ताड़का आदिका नाश करनेके लिए आये हैं), इससे वे बड़े प्रसन्न हुए और वे पुलकित हो गये, विश्वामित्रको अर्घ्य, पाद्य, आतिथ्य दिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणका भी उन लोगोंने आतिथ-सत्कार किया। सत्कार करके मुनियोंने वचनके द्वारा उन लोगोंको प्रसन्न किया ॥ २० ॥ उन सब ऋषियोंने चित्तको स्थिर करके यथोचित सन्ध्योपासन किया और उन लोगोंने विश्वामित्र आदिको शयन करनेके स्थानपर पहुँचा दिया ॥ २१ ॥ मुनिने सुखपूर्वक वहाँ निवास किया, धर्मात्मा मुनिपुंगव कौशिकने उन राजपुत्रोंको सुन्दर कथाओंके द्वारा प्रसन्न किया ।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तेइसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २३ ॥

दूसरे दिन प्रातः काल विश्वामित्रने गङ्गाके विमल जलमें प्रातःकालका स्नान-तर्पण कर लिया। उनको आगे करके राम और लक्ष्मण गंगानदीके तीर आये ॥ १ ॥ उस आश्रमके वासी सब महात्मा मुनि उत्तम (दृढ़, न डूबनेवाली) नाव लेआकर मुनिसे बोले ॥ २ ॥ आप नौकापर चढ़ें, राजपुत्रोंको भी साथ लेलें, मार्गमें निर्विघ्नतापूर्वक जायँ, विलम्ब न करें ॥३॥ विश्वामित्रने उनलोगोंकी बात मानी, और उन ऋषियोंकी प्रतिपूजा (पूजाके बदलेमें पूजा) की, तदनन्तर समुद्र तक जानेवाली

तत्र शुश्राव वै शब्दं तोयसंरम्भवर्धितम् । मध्यमागम्य तोयस्य तस्य शब्दस्य निश्चयम् ॥ ५ ॥
ज्ञातुकामो महातेजाः सह रामः कनीयसा । अथ रामः सरिन्मध्ये पप्रच्छ मुनिपुंगवम् ॥ ६ ॥
वारिणो भिद्यमानस्य किमयं तुमुलो ध्वनिः । राघवस्य वचः श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ॥ ७ ॥
कथयामास धर्मात्मा तस्य शब्दस्य निश्चयम् । कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम् ॥ ८ ॥
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः । तस्मात्सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते ॥ ९ ॥
सरःप्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता । तस्यायमतुलः शब्दो जाह्नवीमभिवर्तते ॥१०॥
वारिसंक्षोभजो राम प्रणामं नियतः कुरु । ताभ्यां तु तावुभौ कृत्वा प्रणाममतिधार्मिकौ ॥११॥
तीरं दक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ । स वनं घोरसंकाशं दृष्ट्वा नरवरात्मजः ॥१२॥
अविप्रहतमैक्ष्वाकः पप्रच्छ मुनिपुंगवम् । अहो वनमिदं दुर्गं झिल्लिकागणसंयुतम् ॥१३॥
भैरवैः श्वापदैः कीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः । नानाप्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः ॥१४॥
सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम् । धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः ॥१५॥
संकीर्णं बदरीभिश्च किं न्विदं दारुणं वनम् । तमुवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥१६॥

नदीको पार करने लगे ॥ ४ ॥ नदीके बीचमें आनेपर उन लोगोंने कोई शब्द सुना, जो जलके साथ टकराकर बड़ा हो गया था, वह कैसा शब्द है इस बातका निश्चित रूपसे ॥ ५ ॥ जाननेकी इच्छा रामचन्द्रने की, लक्ष्मण भी जानना चाहते थे, इस कारण वहीं नदीके बीचमें रामचन्द्रने मुनिपुङ्गव विश्वामित्रसे पूछा ॥६॥ जलके टकरानेके कारण क्या यह तुमुल ध्वनि हो रही है? रामचन्द्रकी बातसे उनकी उत्कण्ठा टपकती थी। उस वचनको सुनकर ॥७॥ धर्मात्मा मुनि उस शब्दका निर्णय (कैसा शब्द है) कहने लगे। कैलास पर्वतपर ब्रह्माने अपने मानसिक सङ्कल्पसे अति उत्तम सर (तालाब) बनाया ॥ ८ ॥ हे नरश्रेष्ठ, ब्रह्माने वह सर मानसिक सङ्कल्पसे बनाया, इस कारण उसका नाम "मानससर" हुआ। उस तालाब (झील) से एक सोता बहकर चला जा अयोध्या होकर आगे गया ॥ ९ ॥ उसी मानससरका निर्मल सोता सरयू नदीके नामसे विख्यात हुआ, वह नदी बड़ी पवित्र है। वही नदी गंगामें मिल रही है, और उसीका यह बड़ा शब्द हो रहा है ॥१०॥ राम, यह शब्द दो नदियोंके टकरानेसे उत्पन्न हो रहा है, सावधान होकर इन नदियोंको प्रणाम करो। उन दोनों नदियोंको धर्मात्मा राम और लक्ष्मणने प्रणाम किये ॥ ११ ॥ गंगाके दक्षिण तीरपर आकर वे शीघ्रतासे चले। रामचन्द्रने मार्गमें एक बड़ा भयानक वन देखा ॥ १२ ॥ उस वनको देखकर इक्ष्वाकुवंशी रामचंद्रने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे पूछा—महाराज, यह बड़ा भयानक वन है, इसमें मनुष्योंके आने-जानेके भी चिन्ह नहीं मालूम पड़ते, इसमें झिल्ली (इस नामके एक कीड़े) के शब्द हो रहे हैं ॥१३॥ भयानक हिंस्रजन्तु और शकुन्त (भास नामका पक्षी) यहां भरे पड़े हैं, डरावने शब्दवाले बहुतसे पक्षी भयानक स्वरमें बोल रहे हैं, उनका बोलना बहुत बुरा मालूम पड़ता है ॥१४॥ सिंह, बाघ, सूकर और हाथी इस वनमें अधिक हैं, धव, अश्वकर्ण, ककुभ, बिल्व, तिन्दुक, पाटल आदि वृक्ष इस वनमें हैं ॥ १५ ॥ बैरके पेड़ भी बहुत हैं। यह भयानक वन कौन है

श्रूयतां वत्स काकुत्स्थ यस्यैतद्दारुणं वनम् । एतौ जनपदौ स्फीतौ पूर्वमास्तां नरोत्तम ॥१७॥
मलदाश्च करूषाश्च देवनिर्माणनिर्मितौ । पुरा वृत्रवधे राम मलेन समभिप्लुतम् ॥१८॥
क्षुधा चैव सहस्राक्षं ब्रह्महत्या समाविशत् । तमिन्द्रं मलिनं देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥१९॥
कलशैः स्नापयामासुर्मलं चास्य प्रमोचयन् । इह भूम्यां मलं दत्त्वा देवाः कारूषमेव च ॥२०॥
शरीरजं महेन्द्रस्य ततो हर्षं प्रपेदिरे । निर्मलो निष्करूषश्च शुद्ध इन्द्रो यथाभवत् ॥२१॥
ततो देशस्य सुप्रीतो वरं प्रादादनुत्तमम् । इमौ जनपदौ स्फीतौ ख्यातिं लोके गमिष्यतः॥२२॥
मलदाश्च करूपाश्च ममाङ्गमलधारिणौ । साधु साध्विति तं देवाः पाकशासनमब्रुवन् ॥२३॥
देशस्य पूजां तां दृष्ट्वा कृतां शक्रेण धीमता । एतौ जनपदौ स्फीतौ दीर्घकालमरिंदम ॥२४॥
मलदाश्च करूषाश्च मुदिता धनधान्यतः । कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षिणी कामरूपिणी ॥२५॥
बलं नागसहस्रस्य धारयन्ती तदा ह्यभूत् । ताटका नाम भद्रं ते भार्या सुन्दस्य धीमतः ॥२६॥
मारीचो राक्षसः पुत्रो यस्याः शक्रपराक्रमः । वृत्तबाहुर्महाशीर्षो विपुलास्यतनुर्महान् ॥२७॥
राक्षसो भैरवाकारो नित्यं त्रासयते प्रजाः । इमौ जनपदौ नित्यं विनाशयति राघव ॥२८॥

इसका क्या नाम है ? महातेजस्वी, महामुनि विश्वामित्र रामचन्द्रसे बोले ॥ १६ ॥ बेटा काकुत्स्थ (वंशका नाम), सुनो, जिसका यह भयानक वन है। हे नरोत्तम, यहाँ पहले दो बड़े ऐश्वर्यशाली प्रान्त थे, ॥ १७ ॥ उनके नाम मलद और करुष थे, देवताओंके प्रयत्नसे उनका निर्माण हुआ था। राम, बहुत पहले समयमें, वृत्रासुरके वध हो जानेपर इन्द्रको पाप लगा ॥ १८ ॥ भूख और ब्रह्महत्या भी उन्हें लगी। उन मलिन इन्द्रको तपस्वी ऋषियों और देवताओंने ॥१९॥ घड़ेसे स्नान कराया और उनका पाप दूर किया। देवताओंने इन्द्रका मल(पाप और कारुष(भूख)इस भूमिको दी और उनको पवित्र बनाया ॥ २० ॥ इन्द्र निर्मल (निष्पाप) निष्करुष (अबुभुक्षित) होकर शुद्ध हो गये, उनके शरीरका मल दूर हो गया, इससे देवता बहुत प्रसन्न हुए ॥ २१ ॥ उनके मल धारण करनेके कारण इन्द्र इन देशोंपर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने वर दिया कि ये दोनों देश बड़े समृद्धिशाली होंगे, ॥२२॥ क्योंकि इन देशोंने हमारे शरीरका मल धारण किया है। इनके नाम मलद और कारुष होंगे। देवताओंने इन्द्रको साधुवाद दिया ॥ २३ ॥ क्योंकि बुद्धिमान इन्द्रने इन दोनों देशोंकी प्रतिष्ठा की थी। इस तरह ये दोनों देश बहुत दिनों तक समृद्धिशाली रहे ॥ २४ ॥ मलद और कारुष देशके रहनेवाले धन-धान्यसे भरे-पूरे थे, प्रसन्न थे। थोड़े दिनोंके बाद अपनी इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेवाली एक यक्षिणी ॥ २५ ॥ आयी, उसका बल हज़ार हाथियोंके बराबर था, ताड़का उसका नाम है, आपका कल्याण हो (ताड़काके भयसे मुनिके मनमें आशङ्का उत्पन्न हुई और उसे दूर करनेके लिए उन्होंने रामचन्द्रको आशीर्वाद दिया), वह सुन्द नामक राक्षसकी स्त्री है ॥२६॥ मारीच नामका राक्षस उसीका पुत्र है जो इन्द्रके समान पराक्रमी है। उस राक्षसकी भुजा गोली है, लम्बी है, माथा बहुत बड़ा है, मुँह भी बड़ा है उसका शरीर भी बड़ा विशाल है ॥ २७ ॥ वह भयानक राक्षस प्रजाको सदा त्रास (दुःख) देता रहता है, रामचन्द्र, इन दोनों देशोंका विनाश भी

मलदांश्च कारूषांश्च ताटका दुष्टचारिणी । सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने ॥२९॥
अतएव च गन्तव्यं ताटकाया वनं यतः । स्वबाहुबलमाश्रित्य जहीमां दुष्टचारिणीम् ॥३०॥
मन्नियोगादिमं देशं कुरु निष्कण्टकं पुनः । नहि कश्चिदिमं देशं शक्तो ह्यागन्तुमीदृशम् ॥३१॥
यक्षिण्या घोरया राम उत्सादितमसह्यया । एतत्ते सर्वमाख्यातं यथैतद्दारुणं वनम् ॥
यक्ष्या चोत्सादितं सर्वमद्यापि न निवर्तते ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः २५

अथ तस्याप्रमेयस्य मुनेर्वचनमुत्तमम् । श्रुत्वा पुरुषशार्दूलः प्रत्युवाच शुभां गिरम् ॥ १ ॥
अल्पवीर्या यदा यक्षी श्रूयते मुनिपुंगव । कथं नागसहस्रस्य धारयत्यबला बलम् ॥ २ ॥
इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा राघवस्यामितौजसः । हर्षयञ्श्लक्ष्णया वाचा सलक्ष्मणमरिंदमम् ॥ ३ ॥
विश्वामित्रोऽब्रवीद्वाक्यं शृणु येन बलोत्कटा । वरदानकृतं वीर्यं धारयत्यबला बलम् ॥ ४ ॥
पूर्वमासीन्महायक्षः सुकेतुर्नाम वीर्यवान् । अनपत्यः शुभाचारः स च तेपे महत्तपः ॥ ५ ॥

वही करता है ॥ २८ ॥ दुष्टा ताड़का भी मलद और कारुष देशोंका विनाश किया करती है। यहाँसे आधे योजनपर वह रास्ता रोककर बैठी है ॥ २९ ॥ अतएव ताड़कावनसे (जिधर ताड़का है उधरसे ही) हमलोग चलें, और रामचन्द्र, तुम अपने बाहुबलसे इस दुष्टाको मार डालो ॥ ३० ॥ मेरी आज्ञासे यह काम करो (स्त्रीको मारना पाप है, रामचन्द्रके इस विचारको दबानेके लिए विश्वामित्रने कहा मेरी आज्ञासे । गुरुकी आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिए, चाहे वह कैसी ही हो, उसमें पाप नहीं होता), इस देशका सङ्कट दूर कर दो, यह ऐसा भयानक देश है कि कोई भी यहाँ आ नहीं सकता ॥ ३१ ॥ उस भयानक यक्षिणीने इस देशको उजाड़ा है, इस वनके सम्बन्धकी सब बातें मैंने कहीं जैसा यह भयानक वन है। यक्षिणीने इस देशको उजाड़ा, वह आज भी नहीं पनपा ॥ ३२ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौबीसवाँ सर्ग समाप्त ।

महाप्रभावशाली उन मुनिके इस वचनको सुनकर पुरुषसिंह रामचन्द्रने उत्तर दिया ॥ १ ॥ महाराज, यक्ष जाति तो बलवान नहीं होती, सुना जाता है कि वह दुर्बल होती है, फिर इसने हजार हाथियोंका बल कहाँसे पाया ॥२॥ अमितपराक्रमी रामचन्द्रके इस वचनको सुनकर विश्वामित्रने राम और लक्ष्मणसे कहा, मुनि बड़े प्रसन्न थे इस कारण उनकी वाणी बड़ी मनोहर हो गयी थी ॥ ३ ॥ मुनिने कहा, सुनो, जिस कारणसे यह बलवान हो गयी, यह अबला वरदान पाकर बलवती हुई है, यह इसका स्वाभाविक बल नहीं है ॥ ४ ॥ पहले सुकेतु नामका एक यक्ष था, वह पराक्रमी

पितामहस्तु सुप्रीतस्तस्य यक्षपतेस्तदा। कन्यारत्नं ददौ राम ताटकां नाम नामतः ॥ ६ ॥
ददौ नागसहस्रस्य बलं चास्याः पितामहः। नत्वेव पुत्रं यक्षाय ददौ चासौ महायशाः ॥ ७ ॥
तां तु बालां विवर्धन्तीं रूपयौवनशालिनीम्। जम्भपुत्राय सुन्दाय ददौ भार्यां यशस्विनीम् ॥ ८ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य यक्षी पुत्रं व्यजायत। मारीचं नाम दुर्धर्षं यः शापाद्राक्षसोऽभवत ॥ ९ ॥
सुन्दे तु निहते राम अगस्त्यमृषिसत्तमम्। ताटका सह पुत्रेण प्रधर्षयितुमिच्छति ॥१०॥
भक्षार्थं जातसंरम्भा गर्जन्ती साभ्यधावत। आपतन्तीं तु तां दृष्ट्वा अगस्त्यो भगवानृषिः ॥११॥
राक्षसत्वं भजस्वेति मारीचं व्याजहार सः। अगस्त्यः परमामर्षस्ताटकामपि शप्तवान् ॥१२॥
पुरुषादी महायक्षी विकृता विकृतानना। इदं रूपं विहायाशु दारुणं रूपमस्तु ते ॥१३॥
सैषा शापकृतामर्षात्ताटका क्रोधमूर्च्छिता। देशमुत्सादयत्येनमगस्त्याचरितं शुभम् ॥१४॥
एनां राघव दुर्वृत्तां यक्षीं परमदारुणाम्। गोब्राह्मणहितार्थाय जहि दुष्टपराक्रमाम् ॥१५॥
नह्येनां शापसंसृष्टां कश्चिदुत्सहते पुमान्। निहन्तुं त्रिषु लोकेषु त्वामृते रघुनन्दन ॥१६॥
नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम। चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥१७॥
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्। पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥१८॥
राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः। अधर्म्यां जहि काकुत्स्थ धर्मो ह्यस्यां न विद्यते ॥१९॥

था, वह पुत्रहीन था, धर्मात्मा था, उसने कठिन तपस्या की ॥५॥ ब्रह्मा उस यक्षराजपर प्रसन्न हुए और प्रसन्न होकर ताड़का नामक कन्यारत्न उन्होंने यक्षराजको दिया ॥६॥ इस कन्याको हजार हाथियोंका बल भी ब्रह्माने ही दिया, पर सुकेतुको ब्रह्माने पुत्र न दिया ॥७॥ वह कन्या बढ़कर युवती हुई, सुन्दरी हुई और वह जम्भ राक्षसके पुत्र सुन्दको व्याही गयी ॥८॥ कुछ दिनोंके पश्चात् उस ताड़काने एक पुत्र उत्पन्न किया, उसका नाम मारीच हुआ, वह बड़ा बलवान था। वह मारीच शापके कारण राक्षस हो गया ॥९॥ रामचन्द्र, जब सुन्द मारा गया (अगस्त्य मुनिने शाप देकर इसे मारा), तब यह ताड़का अपने पुत्रके साथ ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यको पीड़ा पहुँचानेका प्रयत्न करने लगी ॥ १० ॥ क्रोध करके ऋषिको खानेके लिए वह उनकी ओर दौड़ी, अगस्त्य मुनिने उसको दौड़ी हुई आती देखकर ॥११॥ मारीचको "तुम राक्षस हो जाओ" यह शाप दिया। बहुत क्रोधित होकर ऋषिने ताड़काको भी शाप दिया ॥ १२ ॥ यक्षी, तू मनुष्य खानेवाली है, इस कारण तेरा रूप भी वैसाही हो जाय, तेरा मुंह विकृत हो, तू वर्तमान रूप छोड़कर भयानक रूप धारण कर ॥ १३ ॥ इस शापसे ताड़काको भी बड़ा क्रोध हुआ और वह इस देशको उजाड़ने लगी, क्योंकि पहले अगस्त्यका यहाँ आश्रम था ॥१४॥ रामचन्द्र, यह राक्षसी बड़ी दुराचारिणी है, बड़ी भयानक है। गौ और ब्राह्मणोंके कल्याणके लिए इसका वध करो, इसका पराक्रम बड़ा भयदायी है ॥१५॥ अगस्त्यके द्वारा शापित इस राक्षसीका वध तीनों लोकोंमें तुमको छोड़कर कोई पुरुष नहीं कर सकता है ॥१६॥ स्त्री-वध समझकर तुमको इस कामकी ओर घृणा न करनी चाहिए। तुम राजपुत्र हो, चतुर्वर्णकी रक्षा तुमको करनी चाहिए। तुम इसको मारकर चातुर्वर्ण्यकी रक्षा करो ॥ १७ ॥ प्रजाकी रक्षाके लिए बुरा-भला, सदोष-निर्दोष सभी काम राजाको करने चाहिए ॥१८॥ जिन लोगोंने राज्य-भार ग्रहण किया

श्रूयते हि पुरा शक्रो विरोचनसुतां नृप। पृथिवीं हन्तुमिच्छन्तीं मन्थरामभ्यसूदयत् ॥२०॥
विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी पतिव्रता। अनिन्द्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता ॥२१॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभी राजपुत्रैर्महात्मभिः। अधर्मसहिता नार्यो हताः पुरुषसत्तमैः।
तस्मादेनां घृणां त्यक्त्वा जहि मच्छासनान्नृप ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः २६

मुनेर्वचनमक्लीबं श्रुत्वा नरवरात्मजः। राघवः प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रत्युवाच दृढव्रतः ॥ १ ॥
पितुर्वचननिर्देशात्पितुर्वचनगौरवात् । वचनं कौशिकस्येति कर्तव्यमविशङ्कया ॥ २ ॥
अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना। पित्रा दशरथेनाहं नावज्ञेयं हि तद्वचः ॥ ३ ॥
सोऽहं पितुर्वचः श्रुत्वा शासनाद् ब्रह्मवादिनः। करिष्यामि न संदेहस्ताटकावधमुत्तमम ॥ ४ ॥
गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च। तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वा धनुर्मध्ये बद्ध्वा मुष्टिमरिंदमः। ज्याघोषमकरोत्तीव्रं दिशः शब्देन नादयन् ॥ ६ ॥

है, उनका यही धर्म है। हे काकुत्स्थ, यह अधर्मकारिणी है, इसका वध करो, इसका कोई धर्म नहीं है ॥१६॥ राजन्, पहलेके समयमें विरोचनकी पुत्री मन्थरा पृथिवीको मारनेके लिए उद्यत हुई थी, उसको इन्द्रने मारडाला था ॥ २० ॥ सुना आता है कि भृगुऋषिकी स्त्री और शुक्राचार्यकी माता अनिन्द्र (जहाँ निद्राका सुख न हो) लोक चाहती थी, विष्णुने उसे मार डाला ॥२१॥ ये तथा इसी प्रकार अन्य भी अनेक राजपुत्र, पुरुषश्रेष्ठ महात्माओंने अधर्मचारिणी स्त्रियोंका वध किया है। इस कारण दया छोड़कर मेरी आज्ञासे इस ताड़काका वध करो ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पच्चीसवाँ सर्ग समाप्त ॥२५॥

वीरता उत्पन्न करनेवाले मुनिके वचन सुनकर अपने सङ्कल्पके दृढ़ राजपुत्र रामचन्द्रने हाथ जोड़कर कहा ॥ १ ॥ पिताकी आज्ञाके कारण और पिताके वचनोंमें जो मेरी श्रद्धा है उसके कारण विश्वामित्रके वचनोंका पालन बिना विचारे मुझे करना चाहिए ॥ २ ॥ अयोध्यामें गुरुओंके बीचमें महात्मा पिता दसरथने मुझे यह उपदेश दिया है कि विश्वामित्रके वचनोंका कभी तिरस्कार मत करना, उनकी आज्ञाओंका पालन करना ॥३॥ पिताका ऐसा वचन सुनकर मैं आया हूँ। आप ब्रह्मवादी हैं, आपकी आज्ञासे मैं ताड़काका वध करूँगा, क्योंकि यह उत्तम काम है (यदि ऐसा न होता तो आपके समान ब्रह्मवादी इस कामके लिए आज्ञा ही क्यों देते) ॥४॥ गौ, ब्राह्मण और देशके हितके लिए मैं महान् प्रभावशाली आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिए उद्यत हूँ ॥५॥ ऐसा कहकर शत्रु-संहारी रामचन्द्रने धनुषके बीचमें मुट्ठी बाँधा, धनुष पकड़ा, और उसका तीव्र टङ्कार किया,

तेन शब्देन वित्रस्तास्ताटकावनवासिनः। ताटका च सुसंक्रुद्धा तेन शब्देन मोहिता ॥ ७ ॥
तं शब्दमभिनिध्याय राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता। श्रुत्वा चाभ्यद्रवत्क्रुद्धा यत्र शब्दो विनिःसृतः॥ ८ ॥
तां दृष्ट्वा राघवः क्रुद्धां विकृतां विकृताननाम्। प्रमाणेनातिवृद्धां च लक्ष्मणं सोऽभ्यभाषत ॥ ९ ॥
पश्य लक्ष्मण यक्षिण्या भैरवं दारुणं वपुः। भिद्येरन्दर्शनादस्या भीरूणां हृदयानि च ॥१०॥
एतां पश्य दुराधर्षां मायाबलसमन्विताम्। विनिवृत्तां करोम्यद्य हृतकर्णाग्रनासिकाम् ॥११॥
नह्येनामुत्सहे हन्तुं स्त्रीस्वभावेन रक्षिताम्। वीर्यं चास्या गतिं चैव हन्यामिति हि मे मतिः ॥१२॥
एवं ब्रुवाणे रामे तु ताटका क्रोधमूर्च्छिता। उद्यम्य बाहुं गर्जन्ती राममेवाभ्यधावत ॥१३॥
विश्वामित्रस्तु ब्रह्मर्षिर्हुंकारेणाभिभर्त्स्य ताम्। स्वस्ति राघवयोरस्तु जयं चैवाभ्यभाषत ॥१४॥
उद्धून्वाना रजो घोरं ताटका राघवावुभौ। रजोमेघेन महता मुहूर्तं सा व्यमोहयत् ॥१५॥
ततो मायां समास्थाय शिलावर्षेण राघवौ। अवाकिरत्सुमहता ततश्चुक्रोध राघवः ॥१६॥
शिलावर्षं महत्तस्याः शरवर्षेण राघवः। प्रतिवार्योपधावन्त्याः करौ चिच्छेद पत्रिभिः ॥१७॥
ततश्छिन्नभुजां श्रान्तामभ्याशे परिगर्जतीम्। सौमित्रिरकरोत्क्रोधाद्धृतकर्णाग्रनासिकाम् ॥१८॥
कामरूपधरा सा तु कृत्वा रूपाण्यनेकशः। अन्तर्धानं गता यक्षी मोहयन्ती स्वमायया ॥१९॥

जिससे दिशाएँ प्रतिध्वनित होगयीं॥६॥ उस शब्दसे ताड़कावनमें रहनेवाले प्राणी डर गये, ताड़का इस शब्दसे क्रोधित हुई, और वह किंकर्तव्यविमूढ होगयी (कहाँसे यह शब्द आरहा है, यह शब्द किसके द्वारा उत्पन्न हुआ, इसका कारण क्या है, आदि बातोंका निर्णय वह न कर सकी) ॥७॥ उस शब्दसे राक्षसीको बड़ा क्रोध आया, उस शब्दको सुनकर वह उधर चली, जहाँसे वह शब्द निकला था ॥८॥ उस क्रोधित राक्षसीको रामचन्द्रने देखा, उसका स्वरूप भयानक था, मुँह तो और भी अधिक भयानक था, मनुष्यके प्रमाणसे उसका शरीर बड़ा था। उसको देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा ॥९॥ लक्ष्मण, यक्षिणी (ताड़का) का यह भयानक शरीर देखो, इसको देखते ही भीरुओंका हृदय काँप जायगा ॥१०॥ देखो तो इसको जीतना कठिन है, यह माया भी जानती है और बलवान भी है, कान और नाक काटकर मैं इसे भगा देता हूँ ॥११॥ इसका वध करना मैं नहीं चाहता, क्योंकि यह स्त्री है, अतएव दूसरोंको पीड़ा देनेकी जो इसकी शक्ति है उसको और आकाश आदिमें उड़नेकी जो इसकी शक्ति है उसको मैं नष्ट कर देना चाहता हूँ (इस तरह मुनिकी आज्ञाका पालन भी हो जायगा और धर्म-शास्त्रके वचनका भी तिरस्कार न होगा) ॥ १२ ॥ रामचन्द्र इधर ऐसी बातें कर रहे थे, उधर ताड़का बड़े क्रोधसे दोनों हाथोंको उठाकर गरजती हुई रामकी ही ओर दौड़ी ॥१३॥ विश्वामित्रने हुंकार करके उसे डांटा, और 'राम, लक्ष्मणका कल्याण हो, इनकी जय हो' ऐसा कहा ॥१४॥ ताड़काने धूल उड़ाकर धूलका मेघ बना दिया और इससे राम-लक्ष्मणको आश्चर्यमें डाल दिया॥१५॥ फिर उसने मायाके द्वारा राम और लक्ष्मणपर पत्थरोंकी वृष्टि की, जिससे रामचन्द्रको क्रोध आया, रामचन्द्रने अपने बाणोंकी वृष्टिके द्वारा ताड़काके घोर पत्थर-वृष्टिको ॥१६॥ रोका और अपनी ओर दौड़कर आती हुई ताड़काके हाथ बाणसे काट लिये॥१७॥ उसके हाथ कट गये, वह थककर पासही पड़ी गरजने लगी, उसी समय क्रोधसे लक्ष्मणने उसके कान-नाक काट लिये॥१८॥ वह कामरूपिणी

अश्मवर्षं विमुञ्चन्ती भैरवं विचचार सा । ततस्तावश्मवर्षेण कीर्यमाणौ समन्ततः ॥२०॥
दृष्ट्वा गाधिसुतः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् । अलं ते घृणया राम पापैषा दुष्टचारिणी ॥२१॥
यज्ञविघ्नकरी यक्षी पुरा वर्धेत मायया । वध्यतां तावदेवैषा पुरासंध्या प्रवर्तते ॥२२॥
रक्षांसि संध्याकाले तु दुर्धर्षाणि भवन्ति हि । इत्युक्तः स तु तां यक्षीमश्मवृष्ट्याभिवर्षिणीम् ॥२३॥
दर्शयञ्शब्दवेधित्वं तां रुरोध स सायकैः । सा रुद्धा बाणजालेन मायाबलसमन्विता ॥२४॥
अभिदुद्राव काकुत्स्थं लक्ष्मणं च विनेदुषी । तामापतन्तीं वेगेन विक्रान्तामशनीमिव ॥२५॥
शरेणोरसि विव्याध पपात च ममार च । तां हतां भीमसंकाशां दृष्ट्वा सुरपतिस्तदा ॥२६॥
साधु साध्विति काकुत्स्थं सुराश्चाप्यभिपूजयन् । उवाच परमप्रीतः सहस्राक्षः पुरंदरः ॥२७॥
सुराश्च सर्वे संहृष्टा विश्वामित्रमथाब्रुवन् । मुने कौशिक भद्रं ते सेन्द्राः सर्वे मरुद्गणाः ॥२८॥
तोषिताः कर्मणानेन स्नेहं दर्शय राघवे । प्रजापतेः कृशाश्वस्य पुत्रान्सत्यपराक्रमान् ॥२९॥
तपोबलभृतो ब्रह्मन्राघवाय निवेदय । पात्रभूतश्च ते ब्रह्मँस्तवानुगमने रतः ॥३०॥
कर्तव्यं सुमहत्कर्म सुराणां राजसूनुना । एवमुक्त्वा सुराः सर्वे जग्मुर्हृष्टा विहायसम् ॥३१॥

थी, इच्छानुसार अनेक रूप धर सकती थी, उसने अनेक रूप धारण किये, वह छिप गयी, इस प्रकार भी मायासे उसने राम और लक्ष्मणको मोहित कर लिया, ये अपना कर्तव्य निश्चय न कर सके ॥ १६ ॥ वह पत्थरकी भयानक वृष्टि करती हुई घूमने लगी । राम और लक्ष्मण पत्थरोंसे घिर गये ॥ २० ॥ रामचन्द्रकी यह दशा देखकर विश्वामित्रने कहा—रामचन्द्र, इसपर दया करना व्यर्थ है, क्योंकि यह पापिनी है, दुराचारिणी है ॥ २१ ॥ यह यक्षिणी यज्ञमें विघ्न करती है, अपनी मायासे यह आगे भी बढ़ सकती है (इस समय हाथ आदिके कटनेसे यह कमजोर अवश्य हो गयी है, पर वह कमजोरी दूर कर फिर यह उपद्रव कर सकती है), इसलिए इसको मारो, नहीं तो शीघ्र संध्या हुआ चाहती है (संध्यामें राक्षसोंका जीतना कठिन हो जाता है ?) ॥ २२ ॥ विश्वामित्रकी यह बात सुनकर पत्थरोंकी वृष्टि करनेवाली उस ताड़काको ॥२३॥ शब्दवेधी बाणके द्वारा रामचन्द्रने रोक दिया, मायाविनी और बली ताड़काको रामचन्द्रने बाणजालसे घेर लिया ॥ २४ ॥ घोर गर्जन करती हुई वह रामचन्द्र और लक्ष्मणकी ओर दौड़ी । बिजलीके समान बड़े वेगसे अपनी ओर आती हुई उसके, ॥ २५ ॥ कलेजेमें मारा, रामचन्द्रके बाणसे, वह गिरी और मर गयी । भयानक रूपधारी उसको मरी देखकर इन्द्रने ॥ २६ ॥ और देवताओंने 'साधु-साधु' कहकर रामचन्द्रका अभिनन्दन किया, उनकी पूजा की । बहुत प्रसन्न होकर सहस्राक्ष इन्द्र बोले ॥२७॥ और प्रसन्न होकर देवता भी विश्वामित्रसे बोले हे कौशिक, आपका कल्याण हो, इन्द्र आदि सभी देवता और देवगण ॥ २८ ॥ आपके इस कामसे आपपर प्रसन्न हैं । आप रामचन्द्रपर स्नेह दिखाइए, अर्थात् ऐसे उत्तम काम करनेके लिए उनको पारितोषिक दीजिए । कृशाश्व प्रजापतिके जो पुत्र हैं, जो अमोघ हैं (बाण-विद्या, जो विश्वामित्रने राम-लक्ष्मणको अयोध्यासे चलनेके समय सिखायी थी), ॥ २६ ॥ ब्रह्मन्, जो तपसे प्राप्त शस्त्र हैं उनको आप रामचन्द्रको दो क्योंकि ये सर्वथा योग्य हैं और आपके सर्वथा सेवक हैं ॥ ३० ॥ देवताओंने

विश्वामित्रं पूजयन्तस्ततः संध्या प्रवर्तते । ततो मुनिवरः प्रीतस्ताटकावधतोषितः ॥३२॥
मूर्ध्नि राममुपाघ्राय इदं वचनमब्रवीत् । इहाद्य रजनीं राम वसाम शुभदर्शन ॥३३॥
श्वः प्रभाते गमिष्यामस्तदाश्रमपदं मम । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथात्मजः ॥३४॥
उवास रजनीं तत्र ताटकाया वने सुखम् । मुक्तशापं वनं तच्च तस्मिन्नेव तदाहनि ।
रमणीयं विबभ्राज यथा चैत्ररथं वनम् ॥३५॥

निहत्य तां यक्षसुतां स रामः प्रशस्यमानः सुरसिद्धसंघैः ।
उवास तस्मिन्मुनिना सहैव प्रभातवेलां प्रतिबोध्यमानः ॥३६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ ३ ॥

सप्तविंशः सर्गः २७

अथ तां रजनीमुष्य विश्वामित्रो महायशाः । प्रहस्य राघवं वाक्यमुवाच मधुरस्वरम् ॥ १ ॥
परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते राजपुत्र महायशः । प्रीत्या परमया युक्तो ददाम्यस्त्राणि सर्वशः ॥ २ ॥
देवासुरगणान्वापि सगन्धर्वोरगान्भुवि । यैरमित्रान्प्रसह्याजौ वशीकृत्य जयिष्यसि ॥ ३ ॥
तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः । दण्डचक्रं महद्दिव्यं तव दास्यामि राघव ॥ ४ ॥

कहा-इस राजपुत्रको देवताओंके अनेक काम करने हैं। इतना कहकर प्रसन्नतापूर्वक देवता आकाशमार्गसे गये ॥ ३१ ॥ वे देवता विश्वामित्रकी स्तुति करते हुए गये। उस समय सन्ध्या हो गयी। ताड़काके वधके कारण मुनि भी बहुत प्रसन्न थे ॥ ३२ ॥ उन्होंने रामका सिर सूँघकर कहा-हे शुभदर्शन, आजकी रातको हमलोग यहीं रहें ॥ ३३ ॥ कल प्रातःकाल यहांसे अपने आश्रममें जायंगे। विश्वामित्रकी बात सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३४ ॥ उसी ताड़कावनमें हीं रातको निवास किया और यह वन उसी दिनसे शापमुक्त हुआ तथा चैत्ररथवनके समान शोभित होने लगा ॥ ३५ ॥ यक्षकी कन्या ताड़काको रामचन्द्रने मारा, देवता, सिद्ध आदिने रामचन्द्रकी प्रशंसा की । उनलोगोंने उसी वनमें उस रातको निवास किया और प्रातः मुनिने दोनों भाइयोंको जगाया ॥ ३६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकि रामायणके बालकाण्डका छब्बीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २६ ॥

महायशस्वी विश्वामित्र मुनिने उस रातको वहीं निवास किया, पुनः प्रातःकाल होनेपर हँसकर मीठे स्वरमें उन्होंने रामचन्द्रसे कहा ॥ १ ॥ हे राजपुत्र, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ (क्योंकि तुमने ताड़काका वध किया है), तुम्हारा कल्याण हो, मैं बड़ी प्रसन्नतासे तुमको अपने अस्त्र दे रहा हूँ ॥ २ ॥ इन अस्त्रोंके प्रभावसे तुम युद्धमें देवता, असुर गण (वसु, रुद्र आदि), गन्धर्व, नाग आदिको भी बलपूर्वक वश करके जीत लोगे ॥ ३ ॥ वे समस्त दिव्य अस्त्र मैं तुमको दे रहा हूँ, अत्यन्त अलौकिक दण्डचक्र भी मैं तुमको देता हूँ (दण्डचक्र एक अस्त्रका

धर्मचक्रं ततो वीर कालचक्रं तथैव च । विष्णुचक्रं तथात्युग्रमैन्द्रं चक्रं तथैव च ॥ ५ ॥
वज्रमस्त्रं नरश्रेष्ठ शैवं शूलवरं तथा । अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव ऐषीकमपि राघव ॥ ६ ॥
ददामि ते महाबाहो ब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम् । गदे द्वे चैव काकुत्स्थ मोदकी शिखरी शुभे ॥ ७ ॥
प्रदीप्ते नरशार्दूल प्रयच्छामि नृपात्मज । धर्मपाशमहं राम कालपाशं तथैव च ॥ ८ ॥
वारुणं पाशमस्त्रं च ददाम्यहमनुत्तमम् । अशनी द्वे प्रयच्छामि शुष्कार्द्रे रघुनन्दन ॥ ९ ॥
ददामि चास्त्रं पैनाकमस्त्रं नारायणं तथा । आग्नेयमस्त्रं दयितं शिखरं नाम नामतः ॥१०॥
वायव्यं प्रथमं नाम ददामि तव चानघ । अस्त्रं हयशिरो नाम क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥११॥
शक्तिद्वयं च काकुत्स्थ ददामि तव राघव । कङ्कालं मुसलं घोरं कापालमथ किङ्किणीम् ॥१२॥
बधार्थं रक्षसां यानि ददाम्येतानि सर्वशः । वैद्याधरं महास्त्रं च नन्दनं नाम नामतः ॥१३॥
असिरत्नं महाबाहो ददामि नृवरात्मज । गान्धर्वमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः ॥१४॥
प्रस्वापनं प्रशमनं दद्मि सौम्यं च राघव । वर्षणं शोषणं चैव संतापनविलापने ॥१५॥
मादनं चैव दुर्धर्षं कन्दर्पदयितं तथा । गान्धर्वमस्त्रं दयितं मानवं नाम नामतः ॥१६॥
पैशाचमस्त्रं दयितं मोहनं नाम नामतः । प्रतीच्छ नरशार्दूल राजपुत्र महायशः ॥१७॥

नाम होगा, या एक तरहका चक्र होगा) ॥ ४ ॥ हे वीर, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र और अत्यन्त भयानक ऐन्द्रचक्र (इन्द्रका चक्र) देता हूँ (ये अस्त्रों के नाम हैं) ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ राघव, वज्र अस्त्र, शिवजीका (जिसके देवता शिव हैं) श्रेष्ठ शूल, ब्रह्मशिर नामक अस्त्र (ब्रह्मास्त्र उससे अलग है) तथा ऐषीक (एक तरहका बाण) भी देता हूँ । हे महाबाहो, सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्र भी मैं तुम्हें देता हूँ । तुमको दो गदाएँ भी देता हूँ जिनके नाम मोदकी और शिखरी हैं और जो बड़ी उज्ज्वल हैं ॥७॥ हे नरश्रेष्ठ राजपुत्र, कालपाश और धर्मपाश नामक अस्त्र भी मैं तुमको देता हूँ ॥८॥ हे रघुनन्दन, वरुणका पाश अस्त्र भी मैं तुमको देता हूँ, दो अशनी (एक तरहका वज्र) भी देता हूँ, एक शुष्क अशनी और दूसरी आर्द्र (भीगा) अशनी ॥ ९ ॥ शिव और नारायणके अस्त्र (जिन अस्त्रोंके देवता शिव और नारायण हैं) मैं तुमको देता हूँ । अग्निका प्रिय अस्त्र भी मैं तुमको देता हूं जिसका नाम शिखर है ॥ १० ॥ हे निष्पाप, वायव्य (वायुका) नामक मुख्य अस्त्र मैं तुमको देता हूँ, हयशिर नामक अस्त्र तथा क्रौञ्च अस्त्र भी देता हूं ॥११॥ हे काकुत्स्थ रामचन्द्र, मैं तुमको दो शक्ति भी देता हूं । कङ्काल, भयानक मुसल, कपाल और किंकिणी नामक (ये अस्त्र देवताओंके हैं) अस्त्र देता हूँ ॥१२॥ ये सब अस्त्र मैं तुमको राक्षसोंका वध करनेके लिए देता हूँ । विद्याधरोंका महास्त्र जिसका नाम नन्दन है देता हूँ ॥१३॥ वह तलवार भी हे महाबाहो राजपुत्र मैं तुमको देता हूँ और गन्धर्वोंका प्रिय मोहन नामक अस्त्र भी देता हूँ ॥ १४ ॥ हे राघव, प्रस्वापन और प्रशमन नामक दो मुलायम अस्त्र भी देता हूँ (मुलायम इसलिए कि इनसे किसीकी जान नहीं जाती) । वर्षण, शोषण, सन्तापन और विलापन अस्त्र भी देता हूँ (ये अस्त्रोंके गुण हैं नाम नहीं) ॥१५॥ कामदेवका मादन नामक अस्त्र जो दुर्धर्ष है (जो निवारित न हो सके) मैं तुमको देता हूँ, गन्धर्वोंका प्यारा मानव नामका अस्त्र भी देता हूँ ॥ १६ ॥ हे महायशस्वी नर-

तामसं नरशार्दूल सौमनं च महाबलम्। संवर्तं चैव दुर्धर्षं मौसलं च नृपात्मज ॥१८॥
सत्यमस्त्रं महाबाहो तथा मायामयं परम्। सौरं तेजःप्रभं नाम परतेजोपकर्षणम् ॥१९॥
सोमास्त्रं शिशिरं नाम त्वाष्ट्रमस्त्रं सुदारुणम्। दारुणं च भगस्यापि शीतेषुमथ मानवम् ॥२०॥
एतान्राम महाबाहो कामरूपान्महाबलान्। गृहाण परमोदारान्क्षिप्रमेव नृपात्मज ॥२१॥
स्थितस्तु प्राङ्मुखो भूत्वा शुचिर्मुनिवरस्तदा। ददौ रामाय सुप्रीतो मन्त्रग्राममनुत्तमम् ॥२२॥
सर्वसंग्रहणं येषां दैवतैरपि दुर्लभम्। तान्यस्त्राणि तदा विप्रो राघवाय न्यवेदयत् ॥२३॥
जपतस्तु मुनेस्तस्य विश्वामित्रस्य धीमतः। उपतस्थुर्महार्हाणि सर्वाण्यस्त्राणि राघवम् ॥२४॥
ऊचुश्च मुदिता रामं सर्वे प्राञ्जलयस्तदा। इमे च परमोदार किंकरास्तव राघव ॥२५॥
यद्यदिच्छसि भद्रं ते तत्सर्वं करवाम वै। ततो रामः प्रसन्नात्मा तैरित्युक्तो महाबलैः ॥२६॥
प्रतिगृह्य च काकुत्स्थः समालभ्य च पाणिना। मानसा मे भविष्यध्वमिति तान्यभ्यचोदयत् ॥२७॥
ततः प्रीतमना रामो विश्वामित्रं महामुनिम्। अभिवाद्य महातेजा गमनायोपचक्रमे ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥

श्रेष्ठ राजपुत्र, पिशाचोंका प्यारा मोहन नामक अस्त्र ग्रहण करो ॥ १७ ॥ हे राजपुत्र, तामस, महाबली सौमन, संवर्त और दुर्धर्ष मौसल नामक अस्त्र भी देता हूँ ॥ १८ ॥ हे महाबाहो, सत्य और मायामय अस्त्र मैं तुमको देता हूँ, सूर्यका तेजःप्रभ नामक अस्त्र भी देता हूँ, जो दूसरेके तेज (पराक्रम) को खींच लेता है ॥ १९ ॥ चन्द्रका शिशिर नामक अस्त्र और दारुणत्वाष्ट्र (विश्वकर्माका बनाया अस्त्र), भगदेवताका भयानक शीतेषु नामक और मानव अस्त्र ॥ २० ॥ हे महाबाहो राजपुत्र, इन अस्त्रोंको शीघ्र ग्रहण करो, ये कामरूपी हैं, इच्छानुसार रूप धरनेवाले हैं, बड़े बली हैं और मनोरथ पूरा करनेवाले हैं ॥ २१ ॥

इतना कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र पूर्व ओर मुँह करके बैठे और प्रसन्न होकर रामचन्द्रको अस्त्रोंके समस्त मन्त्र दिये ॥ २२ ॥ इन सब अस्त्रोंका संग्रह करना देवताओंके लिए भी कठिन है, ब्राह्मणने ये ही अस्त्र रामचन्द्रको दे दिये ॥ २३ ॥ बुद्धिमान विश्वामित्र मुनिके जप करते ही वे सब अस्त्र रामचन्द्रके पास आ गये अर्थात् रामचन्द्रने उन अस्त्रोंके चलानेकी विद्या सीख ली ॥ २४ ॥ वे सब अस्त्र (अस्त्रोंके स्वामी देवता) हाथ जोड़कर बोले —हे परमोदार रामचन्द्र, हम सब लोग आपके दास हैं ॥ २५ ॥ आप जो चाहें (आज्ञा करें) वह सब हमलोग करें। उन बलवान अस्त्रोंकी यह बात सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ रामचन्द्रने इन अस्त्रोंको हाथसे छुआ, और उनसे कहा कि आपलोग सदा मेरे मानस बने रहें, आप सदा स्मरण रहें ॥२७॥ तदनन्तर रामचन्द्रने महामुनि विश्वामित्रको प्रणाम किया और वे महातेजस्वी आगे जानेके लिए तयार हुए ॥ २८ ॥

आदि काव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सत्ताईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः २८

प्रतिगृह्य ततोऽस्त्राणि प्रहृष्टवदनः शुचिः । गच्छन्नेव च काकुत्स्थो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
गृहीतास्त्रोऽस्मि भगवन्दुराधर्षः सुरैरपि । अस्त्राणां त्वहमिच्छामि संहारान्मुनिपुंगव ॥ २ ॥
एवं ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रो महातपाः । संहारान्व्याजहाराथ धृतिमान्सुव्रतः शुचिः ॥ ३ ॥
सत्यवन्तं सत्यकीर्तिं धृष्टं रभसमेव च । प्रतिहारतरं नाम पराङ्मुखमवाङ्मुखम् ॥ ४ ॥
लक्ष्यालक्ष्याविमौ चैव दृढनाभसुनाभकौ । दशाक्षशतवक्त्रौ च दशशीर्षशतोदरौ ॥ ५ ॥
पद्मनाभमहानाभौ दुन्दुनाभस्वनाभकौ । ज्योतिषं शकुनं चैव नैरास्यविमलावुभौ ॥ ६ ॥
यौगंधरविनिद्रौ च दैत्यप्रमथनौ तथा । शुचिबाहुर्महाबाहुर्निष्कलिर्विरुचस्तथा ।
सार्चिमाली धृतिमाली वृत्तिमान्रुचिरस्तथा ॥ ७ ॥
पित्र्यः सौमनसश्चैव विधूतमकरावुभौ । परवीरं रतिं चैव धनधान्यौ च राघव ॥ ८ ॥
कामरूपं कामरुचिं मोहमावरणं तथा । जृम्भकं सर्पनाथं च पन्थानवरुणौ तथा ॥ ९ ॥
कृशाश्वतनयान्राम भास्वरान्कामरूपिणः । प्रतीच्छ मम भद्रं ते पात्रभूतोऽसि राघव ॥१०॥
बाढमित्येव काकुत्स्थः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । दिव्यभास्वरदेहाश्च मूर्तिमन्तः सुखप्रदाः ॥११॥
केचिदङ्गारसदृशाः केचिद्धूमोपमास्तथा । चन्द्रार्कसदृशाः केचित्प्रह्वाञ्जलिपुटास्तथा ॥१२॥
रामं प्राञ्जलयो भूत्वा ब्रुवन्मधुरभाषिणः । इमे स्म नरशार्दूल शाधि किं करवाम ते ॥१३॥

रामचन्द्र उन अस्त्रोंको पाकर बहुत प्रसन्न हुए, वे चलते-चलते ही विश्वामित्रसे बोले ॥१॥ महाराज, मैंने अस्त्र-विद्या सीखली, अब मैं देवताओंके लिए भी अजेय होगया हूँ । मुनिश्रेष्ठ मैं अस्त्रोंका संहार (चलाये बाणोंको लौटा लेना) भी सीखना चाहता हूँ ॥ २ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर महातपस्वी बड़े धीर, दृढव्रत और पवित्र विश्वामित्रने रामचन्द्रको नीचे लिखे नामवाले अस्त्रोंके संहार दिये ॥ ३ ॥ उन्होंने इन नामोंके संहार-मन्त्र बतलाये । सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, पराङ्मुख, अवाङ्मुख, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृढनाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, ॥ ५ ॥ पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, विमल और नैराश्य, ॥ ६ ॥ दैत्य प्रमाथी, यौगन्धर और विनिद्र, शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कलि, विरुच, सार्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान् और रुचिर ॥ ७ ॥ पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर, रति, धनधान्य ॥ ८ ॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्था और वरुण ॥ ९ ॥ हे रामचन्द्र ये कृशाश्व महर्षिके पुत्र हैं, तेजोमय और कामरूपी हैं तुम मुझसे इन सबका मन्त्र लेलो, क्योंकि तुम इसके पात्र हो, योग्य हो ॥ १० ॥

रामचन्द्रने प्रसन्न मनसे विश्वामित्रकी आज्ञा स्वीकार की । उन अस्त्रोंका शरीर अलौकिक तेजोमय था, वे शरीरधारी और सुखदायी थे ॥ ११ ॥ उन अस्त्रोंमेंसे कोई अंगारके समान था और कोई धूँआके समान, कई चन्द्रमा और सूर्यके समान थे, कई विनयसे हाथ जोड़े हुए थे ॥ १२ ॥ वे सब अपना हाथ जोड़कर मधुर स्वरमें रामचन्द्रसे बोले—हे नरश्रेष्ठ, हमलोग आये हैं, आपके

गम्यतामिति तानाह यथेष्टं रघुनन्दनः। मानसाः कार्यकालेषु साहाय्यं मे करिष्यथ ॥१४॥
अथ ते राममामन्त्र्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्। एवमस्त्विति काकुत्स्थमुक्त्वा जग्मुर्यथागतम् ॥१५॥
स च तान्राघवो ज्ञात्वा विश्वामित्रं महामुनिम्। गच्छन्नेवाथ मधुरं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥१६॥
किमेतन्मेघसंकाशं पर्वतस्याविदूरतः। वृक्षखण्डमितो भाति परं कौतूहलं हि मे ॥१७॥
दर्शनीयं मृगाकीर्णं मनोहरमतीव च। नानाप्रकारैः शकुनैर्वल्गुभाषैरलंकृतम् ॥१८॥
निःसृताः स्म मुनिश्रेष्ठ कान्तारात्रोमहर्षणात्। अनया त्ववगच्छामि देशस्य सुखवत्तया ॥१९॥
सर्वं मे शंस भगवन्कस्याश्रमपदं त्विदम्। संप्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्मघ्ना दुष्टचारिणः ॥२०॥
तव यज्ञस्य विघ्नाय दुरात्मानो महामुने। भगवंस्तस्य को देशः सा यत्र तव याज्ञिकी ॥२१॥
रक्षितव्या क्रिया ब्रह्मन्मयावध्याश्च राक्षसाः। एतत्सर्वं मुनिश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः २९

अथ तस्याप्रमेयस्य वचनं परिपृच्छतः। विश्वामित्रो महातेजा व्याख्यातुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
इह राम महाबाहो विष्णुर्देवनमस्कृतः। वर्षाणि सुबहूनीह तथा युगशतानि च ॥ २ ॥

लिए क्या करें ॥ १३ ॥ रामचन्द्रने उन अस्त्रोंसे कहा, तुम लोग अपनी इच्छाके अनुसार जाओ, पर मेरे मनमें सदा स्थित रहो, हम तुमलोगोंको भूल न जांय और समय पड़नेपर हमारी सहायता करो ॥ १४ ॥

तदनन्तर रामचन्द्रसे पूछकर उनकी प्रदक्षिणा कर और आपकी आज्ञा शिरोधार्य है-ऐसा रामचन्द्रसे कह वे सब अपने-अपने स्थानको गये ॥१५॥ रामचन्द्रने इन अस्त्रोंको जान लिया, पुनः वे चलते-चलते ही मधुर और प्रिय वचन मुनि विश्वामित्रसे बोले ॥ १६ ॥ महाराज, पर्वतके पास ही मेघके समान काला और सघन जो दीख पड़ता है वह क्या है, क्या वृक्ष हैं? इसको जाननेकी मेरी बड़ी उत्कण्ठा है ॥ १७ ॥ वह स्थान दर्शनीय मालूम होता है क्योंकि पशुओंसे यह स्थान भरा है, मधुर बोलनेवाले पक्षी मधुर बोल रहे हैं, इससे यह स्थान बड़ा ही रमणीय मालूम होता है, ॥ १८ ॥ महाराज, भयानक वनसे हमलोग निकल आये, ताड़कावन खतम हुआ, यह बात इस देशके सुखी होनेसे मालूम होती है ॥ १९ ॥ महाराज, आप सब बातें मुझसे कहें, यह देखिए आश्रम मालूम पड़ता है, यह किसका है? ब्रह्मघ्न दुष्ट पापी जहाँ एकत्र हैं, ॥ २० ॥ आपके यज्ञमें विघ्न करनेके लिए राक्षस जहाँ एकट्ठे हैं, वह आपकी यज्ञभूमि कहाँ है ॥ २१ ॥ जहाँ मैं आपके यज्ञकी रक्षा करूँगा और राक्षसोंको मारूँगा वह स्थान कहाँ है, हे मुनिश्रेष्ठ मैं इन सबको जानना चाहता हूँ ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अट्ठाईसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २८ ॥

रामचन्द्रके ऐसा पूछनेपर महातेजस्वी विश्वामित्र कहने लगे ॥ १ ॥ हे महाबाहो राम,

तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहातपाः । एष पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
सिद्धाश्रम इति ख्यातः सिद्धो ह्यत्र महातपाः । एतस्मिन्नेव काले तु राजा वैरोचनिर्बलिः ॥ ४ ॥
निर्जित्य दैवतगणान्सेन्द्रान्सहमरुद्गणान् । कारयामास तद्राज्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ ५ ॥
यज्ञं चकार सुमहानसुरेन्द्रो महाबलः । बलेस्तु यजमानस्य देवा साग्निपुरोगमाः
समागम्य स्वयं चैव विष्णुमूचुरिहाश्रमे ॥ ६ ॥
बलिर्वैरोचनिर्विष्णो यजते यज्ञमुत्तमम् । असमाप्तव्रते तस्मिन्स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥ ७ ॥
ये चैनमभिवर्तन्ते याचितार इतस्ततः । यच्च यत्र यथावच्च सर्वं तेभ्यः प्रयच्छति ॥ ८ ॥
स त्वं सुरहितार्थाय मायायोगमुपाश्रितः । वामनत्वं गतो विष्णो कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ ९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राम कश्यपोऽग्निसमप्रभः । अदित्या सहितो राम दीप्तमान इवौजसा ॥१०॥
देवीसहायो भगवान्दिव्यं वर्षसहस्रकम् । व्रतं समाप्य वरदं तुष्टाव मधुसूदनम् ॥११॥
तपोमयं तपोराशिं तपोमूर्तिं तपात्मकम् । तपसा त्वां सुतप्तेन पश्यामि पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
शरीरे तव पश्यामि जगत्सर्वमिदं प्रभो । त्वमनादिरनिर्देश्यस्त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥
तमुवाच हरिः प्रीतः कश्यपं धूतकल्मषम् । वरं वरय भद्रं ते वरार्होऽसि मतो मम ॥१४॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मारीचः कश्यपोऽब्रवीत् । आदित्या देवतानां च मम चैवानुयाचितम् ॥१५॥

देवताओंके पूजित महातपस्वी विष्णुने, बहुत वर्षों तक सैकड़ों युगों तक ॥२॥ तपस्या करनेके लिए यहाँ निवास किया । हे रामचन्द्र, यह महात्मा वामनका पूर्वाश्रम है ॥ ३ ॥ यह सिद्धाश्रम कहा जाता है, महातपस्वी विष्णु यहीं सिद्ध हुए थे । इसी समयमें विरोचनका पुत्र बलि नामक दैत्यराज ॥ ४ ॥ देवताओं, गणों और मरुतोंको जीतकर उनका राज्य स्वयं कर रहा था, और त्रिलोकमें प्रसिद्ध था ॥ ५ ॥ दैत्यराजने एक यज्ञ करना प्रारंभ किया । इस आश्रममें जब राजा बलि यज्ञ करने लगे उस समय अग्नि आदि देवता विष्णुके पास आये और बोले ॥ ६ ॥ विष्णो, विरोचनका पुत्र बलि यज्ञ कर रहा है, जब तक उसका यज्ञ समाप्त न हो तभी तक अपना काम बना लेना चाहिए ॥ ७ ॥ जो कोई याचक होकर जाता है और जो कुछ, जितना जैसा माँगता है वैसा ही वह याचकको दे देता है ॥ ८ ॥ अतः हे विष्णो, देवताओंके कल्याणके लिए तुम मायाद्वारा वामन रूप धारण करो, इससे देवताओंका बड़ा कल्याण होगा ॥ ९ ॥ इसी समय अग्निके समान तेजस्वी कश्यप मुनि अपनी स्त्री अदितिके साथ आये ॥ १० ॥ वे महर्षि अपनी धर्मपत्नीके साथ दिव्य हजारों वर्षका व्रत समाप्त कर वरदेनेवाले मधुसूदनकी स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ तपोमय, तपोराशि, तपोमूर्ति और तपःस्वरूप आपको मैं कठिन तपस्याके द्वारा देख रहा हूँ ॥ १२ ॥ प्रभो, आपके शरीरमें यह समस्त जगत मैं देख रहा हूँ, आप अनादि हैं, अनिर्देश्य (जिसके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ कहा न जा सके) हैं । मैं आपकी शरण हूँ ॥ १३ ॥ प्रसन्न होकर भगवानने निष्पाप कश्यपसे कहा-वर माँगिए, आप मुझसे वर पानेके योग्य हैं ॥ १४ ॥ भगवानके ये वचन सुनकर मरीचि मुनिके पुत्र कश्यप मुनि

वरं वरद सुप्रीतो दातुमर्हसि सुव्रत । पुत्रत्वं गच्छ भगवन्नदित्या मम चानघ ॥१६॥
भ्राता भव यवीयांस्त्वं शक्रस्यासुरसूदन । शोकार्तानां तु देवानां साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥१७॥
अयं सिद्धाश्रमो नाम प्रसादात्ते भविष्यति । सिद्धे कर्मणि देवेश उत्तिष्ठ भगवन्नितः ॥१८॥
अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत । वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥१९॥
त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् । आक्रम्य लोकांल्लोकार्थी सर्वलोकहिते रतः ॥२०॥
महेन्द्राय पुनः प्रादान्नियम्य बलिमोजसा । त्रैलोक्यं स महातेजाश्चक्रे शक्रवशं पुनः ॥२१॥
तेनैव पूर्वमाक्रान्त आश्रमः श्रमनाशनः । मयापि भक्त्या तस्यैव वामनस्योपभुज्यते ॥२२॥
एनमाश्रममायान्ति राक्षसा विघ्नकारिणः । अत्र ते पुरुषव्याघ्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥२३॥
अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् । तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद्यथा मम ॥२४॥
इत्युक्त्वा परमप्रीतो गृह्य रामं सलक्ष्मणम् । प्रविशन्नाश्रमपदं व्यरोचत महामुनिः ।
शशीव गतनीहारः पुनर्वसुसमन्वितः ॥२५॥
तं दृष्ट्वा मुनयः सर्वे सिद्धाश्रमनिवासिनः । उत्पत्योत्पत्य सहसा विश्वामित्रमपूजयन् ॥२६॥
यथार्हं चक्रिरे पूजां विश्वामित्राय धीमते । तथैव राजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम् ॥२७॥
मुहूर्तमथ विश्रान्तौ राजपुत्रावरिंदमौ । प्राञ्जली मुनिशार्दूलमूचतू रघुनन्दनौ ॥२८॥

बोले, अदिति, देवता तथा मेरी भी यही प्रार्थना है ॥ १५ ॥ हे सुव्रत, आप प्रसन्न होकर वही वर दें । हे निष्पाप, अदिति और मेरे तुम पुत्र हो-यही वर है ॥ १६ ॥ हे शत्रुसूदन, तुम इन्द्रके छोटे भाई बनो, और दुःखी देवताओंकी सहायता करो ॥ १७ ॥ तुम्हारी कृपासे यह स्थान सिद्धाश्रम हो जायगा, यहीं तुम्हारी तपस्याकी सिद्धि होगी, तुम यहाँ से उठो ॥ १८ ॥

विष्णुने अदितिके गर्भसे वामन रूपमें जन्म लिया था, वे वामन रूपसे बलिके यज्ञमें गये ॥ १९ ॥ तीन पैर भर उन्होंने भूमि माँगी और पैर फैला दिये तीनों लोकोंमें । सर्वलोकहितकारी भगवान सब लोकोंपर देवताओंका अधिकार चाहते थे ॥ २० ॥ इस प्रकार बलिको अपने तेजके द्वारा परास्त करके उसका राज्य इन्द्रको उन्होंने दे दिया । तीनों लोकोंपर इन्द्रका अधिकार हो गया । शान्तिदायी इस आश्रममें उन्हीं वामनने ही निवास किया था और मैं भी उनके प्रति अपनी भक्तिके कारण यहीं रहता हूँ ॥ २२ ॥ इस आश्रममें विघ्न करनेवाले राक्षस आया करते हैं, उन दुष्टात्माओंका वध होना चाहिए ॥ २३ ॥ हे रामचन्द्र, तो हमलोग आज उस श्रेष्ठ सिद्धाश्रममें ही चलें । यह आश्रम जैसा मेरे लिए है वैसा ही तुम्हारे लिए भी ॥ २४ ॥ अत्यन्त प्रसन्न होकर महामुनि विश्वामित्र राम और लक्ष्मणको लेकर आश्रममें गये, उस समय मेघमुक्त पुनर्वसु (इस नामके दो नक्षत्र) से युक्त चन्द्रमाके समान वे शोभित हुए ॥२५॥ विश्वामित्रको देखकर सिद्धाश्रममें रहनेवाले मुनि आ-आकर उनकी पूजा करने लगे ॥२६॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रकी उन लोगोंने यथायोग्य पूजा की और उसी प्रकार राम और लक्ष्मणका अतिथि-सत्कार किया ॥२७॥ राम और लक्ष्मणने थोड़ी देर विश्राम किया, पुनः वे हाथ जोड़कर

अद्यैव दीक्षां प्रविश भद्रं ते मुनिपुंगव । सिद्धाश्रमोऽयं सिद्धः स्यात्सत्यमस्तु वचस्तव॥२९॥
एवमुक्तो महातेजा विश्वामित्रो महानृषिः । प्रविवेश तदा दीक्षां नियतो नियतेन्द्रियः ॥३०॥
कुमारावपि तां रात्रिमुषित्वा सुसमाहितौ । प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वां संध्यामुपास्य च ॥३१॥
प्रशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च । हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ३०

अथ तौ देशकालज्ञौ राजपुत्रावरिंदमौ । देशे काले च वाक्यज्ञावब्रूतां कौशिकं वचः ॥ १ ॥
भगवञ्छ्रोतुमिच्छावो यस्मिन्काले निशाचरौ । संरक्षणीयौ तौ ब्रूहि नातिवर्तेत तत्क्षणम् ॥ २ ॥
एवं ब्रुवाणौ काकुत्स्थौ त्वरमाणौ युयुत्सया । सर्वे ते मुनयः प्रीताः प्रशशंसुर्नृपात्मजौ ॥ ३ ॥
अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतां राघवौ युवाम् । दीक्षां गतो ह्येष मुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति ॥ ४ ॥
तौ तु तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ । अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम् ॥ ५ ॥
उपासांचक्रतुर्वीरौ यत्तौ परमधन्विनौ । ररक्षतुर्मुनिवरं विश्वामित्रमरिंदमम् ॥ ६ ॥

मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे बोले ॥२८॥ हे मुनिश्रेष्ठ, आप आज ही यज्ञकी दीक्षा लें, आपका मंगल हो, यह सिद्धाश्रम है यहाँ सब काम ठीक होता है—यह आपका वचन सत्य हो ॥२९॥ रामचन्द्रकी इस बातके सुनते ही महातेजस्वी जितेन्द्रिय नियमपरायण विश्वामित्रने उसी समय दीक्षा ली, यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ ३० ॥ स्कन्द और विशाखके समान उन राजकुमारोंने, सावधानीसे वहीं रात वितायी, प्रातःकाल उठकर सन्ध्योपासन किया ॥ ३१ ॥ नियमपूर्वक परम पवित्र गायत्रीका, जप समाप्त करके उन लोगोंने विश्वामित्रको प्रणाम किया, विश्वामित्र अग्निहोत्र करके बैठे थे, उन दोनों भाइयोंने मुनिको प्रणाम किया ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ २९ ॥

देशकालके उचित कर्तव्य जाननेवाले, शत्रुओंका संहार करनेवाले, और देशकालोचित वचन बोलनेवाले राम और लक्ष्मण दोनों राजपुत्र, कौशिक विश्वामित्रसे बोले ॥ १ ॥ महाराज, हमलोग यह जानना चाहते हैं कि किस समय आपके यज्ञकी रक्षा उन राक्षसोंसे करनी होगी, कहीं ऐसा न हो कि वह समय ही बीत जाय, राक्षस आपके यज्ञका विघ्न कर जायँ और हमलोगोंको मालूम ही न हो ॥ २ ॥ इसप्रकार उन दोनों राजपुत्रोंको बोलते और युद्धके लिए शीघ्रता करते देखकर उस आश्रमके मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उनलोगोंने राजपुत्रोंकी प्रशंसा की ॥ ३ ॥ मुनियोंने कहा—आजसे लेकर छ राततक आपलोग यज्ञकी रक्षा करें, इन विश्वामित्र मुनिने यज्ञके लिए दीक्षा ली है और छ रात तक वे न बोलेंगे ॥ ४ ॥ यशस्वी उन दोनों राजपुत्रोंने मुनियों के वचन सुनकर बिना सोये छ दिन-रात उस तपोवनकी रक्षा की ॥ ५ ॥ परम धनुर्धारी दोनों वीर, राम और लक्ष्मण, मुनिके पास बैठे और इस प्रकार उनलोगोंने मुनिवर की

अथ काले गते तस्मिन्षष्ठेऽहनि तथागते। सौमित्रिमब्रवीद्रामो यत्तो भव समाहितः॥ ७॥
रामस्यैवं ब्रुवाणस्य त्वरितस्य युयुत्सया। प्रजज्वाल ततो वेदिः सोपाध्यायपुरोहिता॥ ८॥
सदर्भचमसस्रुक्का ससमित्कुसुमोच्चया। विश्वामित्रेण सहिता वेदिर्जज्वाल सर्त्विजा॥ ९॥
मन्त्रवच्च यथान्यायं यज्ञोऽसौ संप्रवर्तते। आकाशे च महाञ्छब्दः प्रादुरासीद्भयानकः॥१०॥
आवार्य गगनं मेघो यथा प्रावृषि दृश्यते। तथा मायां विकुर्वाणौ राक्षसावभ्यधावताम्॥११॥
मारीचश्च सुबाहुश्च तयोरनुचरास्तथा। आगम्य भीमसंकाशा रुधिरौघानवासृजन्॥१२॥
तां तेन रुधिरौघेण वेदीं वीक्ष्य समुक्षिताम्। सहसाभिद्रुतो रामस्तानपश्यत्ततो दिवि॥१३॥
तावापतन्तौ सहसा दृष्ट्वा राजीवलोचनः। लक्ष्मणं त्वभिसंप्रेक्ष्य रामो वचनमब्रवीत्॥१४॥
पश्य लक्ष्मण दुर्वृत्तान्राक्षसान्पिशिताशनान्। मानवास्त्रसमाधूताननिलेन यथा घनान्॥१५॥
करिष्यामि न संदेहो नोत्सहे हन्तुमीदृशान्। इत्युक्त्वा वचनं रामश्चापे संधाय वेगवान्॥१६॥
मानवं परमोदारमस्त्रं परमभास्वरम्। चिक्षेप परमक्रुद्धो मारीचोरसि राघवः॥१७॥
स तेन परमास्त्रेण मानवेन समाहतः। संपूर्णं योजनशतं क्षिप्तः सागरसंप्लवे॥१८॥
विचेतनं विघूर्णन्तं शीतेषुबलपीडितम्। निरस्तं दृश्य मारीचं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥१९॥
पश्य लक्ष्मण शीतेषु मानवं मनुसंहितम्। मोहयित्वा नयत्येनं न च प्राणैर्वियुज्यते॥२०॥

रक्षा की॥ ६॥ कुछ दिन बीतनेपर—छठवें दिनके आनेपर—रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि सावधान हो जाओ और तयार हो जाओ॥७॥ राम ऐसा कह ही रहे थे और युद्धके लिए शीघ्रता कर रहे थे, उसी समय उपाध्याय और पुरोहितके साथ वेदी प्रदीप्त हो उठी॥८॥ कुश, चमस, स्रुवा, समिध, पुष्प (यज्ञकी सामग्रीके ये नाम हैं) तथा विश्वामित्र और ऋत्विक्के साथ वेदी प्रदीप्त हो उठी॥९॥ मन्त्रोंके द्वारा, शास्त्रीय विधानके अनुसार यज्ञ हो रहा था, उसी समय आकाशमें बड़ा भयानक शब्द हुआ॥ १०॥ वर्षाऋतुमें मेघोंसे आकाश जिस प्रकार ढँक जाता है उसी प्रकार वे राक्षस अनेक प्रकारकी माया करते हुए दौड़े॥११॥ मारीच, सुबाहु तथा उन दोनोंके अनुयायी आकर रुधिरकी धारा बरसाने लगे॥१२॥ उस रुधिरकी धारासे वेदी भींगी देखकर रामचन्द्र शीघ्रता पूर्वक दौड़े और उन राक्षसोंको उन्होंने आकाशमें देखा॥ १३॥ वे शीघ्रतापूर्वक दौड़े आ रहे हैं यह देखकर, कमलनयन राम लक्ष्मणकी ओर देखकर यह वचन बोले॥१४॥ लक्ष्मण! मांस खानेवाले इन पापी राक्षसोंको देखो। इनको मानवास्त्रसे मैं उड़ा दूँगा, जिस प्रकार वायु मेघको उड़ा देता है॥ १५॥ इसमें सन्देह नहीं, पर ऐसे दुर्बलोंको मैं मारना नहीं चाहता; ऐसा कहकर रामचन्द्रने शीघ्रतापूर्वक धनुषपर बाण चढ़ाया॥ १६॥ बहुतही चमकीला, इच्छित काम करनेवाला, मानव अस्त्र रामचन्द्रने बड़े क्रोधसे मारीचकी छातीमें मारा॥ १७॥ उस उत्तम मानव अस्त्रसे मारे जानेपर वह समुद्रके बीचमें-सौ योजनपर-चला गया॥ १८॥ शीतेषु नामक अस्त्रके लगनेसे मारीच बेहोश हो गया और घूमने लगा। मारीच हटगया, यह देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा॥ १९॥ लक्ष्मण! देखो, मनुके द्वारा निर्मित, यह शीतेषु नामक मानवास्त्र इसको बेहोश

इमानपि वधिष्यामि निर्घृणान्दुष्टचारिणः । राक्षसान्पापकर्मस्थान्यज्ञघ्नान्रुधिराशनान् ॥२१॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं चाशु लाघवं दर्शयन्निव । विगृह्य सुमहच्चास्त्रमाग्नेयं रघुनन्दनः ॥२२॥
सुबाहूरसि चिक्षेप स विद्धः प्रापतद्भुवि । शेषान्वायव्यमादाय निजघान महायशाः ।
राघवः परमोदारो मुनीनां मुदमावहन् ॥ २३ ॥
स हत्वा राक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान्रघुनन्दनः । ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥२४॥
अथ यज्ञे समाप्ते तु विश्वामित्रो महामुनिः । निरीतिका दिशो दृष्ट्वा काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥२५॥
कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया । सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः ।
स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां संध्यामुपागमत् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ३१

अथ तां रजनीं तत्र कृतार्थौ रामलक्ष्मणौ । ऊषतुर्मुदितौ वीरौ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १ ॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ । विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्सहितावभिजग्मतुः ॥ २ ॥
अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम् । ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ ॥ ३ ॥
इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपागतौ । आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव किम् ॥ ४ ॥

करके ले जा रहा है पर यह मरेगा नहीं ॥ २० ॥ इन क्रूर, दुष्ट राक्षसोंको भी मैं मारूँगा । ये पाप किया करते हैं, यज्ञमें विघ्न डाला करते हैं और रुधिर पीया करते हैं ॥२१॥ ऐसा कहकर और बाण चलानेमें अपने हाथकी शीघ्रता दिखलाते हुए, क्रोध करके बड़ा भारी आग्नेय अस्त्र ॥ २२ ॥ रामचन्द्रने सुबाहुकी छातीमें मारा । वह उससे घायल हुआ और भूमिमें गिर पड़ा । बचे हुए अन्य राक्षसों को महायशस्वी रामचन्द्रने वायव्य अस्त्रसे मारा । उदार रामचन्द्रने अपने इस कृत्यसे मुनियोंको बहुत प्रसन्न किया ॥ २३ ॥ यज्ञ नष्ट करनेवाले समस्त राक्षसोंको रामचन्द्रने मारा । ऋषियोंने उनकी पूजा की, जिस प्रकार पहले-असुर-विजय होनेपर-इन्द्रकी की गयी थी ॥ २४ ॥ यज्ञ पूरा होनेपर महामुनि विश्वामित्रने, दिशाओंको बाधा-विघ्नसे रहित देखकर रामचन्द्रसे यह कहा ॥ २५ ॥ महाबाहो ! मैं आज कृतार्थ हुआ । तुमने आज गुरुकी आज्ञाका पालन किया ! हे वीर ! सत्य-सत्य तुमने इसको सिद्धाश्रम बनाया । मुनि, रामचन्द्रकी इस तरह प्रशंसा कर, उन दोनोंको साथ ले संध्या करने गये ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३० ॥

मुनिके यज्ञकी रक्षा करनेके कारण रामचन्द्र और लक्ष्मण दोनों वीरोंने प्रसन्न चित्तसे उस रातमें वहीं निवास किया ॥१॥ रात बीतनेपर प्रातःकालके कृत्य-संध्या आदि समाप्त करके वे दोनों अन्य ऋषियोंके साथ विश्वामित्रके पास गये ॥ २ ॥ मुनिश्रेष्ठ अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे, उनको प्रणाम करके मधुरभाषी राम और लक्ष्मण बोले ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, हमलोग आपके

एवमुक्ते तयोर्वाक्ये सर्व एव महर्षयः । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य रामं वचनमब्रुवन् ॥ ५ ॥
मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति । यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्र यास्यामहे वयम् ॥ ६ ॥
त्वं चैव नरशार्दूल सहास्माभिर्गमिष्यसि । अद्भुतं च धनूरत्नं तत्र त्वं द्रष्टुमर्हसि ॥ ७ ॥
तद्धि पूर्वं नरश्रेष्ठ दत्तं सदसि दैवतैः । अप्रमेयबलं घोरं मखे परमभास्वरम् ॥ ८ ॥
नास्य देवा न गन्धर्वा नासुरा न च राक्षसाः । कर्तुमारोपणं शक्ता न कथंचन मानुषाः ॥ ९ ॥
धनुषस्तस्य वीर्यं हि जिज्ञासन्तो महीक्षितः । न शेकुरारोपयितुं राजपुत्रा महाबलाः ॥ १० ॥
तद्धनुर्नरशार्दूल मैथिलस्य महात्मनः । तत्र द्रक्ष्यसि काकुत्स्थ यज्ञं च परमाद्भुतम् ॥ ११ ॥
तद्धि यज्ञफलं तेन मैथिलेनोत्तमं धनुः । याचितं नरशार्दूल सुनाभं सर्वदैवतैः ॥ १२ ॥
आयागभूतं नृपतेस्तस्य वेश्मनि राघव । अर्चितं विविधैर्गन्धैर्धूपैश्चागुरुगन्धिभिः ॥ १३ ॥
एवमुक्त्वा मुनिवरः प्रस्थानमकरोत्तदा । सर्षिसङ्घः सकाकुत्स्थ आमन्त्र्य वनदेवताः ॥ १४ ॥
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि सिद्धः सिद्धाश्रमादहम् । उत्तरे जाह्नवीतीरे हिमवन्तं शिलोच्चयम् ॥ १५ ॥
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कौशिकः स तपोधनः । उत्तरां दिशमुद्दिश्य प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥
तं व्रजन्तं मुनिवरमन्वगादनुसारिणाम् । शकटीशतमात्रं तु प्रयाणे ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७ ॥

दास हैं, आपकी सेवामें आये हैं, आज्ञा दीजिए, किस आज्ञाका हमलोग पालन करें ? ॥ ४ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहनेपर आश्रमके सब महर्षि विश्वामित्रको आगे करके बोले अर्थात् उनके द्वारा बोले ॥ ५ ॥

हे नरश्रेष्ठ, मिथिलाके राजा जनकका शुद्ध धार्मिक यज्ञ हो रहा है, हमलोग वहाँ जायँगे ॥६॥ हे नरश्रेष्ठ, हमलोगोंके साथ तुम भी वहाँ चलोगे। वह धनुष बड़ाही अपूर्व है, उसे तुम देखना ॥७॥ वह धनुष देवताओंने यज्ञमें जनकके किसी पूर्व पुरुषको दिया था, उसमें बड़ा बल है वह बड़ाही घोर और चमकीला है ॥ ८ ॥ इस धनुषपर प्रत्यंचा देवता, गंधर्व, असुर, राक्षस आदि कोई भी नहीं चढ़ा सकता, मनुष्य तो किसी प्रकार भी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सकता है ॥९॥ उस धनुषके बलका पता लगाते हुए राजा और महाबली राजपुत्र उसकी प्रत्यंचा नहीं चढ़ा सके ॥ १० ॥ वह धनुष मिथिलाके राजा महात्मा जनकका है, तुम उस धनुषको देखोगे और विलक्षण वह यज्ञ भी देखोगे ॥ ११ ॥ उस उत्तम धनुषको मिथिलाके राजाने यज्ञ-समाप्तिके समय, यज्ञके फलमें माँगा । उस सुनाभ (जिसके बीचका स्थान अच्छा बँधा हुआ हो) धनुषको सब देवताओंने प्रसन्न होकर दिया ॥ १२ ॥ हे रामचन्द्र, उस राजा जनकके घरमें अनेक प्रकारके गन्ध, धूप, अगरु आदिसे पूजित वह धनुष, यज्ञस्थानमें ही रक्खा हुआ है ॥ १३ ॥ इतना कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने ऋषियों और राम, लक्ष्मणके साथ, वन-देवताओंसे आज्ञा लेकर प्रस्थान किया ॥ १४ ॥ वहाँसे चलनेके समय, उन्होंने वनदेवताओंसे कहा—तुम लोगोंका कल्याण हो ॥ मैं सिद्ध होकर, (यज्ञ समाप्त कर) इस सिद्धाश्रमसे जा रहा हूँ । गंगाके उत्तर तीर, हिमवान पर्वतकी ओर मैं जाऊँगा ॥ १५ ॥ तपोधन मुनिश्रेष्ठ कौशिकने ऐसा कहकर उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥१६॥ मुनिके साथ चलनेवाले अन्य महर्षियोंकी सैकड़ों गाड़ियाँ भी

मृगपक्षिगणाश्चैव सिद्धाश्रमनिवासिनः । अनुजग्मुर्महात्मानो विश्वामित्रं तपोधनम् ॥१८॥
निवर्तयामास ततः सर्षिसङ्घः स पक्षिणः । ते गत्वा दूरमध्वानं लम्बमाने दिवाकरे ॥१९॥
वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणाकूले समाहिताः । तेऽस्तं गते दिनकरे स्नात्वा हुतहुताशनाः ॥२०॥
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य निषेदुरमितौजसः । रामोऽपि सहसौमित्रिर्मुनींस्तानभिपूज्य च ॥२१॥
अग्रतो निषसादाथ विश्वामित्रस्य धीमतः । अथ रामो महातेजा विश्वामित्रं तपोधनम् ॥२२॥
पप्रच्छ मुनिशार्दूलं कौतूहलसमन्वितम् । भगवन्को न्वयं देशः समृद्धवनशोभितः ॥२३॥
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते वक्तुमर्हसि तत्त्वतः । चोदितो रामवाक्येन कथयामास सुव्रतः ।
तस्य देशस्य निखिलमृषिमध्ये महातपाः ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ३२

ब्रह्मयोनिर्महानासीत्कुशो नाम महातपाः । अक्लिष्टव्रतधर्मज्ञः सज्जनप्रतिपूजकः ॥ १ ॥
स महात्मा कुलीनायां युक्तायां सुमहाबलान् । वैदर्भ्यां जनयामास चतुरः सदृशान्सुतान् ॥ २ ॥
कुशाम्बं कुशनाभं च असूर्तरजसं वसुम् । दीप्तियुक्तान्महोत्साहान्क्षत्रधर्मचिकीर्षया ॥ ३ ॥

पीछे पीछे चलीं ॥ १७ ॥ सिद्धाश्रमके रहनेवाले पशु, पक्षी आदिने भी जाते हुए तपोधन विश्वामित्रका अनुगमन किया अर्थात् वे भी उनके पीछे पीछे चले ॥ १८ ॥ कुछ दूर आनेपर मुनिने पशुपक्षियोंको लौट जानेके लिए कहा । अन्य महर्षियोंने भी उनको लौटनेको कहा । इस प्रकार वे बहुत दूर चले गये । होते होते सूर्य अस्ताचलपर गये ॥ १९ ॥ उस समय शोणनदके तीरपर उन महर्षियोंने सावधान होकर निवास किया । सूर्यके अस्त होजानेपर, स्नान करके उन लोगोंने अग्निहोत्र किया ॥२०॥ वे तेजस्वी महर्षि विश्वामित्रको आगे करके बैठे । रामचन्द्र भी, लक्ष्मणके साथ, महर्षियोंकी पूजा करके ॥२१॥ बुद्धिमान् महर्षि विश्वामित्रके सामने बैठे । उन्होंने, महातेजस्वी तपोधन विश्वामित्रसे ॥२२॥ पूछा । रामचन्द्रको बड़ी उत्कण्ठा थी । उन्होंने कहा—भगवन् ! यह कौन देश है, जो धन-धान्यसे समृद्ध और वनोंसे सुशोभित है ॥२३॥ महाराज, मैं यह जानना चाहता हूँ, इसकी सब यथार्थ बातें आप कहें । रामचन्द्रके वाक्यसे प्रेरित होकर व्रतधारी महातपस्वी विश्वामित्रने उस देशका सब वृत्तान्त ऋषियोंके बीच कहना प्रारंभ किया ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३१ ॥
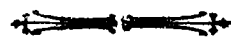
महातपस्वी ब्रह्मपुत्र कुश नामक राजा थे । उनके सभी संकल्प पूरे होते थे और वे धर्म जानते थे । वे सज्जनोंके पूजक थे ॥ १ ॥ उन महात्मा कुशने अपने अनुरूप वैदर्भी नामकी स्त्रीसे चार बली पुत्र उत्पन्न किये । वे चारो पुत्र पिताके समान हुए ॥२॥ कुशाम्ब, कुशनाभ, असूर्तरजस और वसु, बड़े उत्साही और तेजस्वी ये चार पुत्र क्षात्र-धर्मकी वृद्धिके लिए, राजाने उत्पन्न किये ॥३॥

तानुवाच कुशः पुत्रान्धर्मिष्ठान्सत्यवादिनः । क्रियतां पालनं पुत्रा धर्मं प्राप्स्यथ पुष्कलम् ॥ ४ ॥
कुशस्य वचनं श्रुत्वा चत्वारो लोकसत्तमाः । निवेशं चक्रिरे सर्वे पुराणां नृवरास्तदा ॥ ५ ॥
कुशाम्बस्तु महातेजाः कौशाम्बीमकरोत्पुरीम् । कुशनाभस्तु धर्मात्मा पुरं चक्रे महोदयम् ॥ ६ ॥
असूर्तरजसो नाम धर्मारण्यं महामतिः । चक्रे पुरवरं राजा वसुर्नाम गिरिव्रजम् ॥ ७ ॥
एषा वसुमती नाम वसोस्तस्य महात्मनः । एते शैलवराः पञ्च प्रकाशन्ते समन्ततः ॥ ८ ॥
सुमागधी नदी रम्या मागधान्विश्रुताऽऽययौ । पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते ॥ ९ ॥
सैषा हि मागधी राम वसोस्तस्य महात्मनः । पूर्वाभिचारिता राम सुक्षेत्रा सस्यमालिनी ॥१०॥
कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम् । जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन ॥११॥
तास्तु यौवनशालिन्यो रूपवत्यः स्वलंकृताः । उद्यानभूमिमागम्य प्रावृषीव शतह्रदाः ॥१२॥
गायन्त्यो नृत्यमानाश्च वादयन्त्यस्तु राघव । आमोदं परमं जग्मुर्वराभरणभूषिताः ॥१३॥
अथ ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि । उद्यानभूमिमागम्य तारा इव घनान्तरे ॥१४॥
ताः सर्वा गुणसंपन्ना रूपयौवनसंयुताः । दृष्ट्वा सर्वात्मको वायुरिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥
अहं वः कामये सर्वा भार्या मम भविष्यथ । मानुषस्त्यज्यतां भावो दीर्घमायुरवाप्स्यथ ॥१६॥
चलं हि यौवनं नित्यं मानुषेषु विशेषतः । अक्षयं यौवनं प्राप्ता अमर्यश्च भविष्यथ ॥१७॥

कुशने अपने धर्मात्मा और सत्यवादी पुत्रोंसे कहा—तुमलोग प्रजाका पालन करो । बड़ा धर्म होगा ॥ ४ ॥ कुशके वचन सुनकर लोकश्रेष्ठ उन चारो पुत्रोंने भिन्न-भिन्न नगरोंमें अपने उपनिवेश बसाये ॥ ५ ॥ महातेजस्वी कुशाम्बने कौशाम्बी नगरी बसायी । धर्मात्मा कुशनाभने महोदय (कन्नौज) नामक नगर बसाया ॥ ६ ॥ बुद्धिमान असूर्त्तरजसने धर्मारण्य नामक नगर बसाया और राजा वसुने गिरिव्रज नामक नगर बसाया ॥ ७ ॥ यह भूमि उसी महात्मा वसुकी है । ये पाँच पर्वत जो दीख पड़ते हैं, उसीके हैं ॥ ८ ॥ यह सुमागधी नामक रमणीय और प्रसिद्ध नदी मगधमें होकर निकली है और इन पाँचों पर्वतोंके बीचमें मालाके समान मालूम पड़ती है ॥ ९ ॥ यह मागधी नदी (शोण) उसी महात्मा वसुकी है । यह पूर्वकी ओर गयी है । इसके दोनों तीर पर उपजाऊ खेत हैं, जिनमें खूब अन्न होता है ॥ १० ॥

राजर्षि कुशनाभने सौ उत्तम कन्याएँ घृताची अप्सरासे उत्पन्न कीं ॥११॥ रूप-यौवन-सम्पन्न वे कन्याएँ अलङ्कृत होकर बागमें गयीं । वर्षाके समयकी बिजलीके समान वे मालूम पड़ती थीं ॥ १२ ॥ उत्तम आभरणोंसे भूषित वे कन्याएँ, गाने, नाचने और बजानेके द्वारा बहुत आनन्दित हुईं ॥ १३ ॥ सर्वाङ्गसुन्दरी और अलौकिक रूपवाली वे कन्याएँ बागमें आकर मेघसे छिपी ताराओंके समान शोभित हुईं ॥ १४ ॥ वे सभी गुणवती थीं, सभी रूपवती और युवती थीं । उनको देखकर सब स्थानपर विचरण करनेवाला वायु बोला ॥ १५ ॥ मैं तुम लोगोंको चाहता हूँ । तुम लोग मेरी स्त्री बनो । तुम लोग अपना मानवी भाव छोड़ दो; लम्बी आयु पाओगी ॥ १६ ॥ यौवन चञ्चल है-विशेषकर मनुष्योंका तो वह और भी चञ्चल है । मेरे साथ विवाह करनेपर तुम लोग अक्षय (सदा रहनेवाला) यौवन पाओगी और तुम लोग देवस्त्री हो जाओगी ॥ १७ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वायोरक्लिष्टकर्मणः। अपहास्य ततो वाक्यं कन्याशतमथाब्रवीत् ॥१८॥
अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां सुरसत्तम। प्रभावज्ञाश्च ते सर्वाः किमर्थमवमन्यसे ॥१९॥
कुशनाभसुता देव समस्ताः सुरसत्तम। स्थानाच्च्यावयितुं देवं रक्षामस्तु तपो वयम् ॥२०॥
मा भूत्स कालो दुर्मेधः पितरं सत्यवादिनम्। अवमन्य स्वधर्मेण स्वयंवरमुपास्महे ॥२१॥
पिता हि प्रभुरस्माकं दैवतं परमं च सः। यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति ॥२२॥
तासां तु वचनं श्रुत्वा हरिः परमकोपनः। प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान्प्रभुः ॥२३॥
ताः कन्या वायुना भग्ना विविशुर्नृपतेर्गृहम्। प्रविश्य च सुसंभ्रान्ताःसलज्जाःसास्रलोचनाः॥२४॥
स च ता दयिता भग्नाःकन्याःपरमशोभनाः। दृष्ट्वा दीनास्तदा राजा संभ्रान्त इदमब्रवीत् ॥२५॥
किमिदं कथ्यतां पुत्र्यः को धर्ममवमन्यते। कुब्जाः केन कृताः सर्वाश्चेष्टन्त्यो नाभिभाषथ।
एवं राजा विनिःश्वस्य समाधिं संदधे ततः ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

उन परम पराक्रमी वायुके वे वचन सुनकर कन्याओंने हँसकर उनका तिरस्कार किया और कहा ॥१८॥ हे देवश्रेष्ठ! तुम सब प्राणियोंके भीतर निवास करते हो, इससे किसके मनमें क्या है, यह भी जानते हो। फिर, हमलोगोंके मनकी बात जानकर भी क्यों हमलोगोंका अपमान कर रहे हो ॥ १९ ॥ हे सुरश्रेष्ठ! हम सब कुशनाभकी कन्याएँ हैं। तुमको तुम्हारे वर्तमान पदसे हटा सकती हैं, पर तपस्याकी हानिके भयसे वैसा नहीं करतीं ॥ २० ॥ हे मूर्ख, ऐसा समय न आवे जब सत्यवादी पिताका तिरस्कार कर अपने मनके अनुसार, हमलोग स्वयं पति चुनें ॥ २१ ॥ पिता ही हमलोगोंके स्वामी हैं, वे ही देवता हैं। वे जिसको देंगे, वही हमलोगोंका पति होगा ॥ २२ ॥ उन कन्याओंके वचन सुनकर वायु बड़े क्रोधित हुए और उन कन्याओंके शरीरमें घुसकर उन्होंने उनके शरीरको तोड़ दिया। वे एक बित्तेभरकी हो गयीं। उनके अङ्ग टूट गये और उनमें बड़ी बेदना होने लगी ॥ २३ ॥ वायुके द्वारा तोड़ी हुई वे कन्याएँ राजाके घरमें गयीं। वे बहुत ही घबड़ायीं हुईं और लज्जित थीं। उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे ॥ २४ ॥ अपनी प्यारी और सुन्दरी कन्याओंको टूटी हुई और दुखी देखकर राजा घबड़ाए और बोले ॥ २५ ॥ यह क्या है, बेटियो, कहो कौन धर्मका तिरस्कार कर रहा है? किस कारणसे तुमलोग कुबड़ी हो गयी हो कि प्रयत्न करनेपर भी बोल नहीं सकतीं? इस प्रकार दुखसे साँस छोड़कर चुप हो रहे ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ३३

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कुशनाभस्य धीमतः । शिरोभिश्चरणौ स्पृष्ट्वा कन्याशतमभाषत ॥ १ ॥
वायुः सर्वात्मको राजन्प्रधर्षयितुमिच्छति । अशुभं मार्गमास्थाय न धर्मं प्रत्यवेक्षते ॥ २ ॥
पितृमत्यः स्म भद्रं ते स्वच्छन्दे न वयं स्थिताः । पितरं नो वृणीष्व त्वं यदि नो दास्यते तव ॥ ३ ॥
तेन पापानुबन्धेन वचनं न प्रतीच्छता । एवं ब्रुवन्त्यः सर्वाः स्म वायुनाभिहता भृशम् ॥ ४ ॥
तासां तु वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः । प्रत्युवाच महातेजाः कन्याशतमनुत्तमम् ॥ ५ ॥
क्षान्तं क्षमावतां पुत्र्यः कर्तव्यं सुमहत्कृतम् । ऐकमत्यमुपागम्य कुलं चावेक्षितं मम ॥ ६ ॥
अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा । दुष्करं तच्च वै क्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः ॥ ७ ॥
यादृशी वः क्षमा पुत्र्यः सर्वासामविशेषतः । क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञाश्च पुत्रिकाः ॥ ८ ॥
क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठितं जगत् । विसृज्य कन्याः काकुत्स्थ राजा त्रिदशविक्रमः॥९॥
मन्त्रज्ञो मन्त्रयामास प्रदानं सह मन्त्रिभिः । देशे काले च कर्तव्यं सदृशे प्रतिपादनम् ॥१०॥
एतस्मिन्नेव काले तु चूली नाम महाद्युतिः । ऊर्ध्वरेताः शुभाचारो ब्राह्मं तप उपागमत् ॥११॥
तपस्यन्तमृषिं तत्र गन्धर्वी पर्युपासते । सोमदा नाम भद्रं ते ऊर्मिलातनया तदा ॥१२॥
सा च तं प्रणता भूत्वा शुश्रूषणपरायणा । उवास काले धर्मिष्ठा तस्यास्तुष्टोऽभवद्गुरुः॥१३॥

बुद्धिमान् कुशनाभकी ये बातें सुनकर उनके चरणोंमें प्रणाम कर सौ कन्याएँ बोलीं ॥ १ ॥ सब स्थानपर विचरण करनेवाला वायु हमलोगोंको नष्ट करना चाहता था, सो भी अधर्मके द्वारा, वह धर्मका कुछ भी ख्याल नहीं करता ॥ २ ॥ हमलोगोंने वायुसे कहा—हमारे पिता वर्तमान हैं, हमलोग स्वाधीन नहीं हैं, आप हमलोगोंको हमलोगोंके पितासे, माँगें यदि वे दें ॥३॥ पर पापकी इच्छा रखनेवाले वायुने हमलोगोंकी बात न सुनी, हम लोग ऐसा कहती ही रह गयीं और उसने हमारी यह दशा कर दी ॥४॥ उन कन्याओंके वचन सुनकर महातेजस्वी परमधार्मिक राजाने कहा ॥५॥ पुत्रियों, क्षमावानोंका बहुत बड़ा काम है क्षमा करना। एकमत होकर तुम लोगोंने वह क्षमा की है यह बहुत बड़ा काम तुम लोगोंने किया है, यह काम मेरे कुलके अनुरूप हुआ है ॥६॥ पुरुष हो या स्त्री, क्षमा उसका भूषण है, पर वह क्षमा कठिन है, देवताओंके लिए भी कठिन है ॥ ७ ॥ पुत्रियो, तुम लोगोंकी जैसी क्षमा है वैसी क्षमा हमारे कुलमें औरोंकी भी हो, पुत्रियो, क्षमा दान है, सत्य है और यज्ञ है ॥८॥ क्षमा ही यश है, धर्म है, उसमें समस्त संसार वर्तमान है। ऐसा कहकर देवताओंके समान पराक्रमी राजाने कन्याओंको जानेके लिए कहा ॥ ९ ॥ विचारका महत्त्व जाननेवाले राजाने मंत्रियोंके साथ विचार किया कि उपयुक्त समय, उचित कालमें योग्य वरको इन कन्याओंका दान करना चाहिए ॥१०॥ इसी समयमें (राजाके विचारकालमें) ही महातेजस्वी, ऊर्ध्वरेता, सदाचारी चूली नामक ऋषिने वेद-विहित तपस्या प्रारम्भ की ॥ ११ ॥ ये ऋषि जब तपस्या कर रहे थे उस समय उर्मिलाकी कन्या सोमदा नामकी गन्धर्वी उनकी सेवा करने लगी ॥ १२ ॥ वह सोमदा बड़ी नम्रतासे मुनिकी सेवा करती थी, इस तरह उसके कुछ समय बीत गये,

स च तां कालयोगेन प्रोवाच रघुनन्दन । परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते किं करोमि तव प्रियम् ॥१४॥
परितुष्टं मुनिं ज्ञात्वा गन्धर्वी मधुरस्वरम् । उवाच परमप्रीता वाक्यज्ञा वाक्यकोविदम् ॥१५॥
लक्ष्म्या समुदिता ब्राह्म्या ब्रह्मभूतो महातपाः । ब्राह्मेण तपसा युक्तं पुत्रमिच्छामि धार्मिकम् ॥१६॥
अपतिश्चास्मि भद्रं ते भार्या चास्मि न कस्यचित् । ब्राह्मेणोपगतायाश्च दातुमर्हसि मे सुतम् ॥१७॥
तस्याः प्रसन्नो ब्रह्मर्षिर्ददौ ब्राह्ममनुत्तमम् । ब्रह्मदत्त इति ख्यातं मानसं चूलिनः सुतम् ॥१८॥
स राजा ब्रह्मदत्तस्तु पुरीमध्यवसत्तदा । काम्पिल्यां परया लक्ष्म्या देवराजो यथा दिवम् ॥१९॥
स बुद्धिं कृतवान्राजा कुशनाभः सुधार्मिकः । ब्रह्मदत्ताय काकुत्स्थ दातुं कन्याशतं तदा ॥२०॥
तमाहूय महातेजा ब्रह्मदत्तं महीपतिः । ददौ कन्याशतं राजा सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥२१॥
यथाक्रमं तदा पाणिं जग्राह रघुनन्दन । ब्रह्मदत्तो महीपालस्तासां देवपतिर्यथा ॥२२॥
स्पृष्टमात्रे तदा पाणौ विकुब्जा विगतज्वराः । युक्तं परमया लक्ष्म्या बभौ कन्याशतं तदा ॥२३॥
स दृष्ट्वा वायुना मुक्ताः कुशनाभो महीपतिः । बभूव परमप्रीतो हर्षं लेभे पुनः पुनः ॥२४॥
कृतोद्वाहं तु राजानं ब्रह्मदत्तं महीपतिम् । सदारं प्रेषयामास सोपाध्यायगणं तदा ॥२५॥
सोमदापि सुतं दृष्ट्वा पुत्रस्य सदृशीं क्रियाम् । यथान्यायं च गन्धर्वी स्नुषास्ताः प्रत्यनन्दत ।
स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च ताः कन्याः कुशनाभं प्रशस्य च ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

मुनि उसपर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ वे मुनि उचित समयपर उससे बोले, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कौनसा प्रिय काम करूँ ॥ १४ ॥ मुनिको प्रसन्न जानकर समयोचित बोलनेमें निपुण गन्धर्वी प्रसन्न होकर वाक्योंके मर्म समझनेवाले मुनिसे बोली ॥ १५ ॥ महाराज आप ब्राह्म विभूतिसे युक्त हैं अतएव ब्रह्मस्वरूप हैं, आप महातपस्वी हैं । मैं ब्राह्म तपस्यासे युक्त धार्मिक पुत्र चाहती हूँ ॥ १६ ॥ मैं अविवाहिता हूँ, किसीकी स्त्री नहीं हूँ, मैं वैदिक विधानोंके अनुसार आपकी सेवा करती हूँ, ब्राह्म उपायसे ही (सनकादिके समान मानस) पुत्र आप मुझे दें ॥१७॥ प्रसन्न होकर महर्षिने उसको ब्राह्म (मानस) पुत्र दिया । चूली ऋषिके उस मानस पुत्रका ब्रह्मदत्त नाम पड़ा ॥ १८ ॥ वह ब्रह्मदत्त बड़े ऐश्वर्यके साथ काम्पिल्य नगरमें राज्य करते थे जिस तरह देवलोकमें इन्द्र ॥ १९ ॥ इस बातके स्मरण आनेपर परम धार्म्मिक राजा कुशनाभने निश्चय किया कि ब्रह्मदत्तको ही ये सब कन्याएँ दी जाँय ॥ २० ॥ महातेजस्वी राजाने उन ब्रह्मदत्तको बुलाया और प्रसन्नता पूर्वक सौ कन्याएँ उनको दानमें दीं ॥ २१ ॥ राजा ब्रह्मदत्तने क्रमसे उन सब कन्याओंका पाणिग्रहण किया, मानो इन्द्र पाणिग्रहण करता हो ॥ २२ ॥ ब्रह्मदत्तका स्पर्श होते ही उन कन्याओंका कूबड़ दूर हो गया । उनके सब दुःख दूर होगये । वे सब कन्याएँ बड़ी शोभासे युक्त होकर शोभने लगीं ॥ २३ ॥ राजा कुशनाभने देखा कि कन्याएँ वायुरोगसे मुक्त हो गयीं, यह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और बार-बार प्रसन्न हुए ॥२४॥ राजा कुशनाभने विवाह हो जानेपर राजा ब्रह्मदत्तको और उनके पुरोहितोंको आदर पूर्वक बिदा किया ॥२५॥ सोमदा भी अपने पु

चतुस्त्रिंशः सर्गः ३४

कृतोद्वाहे गते तस्मिन्ब्रह्मदत्ते च राघव। अपुत्रः पुत्रलाभाय पौत्रीमिष्टिमकल्पयत् ॥ १ ॥
इष्ट्यां तु वर्तमानायां कुशनाभं महीपतिम्। उवाच परमोदारः कुशो ब्रह्मसुतस्तदा ॥ २ ॥
पुत्रस्ते सदृशः पुत्र भविष्यति सुधार्मिकः। गाधिं प्राप्स्यसि तेन त्वं कीर्तिं लोके च शाश्वतीम्॥ ३ ॥
एवमुक्त्वा कुशो राम कुशनाभं महीपतिम्। जगामाकाशमाविश्य ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ ४ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य कुशनाभस्य धीमतः। जज्ञे परमधर्मिष्ठो गाधिरित्येव नामतः ॥ ५ ॥
स पिता मम काकुत्स्थ गाधिः परमधार्मिकः। कुशवंशप्रसूतोऽस्मि कौशिको रघुनन्दन ॥ ६ ॥
पूर्वजा भगिनी चापि मम राघव सुव्रता। नाम्ना सत्यवती नाम ऋचीके प्रतिपादिता ॥ ७ ॥
सशरीरा गता स्वर्गं भर्तारमनुवर्तिनी। कौशिकी परमोदारा प्रवृत्ता च महानदी ॥ ८ ॥
दिव्या पुण्योदका रम्या हिमवन्तमुपाश्रिता। लोकस्य हितकार्यार्थं प्रवृत्ता च महानदी ॥ ९ ॥
ततोऽहं हिमवत्पार्श्वे वसामि नियतः सुखम्। भगिन्यां स्नेहसंयुक्तः कौशिक्यां रघुनन्दन ॥१०॥
सा तु सत्यवती पुण्या सत्ये धर्मे प्रतिष्ठिता। पतिव्रता महाभागा कौशिकी सरितां वरा ॥११॥
अहं हि नियमाद्राम हित्वा तां समुपागतः। सिद्धाश्रममनुप्राप्तः सिद्धोऽस्मि तव तेजसा ॥१२॥

कर्म (विवाह आदि) देखकर प्रसन्न हुई और उन बहुओंपर भी प्रसन्न हुई और उसने उन कन्याओंको बारबार प्यारसे छूआ। राजा कुशनाभकी भी उसने प्रशंसा की ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तेंतीसवां सर्ग समाप्त ॥ ३३ ॥

विश्वामित्रने रामचन्द्रसे कहा—विवाह कर जब राजा ब्रह्मदत्त चले गये, तब पुत्र पानेके लिये राजा कुशनाभने पुत्रेष्टि यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥१॥ राजा कुशनाभ जब दीक्षित थे उसी समय ब्रह्मपुत्र कुशने (कुशनाभके पिताने) कहा ॥२॥ पुत्र, तुम्हारेही समान धार्मिक पुत्र तुमको होगा, उसका गाधि नाम होगा और उससे तुम संसारमें अक्षय कीर्ति पावोगे ॥३॥ राजा कुशनाभसे ऐसा कहकर कुश आकाशमें होकर सनातन ब्रह्मलोकमें चले गये ॥४॥ कुछ दिनोंके पश्चात् राजा कुशनाभके गाधि नामका परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५॥ विश्वामित्रने कहा, रामचन्द्र, ये परमधार्मिक गाधि ही मेरे पिता हैं, मैं कुश वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ इसलिए कौशिक कहा जाता हूँ ॥ ६ ॥

रामचन्द्र, मुझसे बड़ी, व्रतनिष्ठ मेरी बड़ी बहिन थी, जिसका नाम सत्यवती था और जो ऋचिकको दी गयी थी ॥७॥ पतिकी सर्वात्मना सेवा करनेवाली वह मेरी बहिन इस शरीरसे ही स्वर्ग गयी और उसके नामसे कौशिकी नामकी एक महानदी बही ॥८॥ वही मेरी बहिन मनुष्योंके लौकिक और पारलौकिक कामोंके लिए दिव्य, पवित्र और रमणीय नदी होकर बही। वह स्वर्गसे हिमालयमें गयी ॥९॥ तभीसे मैं हिमवान पर्वतकी तराईमें सुखपूर्वक निवास करता हूँ, क्योंकि मेरी प्यारी बहिन कौशिकी नदी रूपसे वहाँ वर्तमान है ॥१०॥ वह सत्यवती बड़ी पवित्र और सत्य धर्मका पालन करनेवाली थी। वह पतिव्रता महाभागा आज कौशिकी नामसे एक श्रेष्ठ नदी है ॥११॥ यज्ञ करनेके लिए

एषा राम ममोत्पत्तिः स्वस्य वंशस्य कीर्तिता । देशस्य हि महाबाहो यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥१३॥
गतोऽर्धरात्रः काकुत्स्थ कथाः कथयतो मम । निद्रामभ्येहि भद्रं ते मा भूद्विघ्नोऽध्वनीह नः ॥१४॥
निष्पन्दास्तरवः सर्वे निलीना मृगपक्षिणः । नैशेन तमसा व्याप्ता दिशश्च रघुनन्दन ॥१५॥
शनैर्विसृज्यते संध्या नभो नेत्रैरिवावृतम । नक्षत्रतारागहनं ज्योतिर्भिरवभासते ॥१६॥
उत्तिष्ठते च शीतांशुः शशी लोकतमोनुदः । ह्लादयन्प्राणिनां लोके मनांसि प्रभया स्वया ॥१७॥
नैशानि सर्वभूतानि प्रचरन्ति ततस्ततः । यक्षराक्षससङ्घाश्च रौद्राश्च पिशिताशनाः ॥१८॥
एवमुक्त्वा महातेजा विरराम महामुनिः । साधुसाध्विति ते सर्वे मुनयो ह्यभ्यपूजयन् ॥१९॥
कुशिकानामयं वंशो महान्धर्मपरः सदा । ब्रह्मोपमा महात्मानः कुशवंश्या नरोत्तमाः ॥२०॥
विशेषेण भवानेव विश्वामित्र महायशः । कौशिकी सरितां श्रेष्ठा कुलोद्द्योतकरी तव ॥२१॥
मुदितैर्मुनिशार्दूलैः प्रशस्तः कुशिकात्मजः । निद्रामुपागमच्छ्रीमानस्तंगत इवांशुमान् ॥२२॥
रामोऽपि सहसौमित्रिः किंचिदागतविस्मयः । प्रशस्य मुनिशार्दूलं निद्रां समुपसेवते ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥
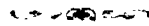
मैं अपनी बहिनको छोड़कर यहाँ, सिद्धाश्रममें आया और तुम्हारे पराक्रमसे मुझे सिद्धि मिली ॥ १२ ॥ रामचन्द्र, यही मेरी और मेरे वंशकी उत्पत्तिकी कथा है। अपने देशकी भी कथा मैंने कही, जो तुमने मुझसे पूछी थी ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, बातें करते हुए मुझे आधी रात बीत गयी। सोओ, जिससे कल मार्ग चलनेमें रुकावट न हो ॥ १४ ॥ पत्ती भी नहीं डोलती, पशु-पक्षी सो रहे हैं। रातका अन्धकार सब दिशाओंमें फैल गया है ॥ १५ ॥ धीरे धीरे सन्ध्या दूर चली गयी, आकाश, नक्षत्र और ताराओंसे भर गया, मालूम होता है कि वह प्रकाशमान आँखोंसे भरा हुआ है ॥ १६ ॥ अन्धकार दूर करनेवाले ये शीतल किरणोंवाले चन्द्रमा उदित हो रहे हैं और अपनी प्रभासे प्राणियोंके मनको आह्लादित कर रहे हैं ॥१७॥ रातमें चलनेवाले प्राणी इधर-उधर विचर रहे हैं, मांस खानेवाले और भयानक यक्ष और राक्षसोंका समूह, इधर-उधर फिर रहा है ॥१८॥ महातेजस्वी विश्वामित्र ऐसा कहकर चुप हो गये और साधु-साधु कहकर मुनियोंने उनके वचनकी प्रशंसा की ॥ १९ ॥ महर्षियोंने कहा—यह कुशिक वंश सदासे बड़ा धर्मात्मा है। कुशवंशी नरश्रेष्ठ बड़े महात्मा और ब्रह्म तुल्य हुए हैं ॥२०॥ विश्वामित्र, विशेषकर आपने और नदीश्रेष्ठ कौशिकीने इस कुलकी मर्यादा और बढ़ाई है ॥२१॥ प्रसन्न मुनियोंसे प्रशंसित होकर विश्वामित्र अस्तगामी सूर्यके समान निद्राके वशीभूत हुए ॥ २२ ॥ लक्ष्मणके साथ रामचन्द्र भी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रकी प्रशंसा कर सोये। इनको मुनिके वृत्तान्त सुननेसे आश्चर्य हुआ था ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ३५

उपास्य रात्रिशेषं तु शोणाकूले महर्षिभिः । निशायां सुप्रभातायां विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥
सुप्रभाता निशा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतपौर्वाह्णिकक्रियः । गमनं रोचयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३ ॥
अयं शोणः शुभजलोऽगाधः पुलिनमण्डितः । कतरेण पथा ब्रह्मन्संतरिष्यामहे वयम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् । एष पन्था मयोद्दिष्टो येन यान्ति महर्षयः ॥ ५ ॥
ते गत्वा दूरमध्वानं गतेऽर्धदिवसे तदा । जाह्नवीं सरितां श्रेष्ठां ददृशुर्मुनिसेविताम् ॥ ६ ॥
तां दृष्ट्वा पुण्यसलिलां हंससारससेविताम् । बभूवुर्मुनयः सर्वे मुदिताः सहराघवाः ॥ ७ ॥
तस्यास्तीरे तदा सर्वे चक्रुर्वासपरिग्रहम् । ततःस्नात्वा यथान्यायं संतर्प्य पितृदेवताः ॥ ८ ॥
हुत्वा चैवाग्निहोत्राणि प्राश्य चामृतवद्धविः । विविशुर्जाह्नवीतीरे शुभा मुदितमानसाः ॥ ९ ॥
विश्वामित्रं महात्मानं परिवार्य समन्ततः । विष्ठिताश्च यथान्यायं राघवौ च यथार्हतः ।
संप्रहृष्टमना रामो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥१०॥
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीम् । त्रैलोक्यं कथमाक्रम्य गता नदनदीपतिम् ॥११॥
चोदितो रामवाक्येन विश्वामित्रो महामुनिः । वृद्धिं जन्म च गङ्गाया वक्तुमेवोपचक्रमे ॥१२॥
शैलेन्द्रो हिमवान्राम धातूनामाकरो महान् । तस्य कन्याद्वयं राम रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥१३॥

बची हुई रातको, महर्षियों के साथ सोनके तीरपर बिताकर, रात्रिके बीतजानेपर (अच्छी तरह प्रातःकाल होने पर) मुनि विश्वामित्रने कहा ॥१॥ रामचन्द्र, रात्रि बीत गयी । प्रातःकालकी सन्ध्या हो रही है । उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो । चलनेकी तयारी करो ॥ २ ॥ मर्षहि के वचन सुनकर राम और लक्ष्मणने प्रातःकालके धार्मिक कृत्य किये, तदनन्तर चलनेके लिए तयार हुए और बोले ॥३॥ महाराज, यह सुन्दर जलवाला शोण अगाध है, इसके दोनों तरफ करारे हैं, किस मार्गसे हमलोग इसको पार करेंगे ॥४॥ रामचन्द्रके यह पूछनेपर विश्वामित्रने कहा—देखो यह मार्ग मैंने बतलाया है, जिससे महर्षिलोग भी जायेंगे ॥ ५ ॥ वे बड़ी दूर चले गये, मध्यान्ह हो गया, उस समय मुनियोंके द्वारा सेवित नदीश्रेष्ठ गंगाको उनलोगोंने देखा ॥६॥ गंगाका पवित्र जल और हंस, सारस आदि पक्षियों की क्रीड़ा देखकर रामचन्द्रके साथ अन्य महर्षि भी प्रसन्न हुए ॥७॥ उस नदीके तीरपर उन सबने डेरा डाला । स्नान करके विधिपूर्वक देवता और पितरोंका, उनलोगोंने, तर्पण किया ॥ ८ ॥ अग्निहोत्र करके और अमृतके समान हविष्य खाकर वे सब प्रसन्नतापूर्वक गंगाके तीरपर बैठे ॥ ९ ॥ बीचमें विश्वामित्र थे और चारो ओरसे मुनिगण उन्हें घेरे हुए थे । सब योग्य स्थानोंपर बैठे थे और राम लक्ष्मण भी अपने योग्य स्थानपर विराजमान थे। प्रसन्न होकर रामचन्द्र विश्वामित्रसे बोले ॥ १० ॥ भगवन् मैं जानना चाहता हूँ, कि यह त्रिपथगा (तीन धारावाली गंगा, किस प्रकार तीनों लोकोंमें घूमकर समुद्रसे मिली ॥ ११ ॥ रामचन्द्रके वचनसे प्रेरित होकर महामुनि विश्वामित्र, गंगाके जन्म और उनकी वृद्धिका वृत्तान्त कहने लगे ॥ १२ ॥ हे रामचन्द्र, हिम-

या मेरुदुहिता राम तयोर्माता सुमध्यमा । नाम्ना मेना मनोज्ञा वै पत्नी हिमवतः प्रिया ॥१४॥
तस्यां गङ्गेयमभवज्ज्येष्ठा हिमवतः सुता । उमा नाम द्वितीयाभूत्कन्या तस्यैव राघव ॥१५॥
अथ ज्येष्ठां सुराः सर्वे देवकार्यचिकीर्षया । शैलेन्द्रं वरयामासुर्गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ॥१६॥
ददौ धर्मेण हिमवांस्तनयां लोकपावनीम् । स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥१७॥
प्रतिगृह्य त्रिलोकार्थं त्रिलोकहितकाङ्क्षिणः । गङ्गामादाय तेऽगच्छन्कृतार्थेनान्तरात्मना ॥१८॥
या चान्या शैलदुहिता कन्यासीद्रघुनन्दन । उग्रं सुव्रतमास्थाय तपस्तेपे तपोधना ॥१९॥
उग्रेण तपसा युक्तां ददौ शैलवरः सुताम् । रुद्रायाप्रतिरूपाय उमां लोकनमस्कृताम् ॥२०॥
एते ते शैलराजस्य सुते लोकनमस्कृते । गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा उमादेवी च राघव ॥२१॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा त्रिपथगामिनी । खं गता प्रथमं तात गतिं गतिमतां वर ।
सुरलोकं समारूढा विपापा जलवाहिनी ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ३६

उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्नुभौ राघवलक्ष्मणौ । प्रतिनन्द्य कथां वीरावूचतुर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥
धर्मयुक्तमिदं ब्रह्मन्कथितं परमं त्वया । दुहितुः शैलराजस्य ज्येष्ठाया वक्तुमर्हसि ।
विस्तरं विस्तरज्ञोऽसि दिव्यमानुषसंभवम् ॥ २ ॥

वान नामका एक पर्वत है, वह सब धातुओंकी खान है। उसकी दो बड़ी सुन्दरी कन्याएँ थीं ॥१३॥ मेरु पर्वतकी सुन्दर कन्या, मेना, उन कन्याओंकी माता है और वह हिमवानकी स्त्री है॥१४॥ उसी मेनासे इस गंगा नामकी कन्याकी उत्पत्ति हुई है। यह हिमवानकी बड़ी कन्या है। रामचन्द्र, छोटी कन्याका नाम उमा है ॥ १५ ॥ अनन्तर सब देवताओंने देवकार्यकी सिद्धिके लिए त्रिपथगा गंगा नदीको हिमवानसे माँगा ॥ १६ ॥ हिमवानने त्रिलोकका हित करनेकी इच्छासे, स्वेच्छानुसार चलनेवाली और लोकोंको पवित्र करनेवाली अपनी गंगा नामकी पुत्रीका धर्मपूर्वक दान किया ॥ १७ ॥ त्रिलोकके लिए, त्रिलोक-हिताकांक्षी देवगण, गंगाको लेकर चले गये, क्योंकि उनका मनोरथ सिद्ध हो गया ॥१८॥ रामचन्द्र, हिमवानकी दूसरी जो कन्या थी, उस तपस्विनीने कठिन व्रत ग्रहण कर, तपस्या प्रारम्भ की ॥ १९ ॥ सबके द्वारा पूजित उग्रतपस्विनी अपनी कन्याका दान हिमवानने अद्वितीय महादेवको दिया ॥२०॥ रामचन्द्र, हिमवानके येही दो, नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा और उमा नामकी लोकपूजित कन्याएँ हैं॥२१॥ हे मानवश्रेष्ठ, जिसप्रकार, निष्पाप और जलरूपसे बहनेवाली, यह गंगा नदी पहले आकाशमें जाकर फिर देवलोकमें चली गयी, यह सब मैंने कहा ॥२२॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३५ ॥

मुनिके चुप हो जानेपर राम और लक्ष्मण दोनोंने विश्वामित्रकी कथाकी प्रशंसा की और वे बोले ॥ १ ॥ महाराज, पर्वतराज हिमवानकी जो कथा आपने कही वह बहुतही धर्मयुक्त है, अर्थात्

श्रीपन्यो हेतुना केन प्लावयेल्लोकपावनी । कथं गङ्गा त्रिपथगा विश्रुता सरिदुत्तमा ॥ ३ ॥
त्रिषु लोकेषु धर्मज्ञ कर्मभिः कैः समन्विता । तथा ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ ४ ॥
निखिलेन कथां सर्वामृषिमध्ये न्यवेदयत् । पुरा राम कृतोद्वाहः शितिकण्ठो महातपाः ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा च भगवान्देवीं मैथुनायोपचक्रमे । तस्य संक्रीडमानस्य महादेवस्य धीमतः ।
शितिकण्ठस्य देवस्य दिव्यं वर्षशतं गतम् ॥ ६ ॥
न चापि तनयो राम तस्यामासीत्परंतप । सर्वे देवाः समुद्युक्ताः पितामहपुरोगमाः ॥ ७ ॥
यदिहोत्पद्यते भूतं कस्तत्प्रतिसहिष्यति । अभिगम्य सुराः सर्वे प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥ ८ ॥
देवदेव महादेव लोकस्यास्य हिते रत । सुराणां प्रणिपातेन प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ९ ॥
न लोका धारयिष्यन्ति तव तेजः सुरोत्तम । ब्राह्मेण तपसा युक्तो देव्या सह तपश्चर ॥१०॥
त्रैलोक्यहितकामार्थं तेजस्तेजसि धारय । रक्ष सर्वानिमाँल्लोकान्नालोकं कर्तुमर्हसि ॥११॥
देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकमहेश्वरः । बाढमित्यब्रवीत्सर्वान्पुनश्चेदमुवाच ह ॥१२॥
धारयिष्याम्यहं तेजस्तेजसैव सहोमया । त्रिदशाः पृथिवी चैव निर्वाणमधिगच्छतु ॥१३॥
यदिदं क्षुभितं स्थानान्मम तेजो ह्यनुत्तमम् । धारयिष्यति कस्तन्मे ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ॥१४॥
एवमुक्तास्ततो देवाः प्रत्यूचुर्वृषभध्वजम् । यत्तेजः क्षुभितं ह्यद्य तद्धरा धारयिष्यति ॥१५॥

वे सब काम धर्मानुसारी हैं, अब उनकी बड़ी कन्या गङ्गाको स्वर्ग से मृत्युलोक में आने की बात कहिए । आपको सब विषयोंका ज्ञान है, इस कारण विस्तारपूर्वक कहिए ॥ २ ॥ लोकोंको पवित्र करनेवाली वह गङ्गा तीन धाराओंमें क्यों बहती है, किस कारण उस श्रेष्ठ नदीका नाम त्रिपथगा गङ्गा पड़ा ॥ ३ ॥ हे धर्मज्ञ, तीनों लोकोंमें गङ्गाकी तीन धाराओंके क्या काम हैं, रामचन्द्र ऐसा कह ही रहे थे, उसी समय तपस्वी विश्वामित्रने ॥४॥ ऋषियोंके बीचमें आदिसे लेकर सब कथाएँ कहनी प्रारम्भ कीं । उन्होंने कहा—रामचन्द्र, महातपस्वी महादेवने पहले विवाह किया था ॥ ५ ॥ भगवान महादेव देवीको देखकर उनके साथ रमण करने लगे । इस प्रकार रमण करते-करते उनको देवताओंके सौ वर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ पर हे रामचन्द्र, उस देवीको कोई पुत्र नहीं हुआ। शिवको इस प्रकार रमण करते जान ब्रह्मा आदि सब देवता बड़े व्याकुल हुए ॥ ७ ॥ वे सब देवता शिवके यहाँ गये और हाथ जोड़कर बोले—महाराज, इतने दिनोंके रमणके बाद आप जो पुत्र उत्पन्न करेंगे उसका तेज कौन सहेगा ॥ ८ ॥ हे देवताओंके देव, हे महादेव, हे संसारके कल्याण करनेवाले, देवताओंकी प्रार्थनासे कृपा कीजिए ॥ ९ ॥ महाराज, आपके तेजको ये लोक धारण नहीं कर सकते, आप वैदिक विधानके अनुसार देवीके साथ तपस्या करें ॥ १० ॥ त्रिलोकके कल्याणके लिए तेजको तेजमें ही रहने दें, इन सब लोकोंकी रक्षा करें । इस संसारको लोकहीन न बनाइए ॥ ११ ॥ सब लोकोंके प्रधान स्वामी महादेवने देवताओंकी बातें सुनकर कहा "अच्छा" और फिर बोले ॥ १२ ॥ उमाके साथ मैं भी तेजको तेजमें ही धारण करूँगा, ये देवता और पृथिवी सब सुखी हों ॥ १३ ॥ हे देवश्रेष्ठ, मेरा यह सर्वश्रेष्ठ तेज अपने स्थानसे च्युत हुआ तो उसको धारण कौन करेगा, यह आपलोग बतलावें ॥ १४ ॥ देवताओंने महादेवको उत्तर दिया—स्थानसे च्युत आपके तेजको यह

एवमुक्तः सुरपतिः प्रमुमोच महाबलः । तेजसा पृथिवी येन व्याप्ता सगिरिकानना ॥१६॥
ततो देवाः पुनरिदमूचुश्चापि हुताशनम् । आविश त्वं महातेजो रौद्रं वायुसमन्वितः ॥१७॥
तदग्निना पुनर्व्याप्तं संजातं श्वेतपर्वतम् । दिव्यं शरवणं चैव पावकादित्यसंनिभम् ॥१८॥
यत्र जातो महातेजाः कार्तिकेयोऽग्निसंभवः । अथोमां च शिवं चैव देवाः सर्षिगणास्तथा ॥१९॥
पूजयामासुरत्यर्थं सुप्रीतमनसस्तदा । अथ शैलसुता राम त्रिदशानिदमब्रवीत् ॥२०॥
समन्युरशपत्सर्वान्क्रोधसंरक्तलोचना । यस्मान्निवारिता चाहं संगता पुत्रकाम्यया ॥२१॥
अपत्यं स्वेषु दारेषु नोत्पादयितुमर्हथ । अद्यप्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः ॥२२॥
एवमुक्त्वा सुरान्सर्वाञ्शशाप पृथिवीमपि । अवने नैकरूपा त्वं बहुभार्या भविष्यसि ॥२३॥
न च पुत्रकृतां प्रीतिं मत्क्रोधकलुषीकृता । प्राप्स्यसे त्वं सुदुर्मेधे मम पुत्रमनिच्छती ॥२४॥
तान्सर्वान्पीडितान्दृष्ट्वा सुरान्सुरपतिस्तदा । गमनायोपचक्राम दिशं वरुणपालिताम् ॥२५॥
स गत्वा तप आतिष्ठत्पार्श्वे तस्योत्तरे गिरेः । हिमवत्प्रभवे शृङ्गे सह देव्या महेश्वरः ॥२६॥
एष ते विस्तरो राम शैलपुत्र्या निवेदितः । गङ्गायाः प्रभवं चैव शृणु मे सहलक्ष्मण ॥२७॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

पृथिवी धारण करेगी ॥ १५ ॥ देवताओंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर महादेवने अपने तेजका त्याग किया और उससे पर्वत, वन आदिके साथ समूची पृथिवी भर गयी ॥ १६ ॥ तब देवताओंने पुनः अग्निसे कहा कि वायुके साथ इस भयानक महातेजमें तुम प्रवेश करो ॥ १७ ॥ अग्निसे व्याप्त होने पर वह तेज श्वेत पर्वतके समान हो गया और पुनः अग्नि और सूर्यके समान तेजस्वी शरवण (एक तरहकी घास) हुआ ॥ १८ ॥ वहाँ महातेजस्वी और अग्निके पुत्र कार्तिकेय उत्पन्न हुए । इसके अनन्तर उमा देवी और शिवकी, ऋषियों और गणोंके साथ, देवताओंने ॥१९॥ प्रसन्नता पूर्वक पूजा की । हे रामचन्द्र, तब उमा देवताओंसे बोलीं ॥२०॥ क्रोधसे उनकी आँखें लाल हो गयी थीं, क्रोधकर उन्होंने शाप दिया-पुत्रकी इच्छासे मैं पतिके पास थी, पर तुमलोगोंने बीचमें ही रोका ॥२१॥ तुमलोग भी अपनी-अपनी स्त्रियोंमें पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकोगे । आजसे तुमलोगोंकी स्त्रियाँ पुत्रहीन होंगी ॥ २२ ॥ इस प्रकार देवताओंको शाप देकर उमाने पृथिवीको भी शाप दिया । पृथिवी, तुम अनेकोंकी भार्या बनोगी और तुम्हारा अनेक रूप होगा ॥ २३ ॥ हे मूर्खे, मेरी कोखसे पुत्र न चाहनेवाली तुम मेरे क्रोधके कारण उसमें (कार्तिकेयमें) पुत्रके समान प्रेम न कर सकोगी ॥ २४ ॥ शापके सुननेसे देवताओंको दुखी देखकर इन्द्र वरुणकी दिशा (पश्चिम दिशा) की ओर चले गये ॥२५॥ महादेवजी देवी उमाके साथ उस पर्वतकी उत्तर ओर, हिमवानके एक शिखरपर, तपस्या करने लगे ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्र, पर्वत-पुत्री उमाका यह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मैंने कहा । अब गंगाका महात्म्य, लक्ष्मणके साथ, मुझसे सुनो ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छत्तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ३७

तप्यमाने तदा देव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः । सेनापतिमभीप्सन्तः पितामहमुपागमन् ॥ १ ॥
ततोऽब्रुवन्सुराः सर्वे भगवन्तं पितामहम् । प्रणिपत्य सुरा राम सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥ २ ॥
येन सेनापतिर्देव दत्तो भगवता पुरा । स तपः परमास्थाय तप्यते स्म सहोमया ॥ ३ ॥
यदत्रानन्तरं कार्यं लोकानां हितकाम्यया । संविधत्स्व विधानज्ञ त्वं हि नः परमा गतिः ॥ ४ ॥
देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः । सान्त्वयन्मधुरैर्वाक्यैस्त्रिदशानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥
शैलपुत्र्या यदुक्तं तन्न प्रजाः स्वासु पत्निषु । तस्या वचनमक्लिष्टं सत्यमेव न संशयः ॥ ६ ॥
इयमाकाशगङ्गा च यस्यां पुत्रं हुताशनः । जनयिष्यति देवानां सेनापतिमरिंदमम् ॥ ७ ॥
ज्येष्ठा शैलेन्द्रदुहिता मानयिष्यति तं सुतम् । उमायास्तद्बहुमतं भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कृतार्था रघुनन्दन । प्रणिपत्य सुराः सर्वे पितामहमपूजयन् ॥ ९ ॥
ते गत्वा परमं राम कैलासं धातुमण्डितम् । अग्निं नियोजयामासुः पुत्रार्थं सर्वदेवताः ॥१०॥
देवकार्यमिदं देव समाधत्स्व हुताशन । शैलपुत्र्यां महातेजो गङ्गायां तेज उत्सृज ॥११॥
देवतानां प्रतिज्ञाय गङ्गामभ्येत्य पावकः । गर्भं धारय वै देवि देवतानामिदं प्रियम् ॥१२॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा दिव्यं रूपमधारयत् । स तस्या महिमां दृष्ट्वा समन्तादवशीर्यत ॥१३॥

जिस समय महादेव तपस्या कर रहे थे, उस समय अग्नि, इन्द्र आदि देवता सेनापतिकी खोज-में पितामह ब्रह्माजीके पास गये ॥१॥ हे रामचन्द्र ! अग्नि, इन्द्र आदि सब देवता पितामहको प्रणाम करके बोले ॥ २ ॥ जिस भगवान् शिवजीने सेनापति (बीज रूपसे) दिया था वे इस समय उमाके साथ बड़ी कठिन तपस्या कर रहे हैं ॥३॥ संसारके कल्याणके लिए उनकी तपस्यामें विघ्न डालना उचित है । हे विधानज्ञ, आप कोई उपाय कीजिए । आपही हम लोगोंके परम रक्षक हैं ॥ ४ ॥ अब लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने देवताओंके वचन सुनकर मधुर वचनोंसे उन्हें धैर्य धराया और कहा ॥५॥ उमाने जो कहा है कि अपनी स्त्रियोंमें तुम्हें पुत्र न होंगे सो उनका यह वचन झूठा न होगा, सत्य ही होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ यह आकाशगंगा है, इसमें अग्नि पुत्र उत्पन्न करेंगे और वही देवताओंका शत्रुविनाशी सेनापति होगा ॥ ७ ॥ हिमवानकी बड़ी कन्या गंगा उसको अपना पुत्र समझेगी और वह पुत्र उमाका भी प्यारा होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥ उनके वे वचन सुनकर देवता कृतार्थ हुए और उनलोगोंने प्रणाम करके पितामह ब्रह्माकी पूजा की ॥९॥ हे राम, धातुओंकी खान कैलाश पर्वतपर वे सब देवता गये और सब देवताओंने मिलकर अग्निको पुत्र उत्पन्न करनेके लिए नियुक्त किया ॥ १० ॥ देवताओंने कहा—हे अग्निदेव, यह देवताओंका कार्य है । आप सावधान हो जायँ ! हिमवानकी पुत्री गंगामें आप तेज डालें ॥ ११ ॥ देवताओंको वचन देकर वे गंगाके पास आये और बोले-हे देवि, तुम गर्भ धारण करो । तुम्हारा यह गर्भ धारण करना देवताओं-को अत्यन्त प्रिय है ॥ १२ ॥ अग्निके ये वचन सुनकर गंगाने अपना जलरूप त्यागकर दिव्य रूप धारण किया । गंगाका वह रूप-वैभव देखकर वह (शिवजीका तेज, पारा) बिखर गया,

समन्ततस्तदा देवीमभ्यषिञ्चत पावकः । सर्वस्रोतांसि पूर्णानि गङ्गाया रघुनन्दन ॥१४॥
तमुवाच ततो गङ्गा सर्वदेवपुरोगमम् । अशक्ता धारणे देव तेजस्तव समुद्धतम् ॥१५॥
दह्यमानाग्निना तेन संप्रव्यथितचेतना । अथाब्रवीदिदं गङ्गां सर्वदेवहुताशनः ॥१६॥
इह हैमवते पार्श्वे गर्भोऽयं संनिवेश्यताम् । श्रुत्वा त्वग्निवचो गङ्गा तं गर्भमतिभास्वरम् ॥१७॥
उत्ससर्ज महातेजः स्रोतोभ्यो हि तदानघ । यदस्या निर्गतं तस्मात्तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥१८॥
काञ्चनं धरणीं प्राप्तं हिरण्यमतुलप्रभम् । ताम्रं कार्ष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत ॥१९॥
मलं तस्याभवत्तत्र त्रपु सीसकमेव च । तदेतद्धरणीं प्राप्य नानाधातुरवर्धत ॥२०॥
निक्षिप्तमात्रे गर्भे तु तेजोभिरभिरञ्जितम् । सर्वं पर्वतसंनद्धं सौवर्णमभवद्वनम् ॥२१॥
जातरूपमिति ख्यातं तदाप्रभृति राघव । सुवर्णं पुरुषव्याघ्र हुताशनसमप्रभम् ॥२२॥
तं कुमारं ततो जातं सेन्द्राः सह मरुद्गणाः । क्षीरसंभावनार्थाय कृत्तिकाः समयोजयन् ॥२३॥
ताः क्षीरं जातमात्रस्य कृत्वा समयमुत्तमम् । ददुः पुत्रोऽयमस्माकं सर्वासामिति निश्चिताः ॥२४॥
ततस्तु देवताः सर्वाः कार्तिकेय इति ब्रुवन् । पुत्रस्त्रैलोक्यविख्यातो भविष्यति न संशयः ॥२५॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा स्कन्नं गर्भपरिस्रवे । स्नापयन्परया लक्ष्म्या दीप्यमानं यथानलम् ॥२६॥

जिसे अग्निने धारण किया था (कहा जाता है कि उत्तम स्त्रीको देखकर पारा उसे पकड़नेके लिए दो योजन तक उछलता है) ॥१३॥ रामचन्द्र, अग्निने शिवके उस तेजसे गंगाका अभिषेक किया, जिससे गंगाकी सब सोतें भर गयीं ॥ १४ ॥ सब देवताओंके आगे चलनेवाले अग्निसे तब गंगा बोलीं-हे देव, तुम्हारे इस उद्धत तेजको ग्रहण करनेके लिए मैं असमर्थ हूँ ॥ १५ ॥ उस जलती हुई आगसे मैं नितान्त व्यथित हूँ, मैं बड़ी व्याकुल हूँ गंगाने अग्निसे ऐसा कहा। उस अग्निने कहा जो देवताओंकी आहुती लेता है ॥ १६ ॥ अग्निने कहा-यहीं हिमवानकी तराईमें आप यह गर्भ रख दें। अग्निका वचन सुनकर गंगाने अत्यन्त चमकीले उस गर्भको ॥१७॥ अपनी सोतोंमें से उठाकर छोड़ दिया। जो गंगाका वह गर्भ निकला, वह स्वर्णके समान उज्ज्वल और चमकीला था ॥१८॥ पृथिवी पर जहाँ वह गर्भ गिरा वहाँकी वस्तु सोना हो गयी। उस स्थानसे पासवाली चीज़ चाँदी हुई, उससे कुछ दूरकी चीज़ें ताँबा और उससे दूरकी लोहा हुईं, क्योंकि वह गर्भ बड़ा ही तीक्ष्ण था ॥१९॥ उस गर्भका जो मल हुआ वह राँगा और सीसा हुआ। इस प्रकार पृथिवीमें गिरकर उस समय उसके तेजसे, वह पर्वत और समूचा वन, जगमगा गया और सोनेका हो गया ॥२१॥ रामचन्द्र, उसी समयसे अग्निके समान चमकीले सुवर्णका नाम जातरूप पड़ा, क्योंकि उसने अपना अपूर्व रूप प्रकाशित किया था॥२२॥जब उस गर्भमेंसे कुमारकी उत्पत्ति हुई, तब इन्द्र और देवताओंने उसके दूध पिलाने के लिए कृत्तिकाओंको नियुक्त किया॥२३॥ यह पुत्र हम सबको मिला है, अतएव यह हम लोगोंका है ऐसा आपसमें ठहराव कर उस जन्मे हुए बच्चेको वे दूध पिलाने लगीं (कृत्तिकाकी छ तारायें होतीं हैं) ॥२४॥ तब देवताओंने उस लड़केको कार्तिकेय (कृत्तिकाका बेटा) कहा और कहा कि वह लड़का त्रिलोकमें प्रसिद्ध होगा इसमें सन्देह नहीं ॥२५॥ देवताओंके यह वचन (यह कृत्तिकाओंका पुत्र होगा)

स्कन्द इत्यब्रुवन्देवाः स्कन्नं गर्भपरिस्रवे । कार्तिकेयं महाबाहुं काकुत्स्थ ज्वलनोपमम् ॥२७॥
प्रादुर्भूतं ततः क्षीरं कृत्तिकानामनुत्तमम् । षण्णां षडाननो भूत्वा जग्राह स्तनजं पयः ॥२८॥
गृहीत्वा क्षीरमेकाह्ना सुकुमारवपुस्तदा । अजयत्स्वेन वीर्येण दैत्यसैन्यगणान्विभुः ॥२९॥
सुरसेनागणपतिमभ्याषिञ्चन्महाद्युतिम् । ततस्तममराः सर्वे समेत्याग्निपुरोगमाः ॥३०॥
एष ते राम गङ्गाया विस्तरोऽभिहितो मया । कुमारसंभवश्चैव धन्यः पुण्यस्तथैव च ॥३१॥
भक्तश्च यः कार्तिकेय काकुत्स्थ भुवि मानवः । आयुष्मान्पुत्रपौत्रैश्च स्कन्दसालोक्यतां व्रजेत् ॥३२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ३८

तां कथां कौशिको रामे निवेद्य मधुराक्षराम् । पुनरेवापरं वाक्यं काकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अयोध्याधिपतिर्वीर पूर्वमासीन्नराधिपः । सगरो नाम धर्मात्मा प्रजाकामः स चाप्रजः ॥ २ ॥
वैदर्भदुहिता राम केशिनी नाम नामतः । ज्येष्ठा सगरपत्नी सा धर्मिष्ठा सत्यवादिनी ॥ ३ ॥
अरिष्टनेमेर्दुहिता सुपर्णभगिनी तु सा । द्वितीया सगरस्यासीत्पत्नी सुमतिसंज्ञिता ॥ ४ ॥
ताभ्यां सह महाराजः पत्नीभ्यां तप्तवांस्तपः । हिमवन्तं समासाद्य भृगुप्रस्रवणे गिरौ ॥ ५ ॥

सुनकर शिव और पार्वतीसे गिरे हुए और गंगाके द्वारा छोड़े हुए अग्निके समान अद्भुत तेजसे प्रकाशित उस पुत्रको उन लोगोंने स्नान कराया ॥२६॥ स्कन्न (गिरा) गर्भस्रवसे वह कुमार उत्पन्न हुआ था, इसलिये देवताओंने अग्निके समान प्रकाशमान उस कार्तिकेयका स्कन्द नाम रक्खा ॥२७॥ तब उन छ कृत्तिकाओंके स्तनमें उत्तम दूध उत्पन्न हुआ और छमुखवाला होकर वह बालक छओं-का दूध पीने लगा ॥२८॥ दूध पीकर एक दिनकी ही अवस्थामें उस कोमल-शरीर बालकने अपने पराक्रमसे दैत्य-सेनाको जीत लिया तदनन्तर अग्निप्रभृति सब देवताओंने इकट्ठा होकर उस महान तेजस्वी बालकको देव-सेनाका सेनापति बनाया ॥३०॥ विश्वामित्रने कहा—राम, यह मैंने गंगाकी कथा विस्तारके साथ कही और कुमारके जन्मका वृत्तान्त भी मैंने वर्णन किया, जो पवित्र है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य कार्तिकेयकी भक्ति करेगा, उसकी आयु बढ़ेगी, पुत्र-पौत्रोंके साथ निवास कर वह स्कन्दलोकमें जायगा ॥ ३२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सैंतीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३७ ॥

विश्वामित्रने मीठे अक्षरोंमें इस कथाका वर्णनकर पुनः रामचन्द्रसे उन्होंने ये बातें कहीं ॥ १ ॥ हे वीर, पहले अयोध्याके राजा सगर नामक एक राजा थे, वे बड़े धर्मात्मा थे, पर पुत्र न होनेके कारण पुत्रकी प्राप्तिकी कामना करते थे ॥२॥ राजा सगरकी बड़ी स्त्रीका नाम केशिनी था, ये विदर्भराज-की कन्या थीं, बड़ीही धर्मिष्ठ और सत्यवादिनी थीं ॥ ३ ॥ सगरकी दूसरी स्त्रीका नाम सुमति था, ये अरिष्टनेमिकी कन्या और सुपर्णकी बहिन थीं ॥ ४ ॥ उन दोनों स्त्रियोंके साथ महाराज सगर

अथ वर्षशते पूर्णे तपसाराधितो मुनिः। सगराय वरं प्रादाद्भृगुः सत्यवतां वरः ॥ ६ ॥
अपत्यलाभः सुमहान्भविष्यति तवानघ। कीर्तिंचाप्रतिमां लोके प्राप्स्यसे पुरुषर्षभ ॥ ७ ॥
एका जनयिता तात पुत्रं वंशकरं तव। षष्टिं पुत्र सहस्राणि अपरा जनयिष्यति ॥ ८ ॥
भाषमाणं नरव्याघ्रं राजपुत्र्यौ प्रसाद्य तम्। ऊचतुः परमप्रीते कृतांजलिपुटे तदा ॥ ९ ॥
एकः कस्याःसुतो ब्रह्मन्का बहूञ्जनयिष्यति। श्रोतुमिच्छावहे ब्रह्मन्सत्यमस्तु वचस्तव ॥१०॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा भृगुः परम धार्मिकः। उवाच परमां वाणीं स्वच्छन्दोऽत्र विधीयताम्॥११॥
एको वंशकरो वास्तु बहवो वा महाबलाः। कीर्तिमन्तो महोत्साहाः का वा कं वरमिच्छति॥१२॥
मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी रघुनन्दन। पुत्रं वंशकरं राम जग्राह नृपसन्निधौ ॥१३॥
षष्टिं पुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तदा। महोत्साहान्कीर्तिमतो जग्राह सुमतिःसुतान् ॥१४॥
प्रदक्षिणमृषिं कृत्वा शिरसाभिप्रणम्य तम्। जगाम स्वपुरं राजा सभार्यो रघुनन्दन ॥१५॥
अथ काले गते तस्य ज्येष्ठा पुत्रं व्यजायत। असमञ्ज इति ख्यातं केशिनी सगरात्मजम् ॥१६॥
सुमतिस्तु नरव्याघ्र गर्भतुम्बं व्यजायत। षष्टिः पुत्रसहस्राणि तुम्बभेदाद्विनिःसृता ॥१७॥
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु धात्र्यस्तान्समवर्धयन्। कालेन महता सर्वे यौवनं प्रतिपेदिरे ॥१८॥
अथ दीर्घेण कालेन रूपयौवनशालिनः। षष्टिः पुत्रसहस्राणि सगरस्याभवंस्तदा ॥१९॥
स च ज्येष्ठो नरश्रेष्ठः सगरस्यात्मसंभवः। बालान्गृहीत्वा तु जले सरय्वा रघुनन्दन ॥२०॥

हिमवान् पर्वतपर गये और वे भृगु ऋषिके रहनेवाले पर्वतपर तपस्या करने लगे ॥५॥ सौ वर्ष बीतनेपर सगरकी तपस्यासे भृगु मुनि प्रसन्न हुए और सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ उन ऋषिने उनको वर दिया ॥६॥ हे निष्पाप, तुम्हें पुत्र होंगे, हे पुरुषश्रेष्ठ, संसारमें तुम्हारी बड़ी कीर्ति होगी ॥७॥ मुनिने कहा-राजन्, आपकी एक स्त्रीको एकही पुत्र होगा और उससे वंशकी वृद्धि होगी, दूसरी स्त्री साठ हजार पुत्र उत्पन्न करेगी। नरश्रेष्ठ भृगु ऐसा कह रहे थे, रानियोंने उनकी स्तुति की और वे हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक बोलीं ॥८॥ महाराज, किसके एक पुत्र होगा और किसके बहुत, यह हमलोग जानना चाहती हैं आपका वचन सत्य हो ॥१०॥ उन दोनों रानियोंकी वह बात सुनकर परम धार्मिक भृगु बोले-जैसा चाहो वैसा कर लो, जो एक पुत्र उत्पन्न करना चाहे वह एक उत्पन्न करे और जो बहुत उत्पन्न करना चाहे वह बहुत उत्पन्न करे ॥११॥ एक लड़का वंश बढ़ानेवाला होगा और बहुत लड़के बली, कीर्तिमान् और उत्साही होंगे, इन दोनोंमेंसे कौन वर तुममें कौन चाहती है ॥१२॥ रामचन्द्र, मुनिके वचन सुनकर केशिनीने राजाके सामने वंश चलानेवाला एक पुत्र मांगा ॥१३॥ तब सुपर्णकी बहिन सुमतिने महाउत्साही और कीर्तिमान साठ हजार पुत्र मांगे ॥ १४ ॥ मुनिकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करके राजा सगर अपनी स्त्रियोंके साथ अपने नगरमें गये ॥१५॥ कुछ दिनोंके बीतनेपर सगरकी जेठी महारानी केशिनीने असमञ्ज नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥१६॥ सुमतिने एक गर्भ-तुम्ब (गर्भकी पोटली) जनमाया, जिसके फोड़नेपर उससे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए ॥१७॥ घीसे भरे घड़ेमें रखकर, धात्रियोंने उन बालकोंका पालन किया। बहुत दिनोंके बाद वे सब युवा हुए ॥१८॥ समय पाकर सगरके वे साठ हजार पुत्र युवा हुए वे बड़े रूपवान् थे ॥१९॥ राजा सगरका

प्रक्षिप्य प्राहसन्नित्यं मज्जतस्तान्निरीक्ष्य वै । एवं पापसमाचारः सज्जनप्रतिबाधकः ॥२१॥
पौराणामहिते युक्तः पित्रा निर्वासितः पुरात् । तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान्॥२२॥
संमतः सर्वलोकस्य सर्वस्यापि प्रियंवदः । ततः कालेन महता मतिः समभिजायत ॥२३॥
सगरस्य नरश्रेष्ठ यजेयमिति निश्चिता । स कृत्वा निश्चयं राजा सोपाध्यायगणस्तदा ।
यज्ञकर्मणि वेदज्ञो यष्टुं समुपचक्रमे ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ३९

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा कथान्ते रघुनन्दनः । उवाच परमप्रीतो मुनिं दीप्तमिवानलम् ॥ १ ॥
श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते विस्तरेण कथामिमाम । पूर्वजो मे कथं ब्रह्मन्यज्ञं वै समुपाहरत ॥ २ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितः । विश्वामित्रस्तु काकुत्स्थमुवाच प्रहसन्निव ॥ ३ ॥
श्रूयतां विस्तरो राम सगरस्य महात्मनः । शंकरश्वशुरो नम्ना हिमवानिति विश्रुतः ॥ ४ ॥
विन्ध्यपर्वतमासाद्य निरीक्षेते परस्परम । तयोर्मध्ये समभवद्यज्ञः स पुरुषोत्तम ॥ ५ ॥
स हि देशो नरव्याघ्र प्रशस्तो यज्ञकर्मणि । तस्याश्वचर्यां काकुत्स्थ दृढधन्वा महारथः ॥ ६ ॥
अंशुमानकरोत्तात सगरस्य मते स्थितः । तस्य पर्वणि तं यज्ञं यजमानस्य वासवः ॥ ७ ॥

जेठा लड़का असमञ्ज लड़कोंको लेकर सरयूके जलमें ॥ २० ॥ डाल देता और जब वे डूबने लगते तब वह हँसता । वह ऐसा पापी और सज्जनोंका विघ्नकर्ता हुआ ॥ २१ ॥ वह नगरनिवासियोंको सदा दुःख दिया करता था, इसलिए पिताने उसे अपने नगरसे निकाल दिया, उस असमञ्जका एक पराक्रमी पुत्र था, उसका नाम अंशुमान था ॥ २२ ॥ वह सबको प्रिय था, सबसे प्रिय बोलता था ॥ २३ ॥ इस प्रकार बहुत दिन बीतनेके पश्चात् सगर राजाने निश्चय किया कि मैं यज्ञ करूँ । इस प्रकार निश्चय करके वेदज्ञ उपाध्यायोंके साथ वे यज्ञ करनेके लिए तयार हुए ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अड़तीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३८॥

विश्वामित्रके वचन सुनकर कथाके अन्तमें अत्यन्त प्रसन्न रामचन्द्र अग्निके समान प्रकाशमान मुनिसे बोले ॥ १ ॥ महाराज, आपका कल्याण हो, मैं यह सम्पूर्ण कथा सुनना चाहता हूँ कि मेरे पूर्वजोंने किस प्रकार यज्ञ किया ॥ २ ॥ रामचन्द्रके कौतूहल-युक्त वचन सुनकर वे हँसे और उनसे कहने लगे ॥ ३ ॥ राम, महात्मा सगरकी कथा विस्तारके साथ सुनो, महादेवके श्वशुर हिमवान् नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥ वह और विन्ध्य पर्वत दोनों पास-पास हैं, मानों वे एक दूसरेको देखते हैं । हे पुरुषोत्तम, यह यज्ञ उन्हीं पर्वतोंके बीचमें हुआ था ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ, यज्ञके लिए वह स्थान बहुत ही उत्तम है । उस यज्ञके अश्वकी रक्षाका भार दृढ़ धनुर्धारी और महारथ ॥ ६ ॥ सगरकी आज्ञाओंको माननेवाले अंशुमान्ने ग्रहण किया । पर्वमें यज्ञ करनेवाले यजमान सगरके यज्ञीय अश्व-

राक्षसीं तनुमास्थाय यज्ञियाश्वमपाहरत् । ह्रियमाणे तु काकुत्स्थ तस्मिन्नश्वे महात्मनः ॥ ८ ॥
उपाध्यायगणाः सर्वे यजमानमथाब्रुवन् । अयं पर्वणि वेगेन यज्ञियाश्वोऽपनीयते ॥ ९ ॥
हर्तारं जहि काकुत्स्थ हयश्चैवोपनीयताम् । यज्ञच्छिद्रं भवत्येतत्सर्वेषामशिवाय नः ॥१०॥
तत्तथा क्रियतां राजन्यज्ञोऽच्छिद्रःकृतो भवेत् । सोपाध्यायवचः श्रुत्वा तस्मिन्सदसि पार्थिवः ॥११॥
षष्टिं पुत्रसहस्राणि वाक्यमेतदुवाच ह । गतिं पुत्रा न पश्यामि रक्षसां पुरुषर्षभाः ॥१२॥
मन्त्रपूतैर्महाभागैरास्थितोऽपि महाक्रतुः । तद्गच्छथ विचिन्वध्वं पुत्रका भद्रमस्तु वः ॥१३॥
समुद्रमालिनीं सर्वां पृथिवीमनुगच्छथ । एकैकं योजनं पुत्रा विस्तारमभिगच्छत ॥१४॥
यावत्तुरगसंदर्शस्तावत्खनत मेदिनीम् । तमेव हयहर्तारं मार्गमाणा ममाज्ञया ॥१५॥
दीक्षितः पौत्रसहितः सोपाध्यायगणस्त्वहम् । इह स्थास्यामि भद्रं वो यावत्तुरगदर्शनम् ॥१६॥
ते सर्वे हृष्टमनसो राजपुत्रा महाबलाः । जग्मुर्महीतलं राम पितुर्वचनयन्त्रिताः ॥१७॥
योजनायामविस्तारमेकैको धरणीतलम् । बिभिदुः पुरुषव्याघ्रा वज्रस्पर्शसमैर्भुजैः ॥१८॥
शूलैरशनिकल्पैश्च हलैश्चापि सुदारुणैः । भिद्यमाना वसुमती ननाद रघुनन्दन ॥१९॥
नागानां वध्यमानानामसुराणां च राघव । राक्षसानां दुराधर्षं सत्त्वानां निनदोऽभवत् ॥२०॥
योजनानां सहस्राणि षष्टिं तु रघुनन्दन । बिभिदुर्धरणीं राम रसातलमनुत्तमम् ॥२१॥

को इन्द्रने ॥ ७ ॥ राक्षसका वेष बनाकर चुरा लिया । महात्मा सगरके उस घोड़ेके चुराये जानेपर ॥ ८ ॥ सभी उपाध्यायोंने यजमानसे कहा-इस यज्ञीय घोड़ेको कोई शीघ्रता पूर्वक चुराये लेजारहा है ॥ ९ ॥ घोड़ा लेजानेवालेको मारो और घोड़ा ले आओ, यह यज्ञका विघ्न है और इससे हम सब लोगोंको अकल्याण होगा ॥१०॥ राजन्, आप ऐसा करें, जिससे यह यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो । सभामें उपाध्यायोंके ये वचन सुनकर राजाने ॥ ११ ॥ अपने साठ हजार पुत्रोंसे कहा हे पुरुषश्रेष्ठों, यह काम (घोड़ा चुराना) यदि राक्षसोंने किया हो तो घोड़ा लौटा लाना हमारे वशकी बात नहीं ॥१२॥ वैदिक मंत्रोंके द्वारा पवित्र यह यज्ञ हमने प्रारंभ किया है । मायावी राक्षसोंने इसमें भी यदि विघ्न किया तो उनसे पार पाना हमारे लिए कठिन है, इसलिए तुम लोग जाओ और घोड़ेको ढूंढ़ो । तुमलोगोंका कल्याण हो ॥ १३ ॥ समुद्रसे घिरी हुई इस समस्त पृथिवीको ढूँढ़ो, पुनः एक एक योजनपर बँटकर घोड़ेको ढूँढ़ो, ॥ १४ ॥ जब तक घोड़ा न देखो, तब तक उस घोड़ेके चोरका मेरी आज्ञासे पता लगानेके लिए पृथिवीको खोदो ॥ १५ ॥ मैंने यज्ञकी दीक्षा ली है, मैं पौत्र और उपाध्यायोंके साथ, यहीं रहूँगा, जब तक कि घोड़ा दिखायी न पड़े ॥ १६ ॥ वे महाबली राजपुत्र बड़े प्रसन्न हुए और पिताकी आज्ञासे घोड़ा ढूँढ़नेके लिए पृथिवीपर गये ॥१७॥ उन पुरुषसिंहोंने वज्रके समान अपनी कठिन भुजाओंसे एक एक योजनकी लम्बाईमें पृथिवी खोदी ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्र, वज्रके समान शूल (अस्त्र) और भयानक हलोंके द्वारा जब पृथिवी खोदी जाने लगी, तब वह चिल्लाने लगी ॥ १९ ॥ उस समय पृथिवीके खुदनेसे पृथिवीतल-वासी नाग असुर और बड़े बली राक्षसोंको भी पीड़ा हुई । उनमें बहुतसे मारे गये, अतएव वे लोग बड़े करुणस्वरसे चिल्लाने लगे ॥२०॥ हे रामचन्द्र,

एवं पर्वतसंबाधं जम्बूद्वीपं नृपात्मजाः। खनन्तो नृपशार्दूल सर्वतः परिचक्रमुः ॥२२॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सासुराः सहपन्नगाः। संभ्रान्तमनसः सर्वे पितामहमुपागमन् ॥२३॥
ते प्रसाद्य महात्मानं विषण्णवदनास्तदा। ऊचुः परमसंत्रस्ताः पितामहमिदं वचः ॥२४॥
भगवन्पृथिवी सर्वा खन्यते सगरात्मजैः। बहवश्च महात्मानो वध्यन्ते जलचारिणः ॥२५॥
अयं यज्ञहरोऽस्माकमनेनाश्वोऽपनीयते। इति ते सर्वभूतानि हिंसन्ति सगरात्मजाः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ४०

देवतानां वचः श्रुत्वा भगवान्वै पितामहः। प्रत्युवाच सुसंत्रस्तान्कृतान्तबलमोहितान् ॥ १ ॥
यस्येयं वसुधा कृत्स्ना वासुदेवस्य धीमतः। महिषी माधवस्यैषा स एव भगवान्प्रभुः ॥ २ ॥
कापिलं रूपमास्थाय धारयत्यनिशं धराम्। तस्य कोपाग्निना दग्धा भविष्यन्ति नृपात्मजाः ॥ ३ ॥
पृथिव्याश्चापि निर्भेदो दृष्ट एव सनातनः। सगरस्य च पुत्राणां विनाशोऽदीर्घदर्शिनाम् ॥ ४ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा त्रयस्त्रिंशदरिंदमाः। देवाः परमसंहृष्टाः पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ ५ ॥
सगरस्य च पुत्राणां प्रादुरासीन्महास्वनः। पृथिव्यां भिद्यमानायां निर्घातसमनिःस्वनः ॥ ६ ॥

इस प्रकार उन राजपुत्रोंने उत्तम रसातलको देखनेके लिए साठ हजार योजन तक पृथिवी खोद डाली ॥ २१ ॥ वे राजपुत्र पर्वतोंसे भरे हुए जम्बूद्वीपको खोदकर उसके चारो ओर घूम आये ॥ २२ ॥ तब घबड़ाकर देवता, गन्धर्व, असुर, नाग आदि ब्रह्माके पास पहुँचे ॥ २३ ॥ वे बहुत घबड़ाये हुए थे, उनका मुँह उतरा हुआ था। ब्रह्माकी स्तुति कर, और उनको प्रसन्न जानकर वे लोग बोले ॥ २४ ॥ भगवन्, सगरके पुत्र समूची पृथिवी खोद रहे हैं और जलचारी अनेक महात्माओंको मार रहे हैं ॥ २५ ॥ यह हमारे यज्ञका घातक है, इसने हमारा घोड़ा चुराया है. इस आशंकासे वे सगरके पुत्र सब प्राणियोंको मार रहे हैं ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥३९॥

देवताओंकी बात सुनकर भगवान् पितामहने यमराजके दूत-रूपी सगरपुत्रोंकी सेनासे घबड़ाये हुए उनको इस प्रकार उत्तर दिया ॥ १ ॥ सबकी बुद्धिको प्रेरित करनेवाले जिस वासुदेवकी यह पृथिवी है, उन्हींकी यह महारानी हैं, वेही इसके स्वामी हैं ॥२॥ वे ही भगवान् कपिलका रूप धरकर सदा पृथिवीको धारण करते हैं, उन्हींके कोपकी आगसे वे सब सगरपुत्र जल जायँगे ॥३॥ पृथिवीका खोदाजाना तो स्वाभाविक है, यह प्रत्येक कल्पमें होता आया है और मन्द बुद्धि निश्चित सगरपुत्रोंका विनाश भी है ॥ ४ ॥ पितामहके वचन सुनकर शत्रुसंहारकारी देवता बहुत प्रसन्न हुए और वे अपने-अपने स्थानको गये ॥ ५ ॥

सगरके पुत्र पृथिवी खोद रहे थे, उस समय वज्र गिरनेके समान बड़ा भयानक शब्द उनके

ततो भित्त्वा महीं सर्वां कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्। सहिताः सागराः सर्वे पितरं वाक्यमब्रुवन् ॥ ७ ॥
परिक्रान्ता मही सर्वा सत्त्ववन्तश्च सूदिताः। देवदानवरक्षांसि पिशाचोरगपन्नगाः ॥ ८ ॥
न च पश्यामहेऽश्वं ते अश्वहर्तारमेव च। किं करिष्याम भद्रं ते बुद्धिरत्र विचार्यताम् ॥ ९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा पुत्राणां राजसत्तमः। समन्युरब्रवीद्वाक्यं सगरो रघुनन्दन ॥१०॥
भूयः खनत भद्रं वो विभेद्य वसुधातलम्। अश्वहर्तारमासाद्य कृतार्थाश्च निवर्तत ॥११॥
पितुर्वचनमासाद्य सगरस्य महात्मनः। षष्टिः पुत्रसहस्राणि रसातलमभिद्रवन् ॥१२॥
खन्यमाने ततस्तस्मिन्ददृशुः पर्वतोपमम्। दिशागजं विरूपाक्षं धारयन्तं महीतलम् ॥१३॥
सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन। धारयामास शिरसा विरूपाक्षो महागजः ॥१४॥
यदा पर्वणि काकुत्स्थ विश्रमार्थं महागजः। खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पस्तदा भवेत् ॥१५॥
ते तं प्रदक्षिणं कृत्वा दिशापालं महागजम्। मानयन्तो हि ते राम जग्मुर्भित्त्वा रसातलम् ॥१६॥
ततःपूर्वां दिशं भित्त्वा दक्षिणां बिभिदुः पुनः। दक्षिणस्यामपि दिशि ददृशुस्ते महागजम् ॥१७॥
महापद्मं महात्मानं सुमहत्पर्वतोपमम्। शिरसा धारयन्तं गां विस्मयं जग्मुरुत्तमम् ॥१८॥
ते तं प्रदक्षिणं कृत्वा सगरस्य महात्मनः। षष्टिः पुत्रसहस्राणि पश्चिमां बिभिदुर्दिशम् ॥१९॥
पश्चिमायामपि दिशि महान्तमचलोपमम्। दिशागजं सौमनसं ददृशुस्ते महाबलाः ॥२०॥

आगे हुआ ॥ ६ ॥ पृथिवी खोदकर और उसके चारो ओर घूमकर वे सगरके पुत्र लौट आये और उन सबोंने पितासे कहा ॥ ७ ॥ समूची पृथिवी ढूँढ़ डाली, देवता, दानव, राक्षस, पिशाच और उरग आदिमें जो बलवान थे उन्हें मार डाला ॥ ८ ॥ पर, आपके घोड़ेको न देखा, न घोड़ा चुरानेवालेको ही देखा। हमलोग क्या करें, कृपा कर हमलागोंका कर्तव्य निश्चय कर दीजिए ॥९॥ रामचन्द्र, राजश्रेष्ठ सगरने पुत्रोंके ये वचन सुनकर बड़े क्रोधसे कहा ॥ १० ॥ तुम्हारा कल्याण हो फिर खोदो, पृथिवीको फाड़ डालो। घोड़ा चुरानेवालेको पकड़ो और इस प्रकार सफल होकर लौटो ॥ ११ ॥ महात्मा पिताके ये वचन सुनकर साठों हज़ार पुत्र पृथिवीकी ओर दौड़े ॥ १२ ॥ पृथिवीतलके खोदनेके समय पर्वतके समान ऊँचा विरूपाक्ष नामक दिग्गजको उनलोगोंने देखा, वह पृथिवीको धारण किये हुए था ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, वह विरूपाक्ष नामक बड़ा हाथी, पर्वत, वनके साथ इस समूची पृथिवीको माथापर धरे हुए था ॥ १४ ॥ हे राम, विश्रामके लिए जिस समय वह हाथी दुःखसे अपना सिर हिलाता है, उस समय भूमिकम्प होने लगता है, पृथिवी डोलने लगती है ॥ १५ ॥ सगरपुत्रोंने दिक्पाल उस महागजकी प्रदक्षिणा की उसका आदर किया, पुनः वे पृथिवीको फोड़कर रसातलमें गये ॥ १६ ॥ इस प्रकार पूर्व दिशाको खोद-कर वे लोग दक्षिण दिशाकी ओर गये। वहाँ भी उनलोगोंने एक बहुत बड़ा हाथी देखा ॥ १७ ॥ उसका महापद्म नाम था और वह बहुत बड़े पर्वतके समान ऊँचा था, उसने पृथिवीको मस्तकसे धारण किया था, उसको देखकर उन राजपुत्रोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १८ ॥ सगरके उन साठ हज़ार पुत्रोंने उस दिग्गजकी प्रदक्षिणा की और वे पश्चिम दिशाको तोड़ने लगे ॥ १९ ॥ पश्चिम दिशामें भी उनलोगोंने एक बहुत बड़े पर्वतके समान हाथी देखा। इस दिग्गज का नाम

ते तं प्रदक्षिणं कृत्वा पृष्ट्वा चापि निरामयम् । खनन्तः समुपाक्रान्ता दिशं सोमवतीं तदा ॥२१॥
उत्तरस्यां रघुश्रेष्ठ ददृशुर्हिमपाण्डुरम् । भद्रं भद्रेण वपुषा धारयन्तं महीमिमाम् ॥२२॥
समालभ्य ततः सर्वे कृत्वा चैनं प्रदक्षिणम् । षष्टिः पुत्रसहस्राणि बिभिदुर्वसुधातलम् ॥२३॥
ततः प्रागुत्तरां गत्वा सागराः प्रथितां दिशम् । रोषादभ्यखनन्सर्वे पृथिवीं सगरात्मजाः ॥२४॥
ते तु सर्वे महात्मानो भीमवेगा महाबलाः । ददृशुः कपिलं तत्र वासुदेवं सनातनम् ॥२५॥
हयं च तस्य देवस्य चरन्तमविदूरतः । प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्वे ते रघुनन्दन ॥२६॥
ते तं यज्ञहनं ज्ञात्वा क्रोधपर्याकुलेक्षणाः । खनित्रलाङ्गलधरा नानावृक्षशिलाधराः ॥२७॥
अभ्यधावन्त संक्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रुवन् । अस्माकं त्वं हि तुरगं यज्ञियं हृतवानसि ॥२८॥
दुर्मेधस्त्वं हि संप्राप्तान्विद्धि नः सगरात्मजान् । श्रुत्वा तद्वचनं तेषां कपिलो रघुनन्दन ॥२९॥
रोषेण महताविष्टो हुंकारमकरोत्तदा । ततस्तेनाप्रमेयेण कपिलेन महात्मना ।
भस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ सगरात्मजाः ॥ ३० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ४१

पुत्रांश्चिरगताञ्ज्ञात्वा सगरो रघुनन्दन । नप्तारमब्रवीद्राजा दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ १ ॥
शूरश्च कृतविद्यश्च पूर्वैस्तुल्योऽसि तेजसा । पितॄणां गतिमन्विच्छ येन चाश्वोऽपवाहितः ॥ २ ॥

सौमनस था ॥२०॥ उनलोगोंने उस दिग्गजकी प्रदक्षिणा की और उसकी कुशल पूछी, पुनः पृथिवी खोदते हुए वे उत्तर दिशाकी ओर गये ॥२१॥ उत्तर दिशामें भी बर्फके समान श्वेत हाथी उनलोगोंने देखा। उसका भद्र नाम था। वह बड़ा ही सुन्दर था और पृथिवीको धारण किए हुए था ॥२२॥ उसका स्पर्श और प्रदक्षिणा करके वे साठ हजार वीर पृथिवीको खोदने लगे ॥२३॥ प्रसिद्ध उत्तर दिशामें आकर वे सगरके पुत्र बड़े क्रोधसे पृथिवी खोदने लगे ॥२४॥ बड़े उद्योगी, महाबलवान और अत्यन्त वेगवान उन सगरके पुत्रोंने वहाँ (उत्तर दिशामें) सनातन भगवान वासुदेवको कपिलके रूपमें बैठे देखा ॥२५॥ और, उनसे थोड़ीही दूरपर घोड़ेको चरते हुए देखा। हे रामचन्द्र, इससे वे सब बहुत प्रसन्न हुए ॥२६॥ उनको ही लोगोंने यज्ञका विघातक समझा। क्रोधसे उनकी आँखे लाल हो गयीं। खनतीं, हल तथा अनेकों वृक्ष और पत्थर लेकर ॥२७॥ बड़े क्रोधसे वे दौड़े और उन लोगोंने कहा—ठहरो, ठहरो, तुमने हमलोगोंके यज्ञका घोड़ा चुराया है ॥ २८ ॥ मूर्ख, हमलोग, सगरके पुत्र, आगये हैं, यह तू जान ले। हे रामचन्द्र, उनके ये वचन सुनकर कपिलने ॥२९॥ बड़े क्रोधसे हुंकार किया। उन परम प्रभावशाली महात्मा कपिलके हुंकारसे वे सगरके पुत्र भस्म हो गये ३०

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४० ॥

हे रामचन्द्र, पुत्रोंके आनेमें बिलंब देखकर राजा सगरने अपने पौत्र अंशुमानसे कहा, जो स्वयं अपने तेजसे ही तेजस्वी था ॥१॥ तुम वीर हो, विद्वान हो और पूर्वजोंके समान तेजस्वी हो। तुम

अन्तर्भौमानि सत्त्वानि वीर्यवन्ति महान्ति च । तेषां तु प्रतिघातार्थं सासिं गृह्णीष्व कार्मुकम् ॥ ३ ॥
अभिवाद्याभिवाद्यांस्त्वं हत्वा विघ्नकरानपि । सिद्धार्थः संनिवर्तस्व मम यज्ञस्य पारगः ॥ ४ ॥
एवमुक्तोऽशुमान्सम्यक्सगरेण महात्मना । धनुरादाय खड्गं च जगाम लघुविक्रमः ॥ ५ ॥
स खातं पितृभिर्मार्गमन्तर्भौमं महात्मभिः । प्रापद्यत नरश्रेष्ठ तेन राज्ञाभिचोदितः ॥ ६ ॥
देवदानवरक्षोभिः पिशाचपतगोरगैः । पूज्यमानं महातेजा दिशागजमपश्यत ॥ ७ ॥
स तं प्रदक्षिणं कृत्वा पृष्ट्वा चैव निरामयम् । पितॄन्स परिपप्रच्छ वाजिहर्तारमेव च ॥ ८ ॥
दिशागजस्तु तच्छ्रुत्वा प्रत्युवाच महामतिः । आसमञ्ज कृतार्थस्त्वं सहाश्वः शीघ्रमेष्यसि ॥ ९ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वानेव दिशागजान् । यथाक्रमं यथान्यायं प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥१०॥
तैश्च सर्वैर्दिशापालैर्वाक्यज्ञैर्वाक्यकोविदैः । पूजितः सहयश्चैवागन्तासीत्यभिचोदितः ॥११॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम लघुविक्रमः । भस्मराशीकृता यत्र पितरस्तस्य सागराः ॥१२॥
स दुःखवशमापन्नस्त्वसमञ्जसुतस्तदा । चुक्रोश परमार्तस्तु वधात्तेषां सुदुःखितः ॥१३॥
यज्ञियं च हयं तत्र चरन्तमविदूरतः । ददर्श पुरुषव्याघ्रो दुःखशोकसमन्वितः ॥१४॥
स तेषां राजपुत्राणां कर्तुकामो जलक्रियाम् । स जलार्थी महातेजा न चापश्यज्जलाशयम् ॥१५॥
विसार्य निपुणां दृष्टिं ततोऽपश्यत्खगाधिपम् । पितॄणां मातुलं राम सुपर्णमनिलोपमम् ॥१६॥

अपने पिताके तुल्य पिताके भाइयोंको ढूँढो और घोड़ेके चोरको भी ढूँढो ॥ २ ॥ पृथिवीतलके प्राणी बड़े पराक्रमी और विशालकाय होते हैं । उनको मारने के लिये तलवार और धनुष लेलो ॥ ३ ॥ बड़ोंको प्रणाम कर, विघ्न करनेवालोंको मारकर, सफल होकर लौटो । तुम मेरे यज्ञका पार लगानेवाले बनो ॥४॥ इस प्रकार महात्मा सगरने अंशुमानसे कहा । धनुष और तलवार लेकर वह बड़ी शीघ्रतासे चला ॥ ५ ॥ राजा सगरकी आज्ञासे अपने पिताओं द्वारा खोदे हुए पृथिवीके भीतरी रास्तेपर वह पहुँचा ॥६॥ उसमें महातेजस्वी अंशुमानने दिग्गजको देखा, जिसकी पूजा देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, पक्षी और नाग आदि करते थे ॥७॥ अंशुमानने उस दिग्गजकी प्रदक्षिणा की और उसकी कुशल पूछी । अपने पिताओं तथा घोड़ा चुरानेवालेके विषयमें भी पूछा ॥ ८ ॥ महाबुद्धिमान उस दिग्गजने उत्तर दिया—हे असमंजके पुत्र, तुम सफल होओगे । घोड़ेके साथ शीघ्र लौटोगे ॥ ९ ॥ उस दिग्गजके वचन सुनकर अंशुमानने सब दिशाओंके, सब दिग्गजोंसे यथा क्रम विधिपूर्वक, पूछनेका निश्चय किया ॥१०॥ वचनोंका अर्थ समझनेवाले और बोलनेमें निपुण, उन सब दिग्गजोंने अंशुमानके द्वारा पूजित होनेपर यही कहा कि तुम घोड़ेके साथ लौट आओगे ॥११॥ उनके वचन सुनकर अंशुमान वहाँ गये, जहाँ जले हुए उनके पिताओंकी भस्म पड़ी हुई थी ॥ १२ ॥ अपनी पिताओंकी मृत्युसे उनको बड़ा दुःख हुआ, दुःखसे वे पृथिवीमें लोटकर रोने लगे ॥ १३ ॥ दुःख और शोकसे उद्विग्न उस पुरुषश्रेष्ठने वहाँसे थोड़ी दूरपर, चरते हुए, उस यज्ञके घोड़ेको देखा ॥१४॥ अंशुमानने अपने पिताओंको जलांजलि देना निश्चय किया । उन्होंने जल ढूँढा, पर वहाँ कहीं जल दिखायी न पड़ा ॥१५॥ बड़ी सावधानीसे आँख फैलाकर उन्होंने चारोंओर देखा, वायुके समान वेगवान पक्षिराज गरुड़ उनको दिखायी पड़े जो उनके पिताओंके मामा थे ॥१६॥

स चैनमब्रवीद्वाक्यं वैनतेयो महाबलः । मा शुचः पुरुषव्याघ्र वधोऽयं लोकसंमतः ॥१७॥
कपिलेनाप्रमेयेण दग्धा हीमे महाबलाः । सलिलं नार्हमे प्राज्ञ दातुमेषां हि लौकिकम् ॥१८॥
गङ्गा हिमवतो ज्येष्ठा दुहिता पुरुषर्षभ । तस्यां कुरु महाबाहो पितॄणां सलिलक्रियाम् ॥१९॥
भस्मराशीकृतानेतान्प्लावयेल्लोकपावनी । तया क्लिन्नमिदं भस्म गङ्गया लोककान्तया ।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि स्वर्गलोकं गमिष्यति ॥२०॥
निर्गच्छाश्वं महाभाग संगृह्य पुरुषर्षभ । यज्ञं पैतामहं वीर निर्वर्तयितुमर्हसि ॥२१॥
सुपर्णवचनं श्रुत्वा सोंऽशुमानतिवीर्यवान् । त्वरितं हयमादाय पुनरायान्महातपाः ॥२२॥
ततो राजानमासाद्य दीक्षितं रघुनन्दन । न्यवेदयद्यथावृत्तं सुवर्णवचनं तथा ॥२३॥
तच्छ्रुत्वा घोरसंकाशं वाक्यमंशुमतो नृपः । यज्ञं निर्वर्तयामास यथाकल्पं यथाविधि ॥२४॥
स्वपुरं त्वगमच्छ्रीमानिष्टयज्ञो महीपतिः । गङ्गायाश्चागमे राजा निश्चयं नाध्यगच्छत ॥२५॥
अगत्वा निश्चयं राजा कालेन महता महान् । त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ४२

कालधर्मं गते राम सगरे प्रकृतीजनाः । राजानं रोचयामासुरंशुमन्तं सुधार्मिकम् ॥ १ ॥
स राजा सुमहानासीदंशुमान्रघुनन्दन । तस्य पुत्रो महानासीद्दिलीप इति विश्रुतः ॥ २ ॥

महाबलवान गरुड़ने अंशुमानसे कहा—हे पुरुषसिंह, शोक मत करो । यह वध लोकके कल्याणके लिए हुआ है ॥ १७ ॥ महाप्रभावशाली कपिलने इन बलवानोंको जलाया है । इनको तुम साधारण जल नहीं दे सकते ॥ १८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, हिमवानकी बड़ी कन्या गंगा नामकी नदी है । उसीमें तुम अपने पितरोंको जलांजलि दो ॥ १९ ॥ भस्म हुए इन तुम्हारे पितरोंको, लोकप्रिय और लोकपवित्र-कारिणी गंगा जब अपने जलसे भिगोवेगी, तब ये साठों हज़ार वीर स्वर्गलोकको जायँगे ॥ २० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ, घोड़ा लेकर तुम लौट आओ और अपने पितामहका यज्ञ समाप्त कराओ ॥२१॥ वैनतेयके कहनेके अनुसार, पराक्रमी अंशुमान, घोड़ा लेकर, शीघ्रही वहाँसे लौट आये ॥ २२ ॥ आकर यज्ञकी दीक्षा लिये हुए अपने पितामहसे, वहाँका समाचार और वैनतेयकी बातें सुनायीं ॥ २३ ॥ अंशुमानके ये कठोर वचन राजाने सुने । वैदिक विधानके अनुसार विधिपूर्वक उन्होंने यज्ञ समाप्त किया ॥ २४ ॥ यज्ञ समाप्त करके राजा अपने नगरमें गये । गंगाके आनेके संबन्ध में वे कुछ निश्चय न कर सके ॥ २५ ॥ बहुत दिनोंमें भी वे इसका कुछ निश्चय न कर सके । तदनन्तर, तीस हज़ार वर्ष प्रजापालन करके वे स्वर्गगामी हुए ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥४१॥

रामचन्द्र, राजा सगरके स्वर्गवासी होनेपर प्रजाने परमधार्मिक अंशुमानको राजा बनानेका निश्चय किया ॥१॥ रामचन्द्र, प्रजाके द्वारा राजा बनाये गये वे अंशुमान बहुत बड़े धार्मिक राजा थे ।

तस्मै राज्यं समादिश्य दिलीपे रघुनन्दन । हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ३ ॥
द्वात्रिंशच्छतसाहस्रं वर्षाणि सुमहायशाः । तपोवनगतो राजा स्वर्गं लेभे तपोधनः ॥ ४ ॥
दिलीपस्तु महातेजाः श्रुत्वा पैतामहं वधम् । दुःखोपहतया बुद्ध्या निश्चयं नाध्यगच्छत ॥ ५ ॥
कथं गङ्गावतरणं कथं तेषां जलक्रिया । तारयेयं कथं चैतानिति चिन्तापरोऽभवत् ॥ ६ ॥
तस्य चिन्तयतो नित्यं धर्मेण विदितात्मनः । पुत्रो भगीरथो नाम जज्ञे परमधार्मिकः ॥ ७ ॥
दिलीपस्तु महातेजा यज्ञैर्बहुभिरिष्टवान् । त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥ ८ ॥
अगत्वा निश्चयं राजा तेषामुद्धरणं प्रति । व्याधिना नरशार्दूल कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ९ ॥
इन्द्रलोकं गतो राजा स्वार्जितेनैव कर्मणा । राज्ये भगीरथं पुत्रमभिषिच्य नरर्षभः ॥१०॥
भगीरथस्तु राजर्षिर्धार्मिको रघुनन्दन । अनपत्यो महाराजः प्रजाकामः स च प्रजाः ॥११॥
मन्त्रिष्वाधाय तद्राज्यं गङ्गावतरणे रतः । तपो दीर्घं समातिष्ठद्गोकर्णे रघुनन्दन ॥१२॥
ऊर्ध्वबाहुः पञ्चतपा मासाहारो जितेन्द्रियः । तस्य वर्षसहस्राणि घोरे तपसि तिष्ठतः ॥१३॥
अतीतानि महाबाहो तस्य राज्ञो महात्मनः । सुप्रीतो भगवान्ब्रह्मा प्रजानां प्रभुरीश्वरः ॥१४॥
ततः सुरगणैः सार्धमुपागम्य पितामहः । भगीरथं महात्मानं तप्यमानमथाब्रवीत् ॥१५॥
भगीरथ महाराज प्रीतस्तेऽहं जनाधिप । तपसा च सुतप्तेन वरं वरय सुव्रत ॥१६॥

उनके पुत्र दिलीप भी बहुत प्रभावशाली और प्रसिद्ध थे ॥२॥ अपने पुत्र दिलीपको राज्य देकर हिमवान पर्वतके शिखरपर, अंशुमान बड़ा कठोर तप करने लगे ॥ ३ ॥ महायशस्वी राजा अंशुमान बत्तीस हज़ार वर्ष तपोवनमें रहकर स्वर्गगामी हुए ॥४॥ महातेजस्वी दिलीपने अपने पितामहोंके वधकी बात सुनी। दुःखसे उनकी बुद्धि जड़ हो गयी और वे कुछ निश्चय न कर सके ॥५॥ कैसे गंगा आवेंगी, कैसे इनकी जल-क्रिया होगी और कैसे इनका उद्धार होगा, यही उनकी प्रधान चिन्ता हुई ॥ ६ ॥ इस प्रकार नित्य चिन्ता करनेवाले और प्रसिद्ध धार्मिक उन राजाको भगीरथ नामको पुत्र हुआ, जो बड़ा ही धार्मिक था ॥७॥ तेजस्वी राजा दिलीपने अनेक यज्ञ किये और तीस हज़ार वर्ष तक उन्होंने राज्यशासन किया ॥८॥ पर, वे अपने पितरोंके उद्धारका कोई उपाय निश्चित नहीं कर सके। अन्तमें बीमार होकर वे स्वर्गगामी हुए ॥ ९ ॥ अपने पुत्र, भगीरथको राज्य देकर नरश्रेष्ठ राजा दिलीप अपने कर्मोंसे ही इन्द्रलोकमें गये ॥ १० ॥ हे रामचन्द्र, राजर्षि भगीरथ बड़े धार्मिक थे। कोई पुत्र न होनेके कारण, वे पुत्रप्राप्तिके लिए उपाय करनेकी इच्छा रखते थे ॥११॥ मंत्रियोंको राज्य देकर, गंगावतरणके लिए दृढप्रतिज्ञ राजा भगीरथने गोकर्ण नामक स्थानमें घोर तपस्या प्रारंभ की ॥१२॥ ऊर्ध्वबाहु होकर, पंचाग्नि लेकर, एक एक महीनेके उपवासके बाद भोजन कर, उस जितेन्द्रियने तपस्या की। ऐसी कठिन तपस्या करते हुए उनको एक हज़ार वर्ष बीत गये ॥ १३ ॥ उन महात्मा राजापर प्रजाओंके स्वामी भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ देवताओंके साथ पितामह ब्रह्मा वहाँ आये और तपस्या करते हुए, महात्मा भगीरथसे वे बोले ॥ १५ ॥ हे महाराज भगीरथ, हे जननायक, आपकी सुन्दर तपस्यासे मैं प्रसन्न हुआ हूँ। हे सुन्दरव्रत करनेवाले, वर माँगिए ॥ १६ ॥

तमुवाच महातेजाः सर्वलोकपितामहम् । भगीरथो महाबाहुः कृतांजलिपुटः स्थितः ॥१७॥
यदि मे भगवान्प्रीतो यद्यस्ति तपसः फलम् । सगरस्यात्मजाः सर्वे मत्तः सलिलमाप्नुयुः ॥१८॥
गङ्गायाः सलिलक्लिन्ने भस्मन्येषां महात्मनाम् । स्वर्गं गच्छेयुरत्यन्तं सर्वे च प्रपितामहाः ॥१९॥
देव याचे ह संतत्यै नावसीदेत्कुलं च नः । इक्ष्वाकूणां कुले देव एष मेऽस्तु वरः परः ॥२०॥
उक्तवाक्यं तु राजानं सर्वलोकपितामहः । प्रत्युवाच शुभां वाणीं मधुरां मधुराक्षराम् ॥२१॥
मनोरथो महानेष भगीरथ महारथ । एवं भवतु भद्रं ते इक्ष्वाकुकुलवर्धन ॥२२॥
इयं हैमवती ज्येष्ठा गङ्गा हिमवतः सुता । तां वै धारयितुं राजन्हरस्तत्र नियुज्यताम् ॥२३॥
गङ्गायाः पतनं राजन्पृथिवी न सहिष्यते । तां वै धारयितुं राजन्नान्यं पश्यामि शूलिनः ॥२४॥
तमेवमुक्त्वा राजानं गङ्गां चाभाष्य लोककृत् । जगाम त्रिदिवं देवैः सर्वैः सह मरुद्गणैः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशः सर्गः ४३

देवदेवे गते तस्मिन्सोऽङ्गुष्ठाग्रनिपीडिताम् । कृत्वा वसुमतीं राम वत्सरं समुपासत ॥ १ ॥
अथ संवत्सरे पूर्णे सर्वलोकनमस्कृतः । उमापतिः पशुपतिः राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम् । शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम् ॥ ३ ॥

महातेजस्वी, महाबाहु भगीरथने हाथ जोड़कर पितामहसे कहा ॥१७॥ भगवन्, यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, यदि आप मेरी तपस्यासे प्रसन्न हैं, तो मैं यह वर माँगता हूँ कि सगरके पुत्रोंको मैं जल दे सकूँ ॥१८॥ गंगाके जलसे जब उनकी भस्म भीगेगी, तभी वे मेरे प्रपितामह स्वर्ग पा सकेंगे ॥१९॥ देव, मैं पुत्रके लिये भी प्रार्थना करता हूँ, जिससे मेरे कुलका नाश न हो । इक्ष्वाकुकुलमें, इसी वर को आप अन्तिम वर समझें ॥ २० ॥ राजाके कहनेपर पितामह ब्रह्माने बहुत ही सुन्दर और मधुर वाणीमें उत्तर दिया ॥ २१ ॥ महावीर भगीरथ, यह तुम्हारा बहुत बड़ा मनोरथ है, पर यह पूर्ण होगा । हे इक्ष्वाकुकुलको बढ़ानेवाले, तुम्हारा कल्याण हो ॥ २२ ॥ यह गंगा हैमवती है अर्थात् हिमवानकी बड़ी कन्या है । उसको धारण करनेके लिए शिवको नियुक्त कीजिए ॥ २३ ॥ गंगाके गिरनेके वेगको यह पृथिवी न सह सकेगी । उसको धारण करनेकी शक्ति रखनेवाला शिवको छोड़कर मैं दूसरेको नहीं देख रहा हूँ ॥ २४ ॥ राजा भगीरथसे इस प्रकार कहकर और गंगाको भी भगीरथका मनोरथ पूर्ण करनेकी आज्ञा देकर, विधाता सब देवताओंके साथ स्वर्ग चले गये ॥२५॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बयालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४२ ॥

देवताओंके देव ब्रह्माके जानेपर राजा भगीरथने पृथिवीको एक अँगूठेसे दबाकर अर्थात् एक अँगूठेपर खड़े होकर एक वर्ष तक उपासना की ॥१॥ एक वर्षके पूरे होनेपर सबसे नमस्कृत उमापति महादेव राजासे बोले ॥२॥ नरश्रेष्ठ, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारा मनोरथ सिद्ध करूँगा, हिमवान्की

ततो हैमवती ज्येष्ठा सर्वलोकनमस्कृता । तदा सातिमहद्रूपं कृत्वा वेगं च दुःसहम् ॥ ४ ॥
आकाशादपतद्राम शिवे शिवशिरस्युत । अचिन्तयच्च सा देवी गङ्गा परमदुर्धरा ॥ ५ ॥
विशाम्यहं हि पातालं स्रोतसा गृह्य शंकरम् । तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तु भगवान्हरः ॥ ६ ॥
तिरोभावयितुं बुद्धिं चक्रे त्रिनयनस्तदा । सा तस्मिन्पतिता पुण्या पुण्ये रुद्रस्य मूर्धनि ॥ ७ ॥
हिमवत्प्रतिमे राम जटामण्डलगह्वरे । सा कथंचिन्महीं गन्तुं नाशक्नोद्यत्नमास्थिता ॥ ८ ॥
नैव सा निर्गमं लेभे जटामण्डलमन्ततः । तत्रैवाऽबभ्रमद्देवी संवत्सरगणान्बहून् ॥ ९ ॥
तामपश्यत्पुनस्तत्र तपः परममास्थितः । स तेन तोषितश्चासीदत्यन्तं रघुनन्दन ॥१०॥
विससर्ज ततो गङ्गां हरो बिन्दुसरः प्रति । तस्यां विसृज्यमानायां सप्त स्रोतांसि जज्ञिरे ॥११॥
ह्लादिनी पावनी चैव नलिनी च तथैव च । तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मुर्गङ्गाः शिवा जलाः शुभाः ॥१२॥
सुचक्षुश्चैव सीता च सिन्धुश्चैव महानदी । तिस्रश्चैता दिशं जग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभाः ॥१३॥
सप्तमी चान्वगात्तासां भगीरथरथं तदा । भगीरथोऽपि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः ॥१४॥
प्रायादग्रे महातेजा गंगा तं चाप्यनुव्रजत् । गगनाच्छंकरशिरस्ततो धरणिमागता ॥१५॥
असर्पत जलं तत्र तीव्रशब्दपुरस्कृतम् । मत्स्यकच्छपसङ्घैश्च शिशुमारगणैस्तथा ॥१६॥
पतद्भिः पतितैश्चैव व्यरोचत वसुंधरा । ततो देवर्षिगन्धर्वा यक्षसिद्धगणास्तथा ॥१७॥

कन्या गङ्गाको मैं अपने सिरपर रोकूँगा ॥ ३ ॥ तदनन्तर सब लोकोंसे पूजित हैमवती गङ्गा बहुत बड़ा रूप बनाकर बड़े दुःसह वेगसे ॥४॥ आकाशसे शिवके मस्तकपर गिरीं । परम दुर्धरा (जिनके वेगको रोकना कठिन है) गङ्गादेवीने सोचा ॥५॥ अपनी धाराओंके साथ महादेवको लेकर मैं पाताल में घुस जाऊँगी । गङ्गाका यह अभिमान जानकर भगवान् शिव बड़े क्रुद्ध हुए ॥ ६ ॥ त्रिनयन शिवने गङ्गाको छिपालेनेका विचार किया । वह पवित्र गङ्गा शिवके पवित्र मस्तकपर गिरीं ॥ ७ ॥ हिमवान्‌के समान, शिवकी जटाओंकी गुफामें गङ्गा गिरीं, पृथिवीपर जानेका उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, पर वे जा न सकीं ॥ ८ ॥ शिवकी जटासे गङ्गा नहीं निकल सकीं, वे वहीं बहुत वर्षों तक घूमती रहीं ॥ ९ ॥ गङ्गाको पृथिवीतलपर न देखकर भगीरथने पुनः तपस्या प्रारम्भ की । भगवान् शङ्कर उस तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १० ॥ तब शिवने बिन्दुसरमें (हिमवानकी तराईके एक तालाबका नाम) गंगाको छोड़ा, उस छोड़ी हुई गंगाकी सात धाराएँ हुईं ॥११॥ (उन धाराओंके नाम) ह्लादिनी, पावनी और नलिनी, ये सुन्दर जलवाली गंगाकी तीन धाराएँ पूर्व दिशाकी ओर गयीं ॥ १२ ॥ सुचक्षु, सीता और महानदी सिन्धु, ये पवित्र तीन धाराएँ होकर पश्चिम दिशाकी ओर गयीं ॥ १३ ॥ और उन धाराओंमेंकी सातवीं धारा भगीरथके पीछे-पीछे गयी । राजर्षि भगीरथ भी अलौकिक रथपर बैठकर ॥ १४ ॥ आगे-आगे चले और महातेजस्वी भगीरथके पीछे-पीछे आकाशसे गिरकर शिवके मस्तकपर और वहाँसे पृथिवीपर आयी हुई गंगा चलीं ॥ १५ ॥ बड़े शब्दसे जल चला, मछलियाँ, कछुए और मगरोंसे ॥ १६ ॥ जो जलमें गिर गये थे, पृथिवी शोभने लगी । तब देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और सिद्धोंने ॥ १७ ॥

व्यलोकयन्त ते तत्र गगनाद्गां गतां तदा । विमानैर्नगराकारैर्हयैर्गजवरैस्तदा ॥१८॥
पारिप्लवगताश्चापि देवतास्तत्र विष्ठिताः । तदद्भुतमिमं लोके गङ्गावतरमुत्तमम् ॥१९॥
दिदृक्षवो देवगणाः समीयुरमितौजसः । संपतद्भिः सुरगणैस्तेषां चाभरणौजसा ॥२०॥
शतादित्यमिवाभाति गगनं गततोयदम् । शिशुमारोरगगणैर्मीनैरपि च चञ्चलैः ॥२१॥
विद्युद्भिरिव विक्षिप्तैराकाशमभवत्तदा । पाण्डुरैः सलिलोत्पीडैः कीर्यमाणैः सहस्रधा ॥२२॥
शारदाभ्रैरिवाकीर्णं गगनं हंससंप्लवैः । क्वचिद्द्रुततरं याति कुटिलं क्वचिदायतम् ॥२३॥
विनतं क्वचिदुद्भूतं क्वचिद्याति शनैः शनैः । सलिलेनैव सलिलं क्वचिदभ्याहतं पुनः ॥२४॥
मुहुरूर्ध्वपथं गत्वा पपात वसुधां पुनः । तच्छंकरशिरोभ्रष्टं भ्रष्टं भूमितले पुनः ॥२५॥
व्यरोचत तदा तोयं निर्मलं गतकल्मषम् । तत्रर्षिगणगन्धर्वा वसुधातलवासिनः ॥२६॥
भवाङ्गपतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुः । शापात्प्रपतिता ये च गगनाद्वसुधातलम् ॥२७॥
कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः । धूतपापाः पुनस्तेन तोयेनाथ शुभान्विताः ॥२८॥
पुनराकाशमाविश्य स्वाँल्लोकान्प्रतिपेदिरे । मुमुदे मुदितो लोकस्तेन तोयेन भास्वता ॥२९॥
कृताभिषेको गङ्गायां बभूव गतकल्मषः । भगीरथो हि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः ॥३०॥
प्रायादग्रे महाराजस्तं गङ्गा पृष्ठतोऽन्वगात् । देवाः सर्षिगणाः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः ॥३१॥

देखा कि गंगा आकाशसे (अपने लोकसे) पृथिवीमें चली । नगरके समान बड़े-बड़े विमानों, हाथियों और घोड़ोंपरसे वे देखने लगे ॥ १८ ॥ पारिप्लव पर भी देवताओंने आश्रय लिया, यह गंगावतरण, लोकमें एक अद्भुत कार्य हुआ ॥१९॥ गंगावतरण देखनेके लिए पराक्रमी देवता इकट्ठे हुए । उन आये हुए देवताओंके आभूषणोंके प्रकाशसे ॥ २० ॥ ऐसा मालूम हुआ कि निर्मल आकाशमें सैकड़ों सूर्य उदित हुए हैं । शिशुमार, उरगगण और मीन (जलजंतु) की चंचलतासे ॥२१॥ मालूम होता था कि आकाश बिजलियोंसे भर गया है । उस समय वेगके कारण, गंगाके सफेद जल-फेन से समूचा आकाश भर गया ॥२२॥ जिस प्रकार शरदऋतुमें हंसोंसे और मेघोंसे आकाश भर जाता है, उसी तरह गंगाके जलसे भर गया । गंगाकी धारा, कहीं तेज, कहीं टेढ़ी और कहीं सीधी जा रही थी ॥२३॥ जल कहीं नम गया था, कहीं ऊँचा उठ गया था, कहीं धीरे-धीरे जाता था और कहीं जलका जलसेही टक्कर होता था ॥ २४ ॥ इससे थोड़ी दूर ऊपर जाकर जल पुनः पृथिवीपर गिरता था, शिवके मस्तकपर गिरा तथा वहाँसे गिरकर पृथिवीपर आया ॥ २५ ॥ वह विशुद्ध और दोष-रहित जल बड़ाही सुन्दर मालूम होता था । पृथिवीके निवासी, ऋषि और गन्धर्वोंने ॥२६॥ शिवजीके अंगसे गिरनेके कारण, पवित्र समझकर, उस जलका आचमन किया । जो देवता शापके कारण स्वर्गसे पृथिवीतलपर आ गये थे ॥२७॥ वे गंगामें स्नान कर निष्पाप हो गये । निष्पाप होकर उस जलके प्रभावसे पुनः पुण्यात्मा हुए ॥२८॥ और आकाशमें जाकर, अपने-अपने लोकोंमें गये । उस उज्ज्वल जलको देखकर लोग प्रसन्न हुए ॥ २९ ॥ और वे स्नान आदिसे पाप-रहित वे राजर्षि भगीरथ भी दिव्य रथपर बैठकर ॥३०॥ आगे-आगे चले और गंगा उनके पीछे चलीं ।

गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः । सर्पाश्चाप्सरसो राम भगीरथरथानुगाः ॥३२॥
गङ्गामन्वगमन्प्रीताः सर्वे जलचराश्च ये । यतो भगीरथो राजा ततो गङ्गा यशस्विनी ॥३३॥
जगाम सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी । ततो हि यजमानस्य जह्नोरद्भुतकर्मणः ॥३४॥
गङ्गां संप्लावयामास यज्ञवाटं महात्मनः । तस्यावलेपनं ज्ञात्वा क्रुद्धो जह्नुश्च राघव ॥३५॥
अपिबत्तु जलं सर्वं गङ्गायाः परमाद्भुतम् । ततो देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च सुविस्मिताः ॥३६॥
पूजयन्ति महात्मानं जह्नुं पुरुषसत्तमम् । गङ्गां चापि नयन्ति स्म दुहितृत्वे महात्मनः ॥३७॥
ततस्तुष्टो महातेजाः श्रोत्राभ्यामसृजत्प्रभुः । तस्माज्जह्नुसुता गङ्गा प्रोच्यते जाह्नवीति च ॥३८॥
जगाम च पुनर्गङ्गा भगीरथरथानुगा । सागरं चापि संप्राप्ता सा सरित्प्रवरा तदा ॥३९॥
रसातलमुपागच्छत्सिद्ध्यर्थं तस्य कर्मणः । भगीरथोऽपि राजर्षिर्गङ्गामादाय यत्नतः ॥४०॥
पितामहान्भस्मकृतानपश्यद्गतचेतनः । अथ तद्भस्मनां राशिं गङ्गासलिलमुत्तमम् ।
प्लावयत्पूतपाप्मानः स्वर्गं प्राप्ता रघूत्तम ॥४१॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

देवता, ऋषिगण, दैत्य, दानव, राक्षस, ॥३१॥ गन्धर्व, श्रेष्ठ यक्ष, किन्नर, बड़े बड़े और छोटे-छोटे साँप और अप्सराएँ भगीरथके रथके पीछे चलीं ॥३२॥ सब जलचर प्रसन्नतापूर्वक गंगाके पीछे-पीछे चले। जिधर-जिधर राजा भगीरथ जाते थे, उधर-उधर यशस्विनी, ॥३३॥ सबके पापोंको नाश करने वाली और नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा जाती थीं। उस समय अद्भुत कर्म करनेवाले जह्नु मुनि यज्ञ कर रहे थे ॥३४॥ गंगाने उनकी सब यज्ञसामग्रियाँ बहा दीं। रामचन्द्र, गंगाके इस अहंकारको देखकर जह्नु मुनि बड़े क्रुद्ध हुए ॥३५॥ उन्होंने अद्भुत काम किया। गंगाका समस्त जल पी लिया। यह देखकर देवता, गन्धर्व और ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३६ ॥ पुरुषश्रेष्ठ, महात्मा जह्नुकी उन लोगोंने पूजा की और कहा कि गंगा आपकी कन्याके नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ३७ ॥ इससे तेजस्वी मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने कानकी राहसे गंगाको निकाल दिया, इसीसे गंगा, जह्नुसुता और जान्हवी कही जाती हैं ॥ ३८ ॥ वहाँसे गंगा पुनः भगीरथके रथके पीछे चलीं। इस प्रकार वह श्रेष्ठ नदी समुद्रसे जाकर मिली ॥ ३९ ॥ भगीरथकी मनोरथसिद्धिके लिए, वे रसातलमें भी गयीं। राजा भगीरथने भी, बड़े प्रयत्नसे गंगाके साथ ॥ ४० ॥ कपिल-क्रोधसे भस्म अपने पितामहोंको देखा और वे दुःखी हुए। अनन्तर, वह भस्मराशि गंगाके जलसे सिंचित हुई, उनके पाप दूर हुए और वे साठो हज़ार सगरके पुत्र स्वर्गलोकमें गये ॥ ४१ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तेतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ४४

स गत्वा सागरं राजा गङ्गयानुगतस्तदा । प्रविवेश तलं भूमेर्यत्र ते भस्मसात्कृताः ॥ १ ॥
भस्मन्यथाप्लुते राम गङ्गायाः सलिलेन वै । सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
तारिता नरशार्दूल दिवं याताश्च देववत् । षष्टिः पुत्रसहस्राणि सगरस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
सागरस्य जलं लोके यावत्स्थास्यति पार्थिव । सगरस्यात्मजाःसर्वे दिवि स्थास्यन्ति देववत् ॥ ४ ॥
इयं च दुहिता ज्येष्ठा तव गङ्गा भविष्यति । त्वत्कृतेनचनाम्नाथलोकेस्थास्यति विश्रुता ॥ ५ ॥
गङ्गा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च । त्रीन्पथो भावयन्तीति तस्मात्त्रिपथगा स्मृता ॥ ६ ॥
पितामहानां सर्वेषां त्वमत्र मनुजाधिप । कुरुष्व सलिलं राजन्प्रतिज्ञामपवर्जय ॥ ७ ॥
पूर्वकेण हि ते राजंस्तेनातियशसा तदा । धर्मिणां प्रवरेणाथ नैष प्राप्तो मनोरथः ॥ ८ ॥
तथैवांशुमता वत्स लोकेऽप्रतिमतेजसा । गङ्गां प्रार्थयता नेतुं प्रतिज्ञा नापवर्जिता ॥ ९ ॥
राजर्षिणा गुणवता महर्षिसमतेजसा । मत्तुल्यतपसा चैव क्षत्रधर्मस्थितेन च ॥१०॥
दिलीपेन महाभाग तव पित्रातितेजसा । पुनर्न शकिता नेतुं गङ्गां प्रार्थयतानघ ॥११॥
सा त्वया समतिक्रान्ता प्रतिज्ञा पुरुषर्षभ । प्राप्तोऽसि परमं लोके यशः परमसंमतम् ॥१२॥
तच्च गङ्गावतरणं त्वया कृतमरिंदम । अनेन च भवान्प्राप्तो धर्मस्यायतनं महत् ॥१३॥

राजा भगीरथ, गंगाके साथ समुद्रतीरपर पहुँचे। वहाँसे उन्होंने पातालमें प्रवेश किया, जहाँ उनके पितामह भस्म हुए थे ॥ १ ॥ गंगाके जलसे भस्मके सिंचित होनेपर, सब लोकोंके स्वामी ब्रह्मा आये और वे राजासे बोले ॥ २ ॥ हे नरश्रेष्ठ, आपने महात्मा सगरके साठ हज़ार पुत्रोंका उद्धार किया और वे देवताओंके समान स्वर्गमें गये ॥ ३ ॥ राजन्, जब तक संसारमें समुद्रका जल वर्तमान रहेगा, तब तक ये सगरके पुत्र, स्वर्गमें देवताके समान स्थान पावेंगे ॥ ४ ॥ गंगा आपकी बड़ी कन्या समझी जायगी क्योंकि आपके ही प्रयत्नसे यह भूतलमें आयी है, इस कारण आपकेही नामसे यह प्रसिद्ध होगी ॥ ५ ॥ गंगा, त्रिपथगा और भागीरथी ये इसके नाम होंगे। तीन धाराओंसे बहनेके कारण, इसका नाम त्रिपथगा होगा ॥६॥ राजन्, आप अपने पितामहोंको, यहीं जलाञ्जलि दें, और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें ॥ ७ ॥ राजन्, अत्यन्त यशस्वी और श्रेष्ठ धर्मात्मा आपके पूर्वज (सगर) का भी यही मनोरथ था, पर उन्हें सफलता न मिली ॥८॥ पुत्र, उसी प्रकार अंशुमानने भी (जो मर्त्यलोकमें बड़ा तेजस्वी था) गंगाको लेआनेका प्रयत्न किया, पर वह सफल न हुआ ॥ ९ ॥ राजन्, आपके पिता राजर्षि दिलीप बलवान् और महर्षियोंके समान तेजस्वी थे, वे तपस्यामें मेरे बराबर थे तथा क्षत्रियोंके धर्मका पालन करते थे ॥ १० ॥ अतितेजस्वी उन्होंने भी गङ्गाको ले आना चाहा था, पर वे अपना मनोरथ सफल न कर सके ॥११॥ पुरुषश्रेष्ठ, आपने आज वह प्रतिज्ञा पूरी कर दी, और लोकमें बड़ा भारी यश भी कमाया ॥ १२ ॥ शत्रुनाशन, आप जो पृथिवीतलमें गङ्गाको ले आनेमें समर्थ हुए हैं, उससे आप बहुत बड़े धर्मके भी भागी

प्लावयस्व त्वमात्मानं नरोत्तम सदोचिते। सलिले पुरुषश्रेष्ठ शुचिः पुण्यफलो भव ॥१४॥
पितामहानां सर्वेषां कुरुष्व सलिलक्रियाम्। स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि स्वंलोकं गम्यतां नृप॥१५॥
इत्येवमुक्त्वा देवेशः सर्वलोकपितामहः। यथागतं तथागच्छद्देवलोकं महायशाः ॥१६॥
भगीरथस्तु राजर्षिः कृत्वा सलिलमुत्तमम्। यथाक्रमं यथान्यायं सागराणां महायशाः ॥१७॥
कृतोदकः शुची राजा स्वपुरं प्रविवेश ह। समृद्धार्थो नरश्रेष्ठ स्वराज्यं प्रशशास ह ॥१८॥
प्रमुमोद च लोकस्तं नृपमासाद्य राघव। नष्टशोकः समृद्धार्थो बभूव विगतज्वरः ॥१९॥
एष ते राम गङ्गाया विस्तरोऽभिहितो मया। स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते संध्याकालोऽतिवर्तते ॥२०॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुत्र्यं स्वर्ग्यमथापि च। यः श्रावयति विप्रेषु क्षत्रियेष्वितरेषु च ॥२१॥
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रीयन्ते दैवतानि च। इदमाख्यानमायुष्यं गङ्गावतरणं शुभम् ॥२२॥
यःशृणोति च काकुत्स्थ सर्वान्कामानवाप्नुयात्। सर्वे पापाः प्रणश्यन्ति आयुः कीर्तिश्च वर्धते ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

हुए हैं ॥ १३ ॥ गङ्गामें स्नान करना सदा ही उचित है (इसमें स्नान करनेके लिए किसी समय, तिथि, मुहूर्त, पर्व आदिका नियम नहीं है)। नरश्रेष्ठ, आप इसमें स्नान करें, इससे आप स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र कर सकेंगे ॥ १४ ॥ अब अपने सब पितामहोंको जलाञ्जलि दें, आपका कल्याण हो, अब मैं अपने लोक जाता हूँ, आप भी जायँ ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर सब लोकोंके पितामह ब्रह्मा जैसे आये थे वैसे देवलोकको गये ॥ १६ ॥ राजा भगीरथने भी सगरके पुत्र अपने पितामहोंको क्रमके अनुसार (छुटाई बड़ाई विचार कर) और शास्त्रीय विधिके अनुसार जलाञ्जलि दी ॥ १७ ॥ जल देकर तथा पवित्र होकर राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया, राजाके सब मनोरथ सिद्ध हो गये थे, उन्होंने राज्यपालनका भार ग्रहण किया ॥१८॥ राजा भगीरथके समान राजाको पाकर प्रजा बहुत प्रसन्न हुई, उसके दुःख दूर हुए, उसके मनोरथकी सिद्धि हुई, उसकी सब चिन्ताएँ मिट गयीं ॥१९॥ विश्वामित्रने कहा—रामचन्द्र, यह गङ्गाकी कथा तुमसे विस्तारके साथ कही, अब जाओ तुम्हारा कल्याण हो, सायंकालके कृत्योंका समय बीत रहा है ॥२०॥ गङ्गाका यह आख्यान पवित्र करनेवाला, यश देनेवाला, आयु बढ़ानेवाला, पुत्र देनेवाला तथा स्वर्ग ले जानेवाला है। जो इस आख्यानको क्षत्रियों, ब्राह्मणों तथा दूसरोंको सुनाता है ॥२१॥ उसपर पितर प्रसन्न होते हैं, देवता प्रसन्न होते हैं। आयु देनेवाले पवित्र इस गङ्गावतरणको ॥२२॥ जो सुनता है उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं, सब पाप नष्ट होते हैं, आयु और कीर्ति बढ़ती है ॥२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ४५

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः । विस्मयं परमं गत्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥
अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्कथितं परमं त्वया । गङ्गावतरणं पुण्यं सागरस्यापि पूरणम् ॥ २ ॥
क्षणभूतेव नौ रात्रिः संवृत्तेयं परंतप । इमां चिन्तयतः सर्वां निखिलेन कथां तव ॥ ३ ॥
तस्य सा शर्वरी सर्वा मम सौमित्रिणा सह । जगाम चिन्तयानस्य विश्वामित्र कथां शुभाम् ॥ ४ ॥
ततः प्रभाते विमले विश्वामित्रं तपोधनम् । उवाच राघवो वाक्यं कृताह्निकमरिंदमः ॥ ५ ॥
गता भगवती रात्रिः श्रोतव्यं परमाद्भुतम् । तराम सरितां श्रेष्ठां पुण्यां त्रिपथगां नदीम् ॥ ६ ॥
नौरेषा हि सुखास्तीर्णा ऋषीणां पुण्यकर्मणाम् । भगवन्तमिह प्राप्तं ज्ञात्वा त्वरितमागता ॥ ७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य महात्मनः । संतारं कारयामास सर्षिसङ्घस्य कौशिकः ॥ ८ ॥
उत्तरं तीरमासाद्य संपूज्यर्षिगणं ततः । गङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरीम् ॥ ९ ॥
ततो मुनिवरस्तूर्णं जगाम सहराघवः । विशालां नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमां तदा ॥१०॥
अथ रामो महाप्राज्ञो विश्वामित्रं महामुनिम् । पप्रच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वा विशालामुत्तमां पुरीम्॥११॥
कतमो राजवंशोऽयं विशालायां महामुने । श्रोतुमिच्छामि भद्रं ते परं कौतूहलं हि मे ॥१२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामस्य मुनिपुंगवः । आख्यातुं तत्समारेभे विशालायाः पुरातनम्॥१३॥
श्रूयतां राम शक्रस्य कथां कथयतः श्रुताम् । अस्मिन्देशे हि यद्वृत्तं शृणु तत्त्वेन राघव ॥१४॥

विश्वामित्रकी बातें सुनकर राम और लक्ष्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ और रामचन्द्र विश्वामित्रसे बोले ॥१॥ महाराज, आपने यह बड़ी अद्भुत कथा कही, पवित्र गंगावतरण और समुद्रकी पूर्ति, सचमुच बड़े अद्भुत व्यापार हैं ॥२॥ महाराज, आपकी इस कथापर विचार करनेके कारण, यह समूची रात एक क्षणके समान बीत गयी ॥३॥ लक्ष्मणके साथ, आपकी सुन्दर कथापर विचार करते हुए मैंने यह समूची रात बिता दी ॥४॥ विश्वामित्रने प्रातःकृत्य समाप्त किये। उस समय बड़ा ही रमणीय प्रातःकाल था। रामचन्द्रने तपोधन विश्वामित्रसे कहा ॥५॥ रात बीत गयी, गंगावतरणकी अद्भुत कथा भी हमलोगोंने सुनी; अब हमलोग नदीश्रेष्ठ त्रिपथा गंगाका पार करें ॥ ६ ॥ पुण्य कर्मवाले ऋषियोंकी यह नौका है। इसपर बैठनेके लिए अच्छा बिछौना है। आपके आनेके कारण, शीघ्रता पूर्वक, यह यहाँ लायी गयी है ॥ ७ ॥ महात्मा राघवके वे वचन सुनकर विश्वामित्रने महर्षियोंको पार कराना प्रारंभ किया ॥ ८ ॥ गंगाके दूसरे तीरपर आकर, ऋषियोंको (जो उन्हें विदा करनेके लिए आये थे) सत्कार पूर्वक विदा करके, वहीं निवास किया और वहींसे विशाला नामकी नगरी देखी ॥९॥ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र, राम लक्ष्मणके साथ, स्वर्गके समान दिव्य और रमणीय विशाला नगरीमें गये ॥ १० ॥ महाबुद्धिमान रामचन्द्रने महामुनि विश्वामित्रसे, हाथ जोड़कर, विशाला नगरीके संबन्धमें पूछा ॥ ११ ॥ इस विशाला नगरीमें किस वंशके राजा हैं, मैं यह जाननेके लिए उत्कण्ठित हूँ। महाराज, आपका कल्याण हो ॥ १२ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने, विशालाकी प्राचीन कथा कहनी प्रारंभ की ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, इन्द्रकी कथा जो मैंने

पूर्वं कृतयुगे राम दितेः पुत्रा महाबलाः । अदितेश्च महाभागा वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ॥१५॥
ततस्तेषां नरव्याघ्र बुद्धिरासीन्महात्मनाम् । अमरा विजराश्चैव कथं स्यामो निरामयाः ॥१६॥
तेषां चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद्विपश्चिताम् । क्षीरोदमथनं कृत्वा रसं प्राप्स्याम तत्र वै ॥१७॥
ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम् । मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजसः ॥१८॥
अथ वर्षसहस्रेण योक्त्रसर्पशिरांसि च । वमन्तोऽतिविषं तत्र ददंशुर्दशनैः शिलाः ॥१९॥
उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहलमहाविषम् । तेन दग्धं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥२०॥
अथ देवा महादेवं शंकरं शरणार्थिनः । जग्मुः पशुपतिं रुद्रं त्राहि त्राहीति तुष्टुवुः ॥२१॥
एवमुक्तस्ततो देवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः । प्रादुरासीत्ततोऽत्रैव शङ्खचक्रधरो हरिः ॥२२॥
उवाचैनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः । दैवतैर्मथ्यमाने तु यत्पूर्वं समुपस्थितम् ॥२३॥
तत्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो हि यत् । अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो ॥२४॥
इत्युक्त्वा च सुरश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत । देवतानां भयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वाक्यं तु शार्ङ्गिणः ॥२५॥
हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम् । देवान्विसृज्य देवेशो जगाम भगवान्हरः ॥२६॥
ततो देवासुराः सर्वे ममन्थू रघुनन्दन । प्रविवेशाथ पातालं मन्थानः पर्वतोत्तमः ॥२७॥

सुनी है, वह सुनो । इस देशमें जो हुआ है, उसका तत्व सुनो ॥ १४ ॥ रामचन्द्र, पहले सत्ययुगमें दितिके पुत्र दैत्य बड़े बली थे और अदितिके पुत्र (देवता) भी बड़े पराक्रमी तथा धार्मिक थे ॥१५॥ हे नरश्रेष्ठ, उनलोगोंने विचार किया कि किस प्रकार हमलोग अमर (मृत्युहीन) अजर और नीरोग होंगे अर्थात् क्या हमलोगोंको कोई रोग न होगा और हमलोग कभी मरेंगे नहीं ? ॥ १६ ॥ इस प्रकार विचारकर उन बुद्धिमानोंने निश्चय किया कि क्षीरसमुद्रका मथन कर हमलोग रस (अमृत) प्राप्त करें ॥१७॥ ऐसा निश्चय कर उन तेजस्वियोंने वासुकी सर्पको मथनेकी रस्सी बनाया और मन्दर पर्वतको मथनी, अनन्तर क्षीरसमुद्रको मथना प्रारंभ किया ॥ १८ ॥ इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतनेपर रस्सी बने हुए वासुकीके मस्तकोंसे उग्र विष निकलने लगा और उन्होंने दाँतोंसे पर्वतको काटा ॥१९॥ अग्निके समान महाउग्र हालाहल विष निकला, जिससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सहित समस्त संसार जलने लगा ॥ २० ॥ देवता, शरणकी इच्छासे शंकर महादेवके यहाँ गये और उनलोगोंने त्राहि त्राहि कहकर पशुपतिकी स्तुति की ॥२१॥ पर देवताओंके ऐसा कहनेपर, देवदेवेश्वर भगवान् हरि शङ्ख-चक्र धारण करके वहीं प्रकट हुए ॥ २२ ॥ उन्होंने मुस्कुराकर शूलधारी रुद्रसे कहा—देवताओंके समुद्र मथन करनेसे, जो पहले प्राप्त हुआ है ॥२३॥ हे देवश्रेष्ठ, वह आपका है, क्योंकि आप देवताओंके अग्रगामी हैं । महाराज, यहाँ ठहरकर आप इस अग्रपूजाको (विषरूपी) ग्रहण करें ॥२४॥ इतना कहकर भगवान विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये, देवताओंको भयभीत देखकर और विष्णुकी बात सुनकर ॥२५॥ उस भयानक हालाहल विषको, अमृतके समान भगवान शिवने पी लिया और देवताओंको विदाकर वे स्वयं भी चले गये ॥२६॥ हे रघुनन्दन देवता और असुर मिलकर पुनः समुद्र-मथन करने लगे, अनन्तर मथनी-रूप पर्वत, पातालमें घुसगया ॥ २७ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् । त्वं गतिः सर्वभूतानां विशेषेण दिवौकसाम् ॥२८॥
पालयास्मान्महाबाहो गिरिमुद्धर्तुमर्हसि । इति श्रुत्वा हृषीकेशः कामठं रूपमास्थितः ॥२९॥
पर्वतं पृष्ठतः कृत्वा शिश्ये तत्रोदधौ हरिः । पर्वताग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाक्रम्य केशवः ॥३०॥
देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्थ पुरुषोत्तमः । अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान् ॥३१॥
उदतिष्ठत्सुधर्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः । अथ धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः ॥३२॥
अप्सु निर्मथनादेव रसात्तस्माद्वरस्त्रियः । उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठ तस्मादप्सरसोऽभवन् ॥३३॥
षष्टिः कोट्योऽभवंस्तासामप्सराणां सुवर्चसाम् । असंख्येयास्तु काकुत्स्थ यास्तासां परिचारिकाः ॥३४॥
न ताः स्म प्रतिगृह्णन्ति सर्वे ते देवदानवाः । अप्रतिग्रहणादेव ता वै साधारणाःस्मृताः ॥३५॥
वरुणस्य ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन । उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्रहम् ॥३६॥
दितेः पुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम् । अदितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम् ॥३७॥
असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः । हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन्वारुणीग्रहणात्सुराः ॥३८॥
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम् । उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ तथैवामृतमुत्तमम् ॥३९॥
अथ तस्य कृते राम महानासीत्कुलक्षयः । अदितेस्तु ततः पुत्रा दितिपुत्रानयोधयन् ॥४०॥

तब गंधर्व, देवता आदि मिलकर मधुसूदनकी स्तुति करने लगे—महाराज, आप सब प्राणियोंके रक्षक हैं, विशेषकर देवताओंके ॥२८॥ हे महाबाहो, हमलोगोंकी रक्षा कीजिये, पातालसे पर्वत निकालिए। यह सुनकर भगवान्‌ने कछुएका रूप धारण किया ॥२९॥ भगवान् विष्णुने कछुएका रूप धारणकर अपनी पीठपर पर्वतको धरकर, वहीं (समुद्रमें) सो गये, और लोकात्मा केशवने पर्वतके सिरपर अपना हाथ रक्खा (जिससे वह ऊपर न चला जाय) ॥ ३० ॥ इस प्रकार देवोंके बीचमें रहकर पुरुषोत्तम विष्णु समुद्र-मथन करने लगे। हज़ार वर्ष बीतनेपर, आयुर्वेदमय पुरुष (धन्वन्तरि) ॥३१॥ उत्पन्न हुए। वे धर्मात्मा, दण्ड-कमण्डलु धारण किए हुए थे। उनका नाम धन्वन्तरि था। अनन्तर सुन्दरी अप्सराएं भी निकलीं ॥ ३२ ॥ हे नरश्रेष्ठ, अप् (दूध) के मथनेसे सुन्दर स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं, इस कारण उनका नाम अप्सरा पड़ा ॥ ३३ ॥ उन सुन्दरी अप्सराओंकी संख्या साठ करोड़ हुई और उनकी सेवा करनेवाली दासियोंकी संख्या तो असंख्य थी ॥३४॥ देव दानव आदिमें किसीने भी उन स्त्रियोंका ग्रहण नहीं किया, उनसे विवाह नहीं किया, इस कारण वे सर्वसाधारण-की स्त्री बनीं ॥ ३५ ॥ हे रघुनन्दन, वरुणकी कन्या वारुणी तदनन्तर समुद्रसे निकली और उसने पतिकी खोज की ॥ ३६ ॥ उस वरुणकी पुत्रीको दितिके पुत्रोंने ग्रहण नहीं किया, किन्तु उस सुन्दरीको अदितिके पुत्रोंने ग्रहण किया ॥ ३७ ॥ इसी कारण दितिके पुत्र असुर कहे जाते हैं और अदितिके पुत्र सुर (वारुणी, शराबको कहते हैं, समुद्रसे शराब निकला, उसका दूसरा नाम सुरा है, दैत्योंने उसका त्याग किया, इसलिए वे असुर कहलाये और देवताओंने उसे ग्रहण किया, इस-लिए वे सुर) उस वारुणीको लेकर देवतागण बहुतही प्रसन्न हुए ॥ ३८ ॥ उसके बाद उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला, जो घोड़ोंमें सर्वश्रेष्ठ था, मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ निकला, और हे नरश्रेष्ठ, उत्तम अमृत भी निकला, ॥ ३९ ॥ अनन्तर उस अमृतके लिए गृह-कलह प्रारम्भ हुआ। देवताओंने दैत्योंसे युद्ध

एकतामगमन्सर्वे असुरा राक्षसैः सह । युद्धमासीन्महाघोरं वीर त्रैलोक्यमोहनम् ॥४१॥
यदा क्षयं गतं सर्वं तदा विष्णुर्महाबलः । अमृतं सोऽहरत्तूर्णमायामास्थाय मोहिनीम् ॥४२॥
ये गताभिमुखं विष्णुमक्षरं पुरुषोत्तमम् । संपिष्टास्ते तदा युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥४३॥
अदितेरात्मजा वीरा दितेः पुत्रान्निजघ्निरे । अस्मिन्घोरे महायुद्धे दैतेयादित्ययोर्भृशम् ॥४४॥
निहत्य दितिपुत्रांस्तु राज्यं प्राप्य पुरंदरः । शशास मुदितो लोकान्सर्षिसङ्घान्सचारणान् ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ४६

हतेषु तेषु पुत्रेषु दितिः परमदुःखिता । मारीचं कश्यपं नाम भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
हतपुत्रास्मि भगवंस्तव पुत्रैर्महात्मभिः । शक्रहन्तारमिच्छामि पुत्रं दीर्घतपोर्जितम् ॥ २ ॥
साहं तपश्चरिष्यामि गर्भं मे दातुमर्हसि । ईश्वरं शक्रहन्तारं त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ ३ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मारीचः कश्यपस्तदा । प्रत्युवाच महातेजा दितिं परमदुःखिताम् ॥ ४ ॥
एवं भवतु भद्रं ते शुचिर्भव तपोधने । जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शक्रहन्तारमाहवे ॥ ५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु शुचिर्यदि भविष्यसि । पुत्रं त्रैलोक्यहन्तारं मत्तस्त्वं जनयिष्यसि ॥ ६ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः पाणिना संममार्ज ताम् । तामालभ्य ततः स्वस्ति इत्युक्त्वा तपसे ययौ ॥ ७ ॥

करना प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ असुर राक्षसोंसे मिलकर युद्ध करने लगे । वीर, वह युद्ध बड़ा ही भयानक हुआ, जिसको देखकर त्रिलोक क्षुभित हुआ ॥ ४१ ॥ जब सब लोग कट मरे, तब महाबली विष्णुने मोहिनीका रूप धरकर वह समस्त अमृत ले लिया ॥ ४२ ॥ अविनाशी विष्णुके सामने बलपूर्वक उस अमृतको लेनेकी चेष्टासे जो गये उनको प्रभावशाली विष्णुने युद्धमें चूर्ण कर दिया ॥४३॥ दैत्य और देवताओंके इस महाभयानक युद्धमें, वीर देवताओंने दानवोंको मारा ॥ ४४ ॥ उन्हें मारकर और अपना राज्य पाकर देव, ऋषि, चारण आदिका शासन इन्द्र करने लगे ।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पैतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ३२ ॥

दैत्योंके मारे जानेपर उनकी माता दिति अत्यन्त दुःखित हुई और वह अपने पति मरीचिके पुत्र कश्यपसे बोली ॥ १ ॥ भगवन्, आपके महात्मा पुत्रोंने मेरे पुत्रोंको मार डाला, इस कारण मैं एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्रका वध कर सके, और उसके लिये कठोर तपस्या करना चाहती हूँ ॥ २ ॥ मैं तपस्या करती हूँ, आप गर्भ धारण करावें, मैं चाहती हूँ कि इन्द्रहन्ता पुत्र मेरे हो, आप इसकी आज्ञा दें ॥३॥ दितिकी प्रार्थना सुनकर कश्यपने परम दुःखिनी दितिको उत्तर दिया ॥ ४ ॥ तुम्हारा मनोरथ पूरा हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम इन्द्रको मारनेवाला पुत्र उत्पन्न करोगी ॥ ५ ॥ एक हजार वर्षों तक यदि तुम पवित्रता पूर्वक रह सको तो अवश्यही इन्द्रको मारनेवाला पुत्र पा सकोगी ॥ ६ ॥ महातेजस्वी कश्यपने दितिका मार्जन किया (गर्भके

गते तस्मिन्नरश्रेष्ठ दितिः परमहर्षिता । कुशप्लवं समासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ८ ॥
तपस्तस्यां हि कुर्वत्यां परिचर्यां चकार ह । सहस्राक्षो नरश्रेष्ठ परया गुणसंपदा ॥ ९ ॥
अग्निं कुशान्काष्ठमपः फलं मूलं तथैव च । न्यवेदयत्सहस्राक्षो यच्चान्यदपि काङ्क्षितम् ॥१०॥
गात्रसंवाहनैश्चैव श्रमापनयनैस्तथा । शक्रः सर्वेषु कालेषु दितिं परिचचार ह ॥११॥
पूर्णे वर्षसहस्रे सा दशोने रघुनन्दन । दितिः परमसंहृष्टा सहस्राक्षमथाब्रवीत् ॥१२॥
तपश्चरन्त्या वर्षाणि दश वीर्यवतां वर । अवशिष्टानि भद्रं ते भ्रातरं द्रक्ष्यसे ततः ॥१३॥
यमहं त्वत्कृते पुत्र तमाधास्ये जयोत्सुकम् । त्रैलोक्यविजयं पुत्र सह भोक्ष्यसि विज्वरः ॥१४॥
याचितेन सुरश्रेष्ठ पित्रा तव महात्मना । वरो वर्षसहस्रान्ते मम दत्तः सुत प्रति ॥१५॥
इत्युक्त्वा च दितिस्तत्र प्राप्ते मध्यं दिनेश्वरे । निद्रयापहृता देवी पादौ कृत्वाथ शीर्षतः ॥१६॥
दृष्ट्वा तामशुचिं शक्रः पादयोः कृतमूर्धजाम् । शिरः स्थाने कृतौ पादौ जहास च मुमोद च ॥१७॥
तस्याः शरीरविवरं प्रविवेश पुरंदरः । गर्भं च सप्तधा राम चिच्छेद परमात्मवान् ॥१८॥
भिद्यमानस्ततो गर्भो वज्रेण शतपर्वणा । रुरोद सुस्वरं राम ततो दितिरबुध्यत ॥१९॥
मा रुदो मा रुदश्चेति गर्भं शक्रोऽभ्यभाषत । बिभेद च महातेजा रुदन्तमपि वासवः ॥२०॥
न हन्तव्यं न हन्तव्यमित्येव दितिरब्रवीत् । निष्पपात ततः शक्रो मातुर्वचनगौरवात् ॥२१॥

विघ्नोंको मन्त्रोंके द्वारा दूर किया), पुनः हाथसे दितिका स्पर्श किया और 'कल्याण हो' कहकर आशीर्वाद दिया, तदनन्तर वे तपस्या करने चले गये ॥७॥ कश्यप चले गये । दिति भी बहुत प्रसन्न होकर कुशप्लवमें (विशालाके पासवाले तपोवनमें) कठोर तपस्या करने लगीं ॥८॥ दिति जब तपस्या करने लगीं तब बड़ी योग्यता और विनयसे इन्द्र उनकी सेवा करने लगे ॥९॥ आग, कुश, लकड़ी, जल, फल, मूल तथा और जब जिस चीजकी जरूरत होती वह इन्द्रही जुटाया करते थे ॥ १० ॥ पैर दबाना, थकावट दूर करना आदि सेवाओंसे इन्द्र सदा दितिकी सेवा करते थे ॥ ११ ॥ रामचन्द्र, हजार वर्षके पूरे होनेमें जब दस वर्ष बाकी रह गये, उस समय दितिने परम प्रसन्न हो कर इन्द्रसे कहा ॥१२॥ वीरश्रेष्ठ, अब मेरी तपस्याके दस वरस रह गये, इसके पश्चात् तुम अपना भाई देखोगे, अर्थात् तुम्हारे एक और भाई होगा तुम्हारा कल्याण हो ॥१३॥ जो पुत्र मैं उत्पन्न करूँगी, वह त्रिलोकको विजय चाहनेवाला होगा, उसे मैं तुम्हारे लिये(तुमको मारनेके लिए) उत्पन्न करूँगी, पुत्र ! तुम उसके साथ प्रसन्नता पूर्वक भोजन करना ॥ १४ ॥ मैंने तुम्हारे पितासे पुत्रके लिए प्रार्थना की थी, तब उन्होंने हजार वर्षके बाद पुत्र उत्पन्न होनेका वर दिया ॥ १५ ॥ इतना कहनेके बाद मध्यान्हके समय दिति सिरहानेकी ओर पैर करके सो गयीं, ॥ १६ ॥ इन्द्रने दितिको अशुद्धावस्थामें देखा, उनके केश पैरोंपर पड़े थे, सिरकी जगह पैरोंको देखकर वे हँसने लगे और बहुत प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ इन्द्रने इसी अवस्थामें दितिके भीतर प्रवेश किया और आत्मजयी इन्द्रने गर्भके सात टुकड़े करदिये ॥ १८ ॥ इन्द्र वज्रके द्वारा जब गर्भको काटने लगे, तब वे बड़ेही करुण स्वरमें रोये और दिति जाग पड़ीं ॥ १९ ॥ इन्द्रने गर्भसे कहा—मत रोओ (मा रुद) और राते गर्भको भी उन्होंने काटा ॥ २० ॥ दितिने कहा कि मत मारो, मत मारो । माताकी यह आज्ञा

प्राञ्जलिर्वज्रसहितो दितिं शक्रोऽभ्यभाषत । अशुचिर्देवि सुप्तासि पादयोः कृतमूर्धजा ॥२२॥
तदन्तरमहं लब्ध्वा शक्रहन्तारमाहवे । अभिन्दं सप्तधा देवि तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ४७

सप्तधा तु कृते गर्भे दितिः परमदुःखिता । सहस्राक्षं दुराधर्षं वाक्यं सानुनयाब्रवीत् ॥ १ ॥
ममापराधाद्गर्भोऽयं सप्तधा शकलीकृतः । नापराधो हि देवेश तवात्र बलसूदन ॥ २ ॥
प्रियं त्वत्कृतमिच्छामि मम गर्भविपर्यये । मरुतां सप्त सप्तानां स्थानपाला भवन्तु ते ॥ ३ ॥
वातस्कन्धा इमे सप्त चरन्तु दिवि पुत्रक । मारुता इति विख्याता दिव्यरूपा ममात्मजाः ॥ ४ ॥
ब्रह्मलोकं चरत्वेक इन्द्रलोकं तथापरः । दिव्यवायुरिति ख्यातस्तृतीयोऽपि महायशाः ॥ ५ ॥
चत्वारस्तु सुरश्रेष्ठ दिशो वै तव शासनात् । संचरिष्यन्ति भद्रं ते कालेन हि ममात्मजाः ॥ ६ ॥
त्वत्कृतेनैव नाम्ना वै मारुता इति विश्रुताः । तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरंदरः ॥ ७ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यमितीदं बलसूदनः । सर्वमेतद्यथोक्तं ते भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥
विचरिष्यन्ति भद्रं ते देवरूपास्तवात्मजाः । एवं तौ निश्चयं कृत्वा मातापुत्रौ तपोवने ॥ ९ ॥
जग्मतुस्त्रिदिवं राम कृतार्थाविति नः श्रुतम् । एष देशः स काकुत्स्थ महेन्द्राध्युषितः पुरा ॥१०॥

सुनकर और माताके प्रति गौरव होनेके कारण इन्द्र बाहर आ गये ॥२१॥ वज्रके साथ हाथ जोड़कर इन्द्रने दितिसे कहा—देवि, अशुद्ध होकर आप पैरकी ओर माथा करके सो गयी थीं ॥२२॥ इस अवकाशको पाकर मैंने युद्धमें इन्द्रको मारनेवालेके सात टुकड़े कर दिये । माता, क्षमा करो ॥२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छिआलीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४६ ॥

गर्भके सात टुकड़े हो जानेसे दिति बहुत दुखित हुई । वे परम पराक्रमी इन्द्रसे नम्रतापूर्वक बोलीं ॥ १ ॥ यह मेरा गर्भ सात टुकड़े किया गया है, इसकी अपराधिनी मैं हूँ । बलहन्ता देवराज, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है ॥ २ ॥ मेरे गर्भके विषयमें तुमने मेरा जो किया है, उसे मैं अपना प्रिय ही समझती हूँ । उनको उनचास मरुतोंका स्थानपाल बना दिया जाय ॥ ३ ॥ पुत्र इन्द्र, दिव्यरूपधारी और "मारुत" इस नामसे प्रसिद्ध होकर मेरे ये पुत्र सात वात-स्कन्धों (वायुलोकों) में विचरण करें ॥ ४ ॥ एक ब्रह्मलोकमें विचरण करे, दूसरा इन्द्रलोकमें और तीसरा दिव्य वायुके नामसे प्रसिद्ध हो ॥ ५ ॥ देवश्रेष्ठ, तुम्हारी आज्ञासे शेष चारों पुत्र दिशाओंमें समयपर भ्रमण करेंगे, तुम्हारा कल्याण हो ॥६॥ तुम्हारे ही किये मारुत नामसे वे प्रसिद्ध होंगे । उनके ये वचन सुनकर इन्द्रने ॥ ७ ॥ हाथ जोड़कर यह कहा—आपने जैसा कहा है, सब वैसाही होगा, इसमें सन्देह न कीजिए ॥ ८ ॥ देवरूपधारी आपके पुत्र विचरण करेंगे । इस प्रकार तपोवनमें माता-पुत्रोंमें समझौता हुआ ॥ ९ ॥ यहाँसे वे दोनों सफल होकर स्वर्ग चले गये । राम, यह कथा मैंने सुनी है । यह वही देश है, जहाँ पहले इन्द्रने निवास किया था ॥१०॥

दितिं यत्र तपःसिद्धामेवं परिचचार सः। इक्ष्वाकोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः ॥११॥
अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः। तेन चासीदिह स्थाने विशालेति पुरी कृता ॥१२॥
विशालस्य सुतो राम हेमचन्द्रो महाबलः। सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः ॥१३॥
सुचन्द्रतनयो राम धूम्राश्व इति विश्रुतः। धूम्राश्वतनयश्चापि सृञ्जयः समपद्यत ॥१४॥
सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान्। कुशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः ॥१५॥
कुशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान्। सोमदत्तस्य पुत्रस्तु काकुत्स्थ इति विश्रुतः ॥१६॥
तस्य पुत्रो महातेजाः संप्रत्येष पुरीमिमाम्। आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः ॥१७॥
इक्ष्वाकोस्तु प्रसादेन सर्वे वैशालिका नृपाः। दीर्घायुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ॥१८॥
इहाद्य रजनीमेकां सुखं स्वप्स्यामहे वयम्। श्वः प्रभाते नरश्रेष्ठ जनकं द्रष्टुमर्हसि ॥१९॥
सुमतिस्तु महातेजा विश्वामित्रमुपागतम्। श्रुत्वा नरवरश्रेष्ठः प्रत्यागच्छन्महायशाः ॥२०॥
पूजां च परमां कृत्वा सोपाध्यायः सबान्धवः। प्राञ्जलिः कुशलं पृष्ट्वा विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥२१॥
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे विषयं मुने। संप्राप्तो दर्शनं चैव नास्ति धन्यतरो मम ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टाचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

सिद्धिके लिए तपस्या करनेवाली दितिकी इन्द्रने जहाँ सेवा की थी, वहाँ परमधार्मिक राजा इक्ष्वाकुसे ॥ ११ ॥ अलम्बुषामें उत्पन्न विशाल नामके एक राजा हुए; उन्होंनेही इस स्थानपर विशाला नामकी नगरी बसायी ॥१२॥ विशालके पुत्र हेमचन्द्र हुए जो बड़े बली थे। हेमचन्द्रके अनन्तर सुचन्द्र नामके प्रसिद्ध राजा हुए ॥१३॥ सुचन्द्रके पुत्र धूम्राश्व हुए और धूम्राश्वके सृञ्जय उत्पन्न हुए ॥१४॥ सृञ्जयके पुत्र सहदेव बड़े प्रतापी थे। सहदेवके पुत्र परमधार्मिक कुशाश्व हुए ॥१५॥ कुशाश्वके पुत्र महातेजस्वी और प्रतापी सोमदत्त हुए। सोमदत्तके पुत्र प्रसिद्ध काकुत्स्थ हुए ॥ १६ ॥ उनके पुत्र महातेजस्वी, शत्रुओंसे अजेय, सुमति इस समय इस नगरीमें राज्य कर रहे हैं ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकुके प्रसादसे विशालाके सभी राजा दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी और धार्मिक होते हैं ॥ १८ ॥ हमलोग यहाँ एक रात सुखसे रहेंगे। कल जनकको देखेंगे अर्थात् उनकी नगरीमें चलेंगे ॥१९॥ कान्तिमान् महातेजस्वी सुमतिने जब सुना कि हमारे नगरमें विश्वामित्र आये हैं, तो वह राजा उनके यहाँ आया। ॥ २० ॥ अपने पुरोहित और बान्धवोंके साथ उसने विश्वामित्रकी बड़ी श्रद्धासे पूजा की और कुशल पूछनेके अनन्तर हाथ जोड़कर कहा ॥ २१ ॥ महाराज, मैं धन्य हुआ हूँ आपने मेरे देशमें आकर मुझे अनुगृहीत किया। मैंने आपके दर्शन पाये। अब मुझसे बढ़कर धन्य कोई नहीं है ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सैंतालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ४८

पृष्ट्वा तु कुशलं तत्र परस्परसमागमे । कथान्ते सुमतिर्वाक्यं व्याजहार महामुनिम् ॥ १ ॥
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ । गजसिंहगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ ॥ २ ॥
पद्मपत्रविशालाक्षौ खड्गतूणधनुर्धरौ । अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥ ३ ॥
यदृच्छयैव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ । कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥ ४ ॥
भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् । परस्परेण सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः ॥ ५ ॥
किमर्थं च नरश्रेष्ठौ संप्राप्तौ दुर्गमे पथि । वरायुधधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यथावृत्तं न्यवेदयत् । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राजा परमविस्मितः ॥ ७ ॥
अतिथी परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ । पूजयामास विधिवत्सत्कारार्हौ महाबलौ ॥ ८ ॥
ततः परमसत्कारं सुमतेः प्राप्य राघवौ । उष्य तत्र निशामेकां जग्मतुर्मिथिलां ततः ॥ ९ ॥
तां दृष्ट्वा मुनयः सर्वे जनकस्य पुरीं शुभाम् । साधु साध्विति शंसन्तो मिथिलां समपूजयन् ॥१०॥
मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः । पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुंगवम् ॥११॥
इदमाश्रमसंकाशं किं न्विदं मुनिवर्जितम् । श्रोतुमिच्छामि भगवन्कस्यायं पूर्व आश्रमः ॥१२॥
तच्छ्रुत्वा राघवेणोक्तं वाक्यं वाक्यविशारदः । प्रत्युवाच महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥१३॥

उस विशाला नगरीमें, कुशल पूछकर, पारस्परिक भेंट होनेकी बातोंकी समाप्ति पर, राजा सुमतिने महामुनि विश्वामित्रसे कहा ॥१॥ महाराज, ये दोनों कुमार-देवताके समान पराक्रमी हैं, एक गजगामी और दूसरा सिंहगामी है, दोनोंही वीर हैं, एक बाघके समान और दूसरा बैलके समान बली है ॥२॥ दोनोंकी आँखें पद्म-पत्रके समान विशाल हैं, खड्ग तूण और धनुष दोनोंने धारण किये हैं, अश्विनोंके समान सुन्दर हैं और दोनोंकी जवानी आ रही है ॥३॥ योंहीं (अपनी इच्छासेही) देवलोकसे आये हुए देवताके समान ये मालूम होते हैं। ये कैसे पैरोंसे चलकर यहाँतक आये और किसलिए आये ? महाराज, ये किनके लड़के हैं ॥४॥ जिस प्रकार चन्द्र-सूर्य आकाशको शोभित करते हैं, उसी प्रकार ये दोनों इस देशको भूषित कर रहे हैं। ये शरीरकी लम्बाई, चौड़ाई, बोली, चेष्टा आदि सबसे समान हैं ॥ ५ ॥ ये दोनों नरश्रेष्ठ, उत्तम आयुध धारण करनेवाले वीर, किसलिए इस दुर्गम मार्गमें आये, यह मैं यथार्थ जानना चाहता हूँ ॥ ६ ॥ राजाकी प्रार्थना सुनकर, मुनिने, राम लक्ष्मणके संबन्धमें जैसी बातें थीं, सुना दीं। विश्वामित्रकी बातोंसे राजा बहुत विस्मित हुआ ॥ ७ ॥ राजा दशरथके इन दोनों पुत्रोंकी विधिपूर्वक राजा सुमतिने पूजा की, क्योंकि ये उनके लिए श्रेष्ठ अतिथि थे, अतएव ये सत्कारके योग्य थे ॥ ८ ॥ राजा सुमतिसे उत्तम सत्कार पाकर तथा उस विशाला नगरीमें एक रात्रि निवासकर, वे मिथिलाकी ओर चले ॥९॥ राजा जनककी सुन्दर नगरीको देखकर मुनियोंने साधु-साधु कहकर उसका अभिनन्दन किया ॥१०॥ मिथिलाके उपवनमें एक पुराना निर्जन, पर रमणीय, आश्रम देखकर रामचन्द्रने विश्वामित्रसे पूछा ॥११॥ महाराज, यह आश्रमके समान क्या है ? यहाँ कोई मुनि दिखाई नहीं पड़ता, मैं सुनना चाहता हूँ कि पहले इस आश्रममें कौन रहता था? ॥२॥ रामचन्द्रकी बात सुनकर बोलनेमें पटु, महातेजस्वी, महामुनि, विश्वामित्रने

हन्त ते कथयिष्यामि शृणु तत्त्वेन राघव। यस्यैतदाश्रमपदं शप्तं कोपान्महात्मनः ॥१४॥
गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वमासीन्महात्मनः। आश्रमो दिव्यसंकाशः सुरैरपि सुपूजितः ॥१५॥
स चात्र तप आतिष्ठदहल्यासहितः पुरा। वर्षपूगान्यनेकानि राजपुत्र महायशः ॥१६॥
तस्यान्तरं विदित्वा च सहस्राक्षः शचीपतिः। मुनिवेषधरो भूत्वा अहल्यामिदमब्रवीत् ॥१७॥
ऋतुकालं प्रतीक्षन्ते नार्थिनः सुसमाहिते। संगमं त्वहमिच्छामि त्वया सह सुमध्यमे ॥१८॥
मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन। मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥१९॥
अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना। कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ॥२०॥
आत्मानं मां च देवेश सर्वथा रक्ष गौतमात्। इन्द्रस्तु प्रहसन्वाक्यमहल्यामिदमब्रवीत् ॥२१॥
सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि गमिष्यामि यथागतम्। एवं संगम्य तु तदा निश्चक्रामोटजात्ततः ॥२२॥
स संभ्रमात्त्वरन्राम शङ्कितो गौतमं प्रति। गौतमं स ददर्शाथ प्रविशन्तं महामुनिम् ॥२३॥
देवदानवदुर्धर्षं तपोबलसमन्वितम्। तीर्थोदकपरिक्लिन्नं दीप्यमानमिवानलम् ॥२४॥
गृहीतसमिधं तत्र सकुशं मुनिपुंगवम्। दृष्ट्वा सुरपतिस्त्रस्तो विषण्णवदनोऽभवत् ॥२५॥
अथ दृष्ट्वा सहस्राक्षं मुनिवेषधरं मुनिः। दुर्वृत्तं वृत्तसंपन्नो रोषाद्वचनमब्रवीत् ॥२६॥
मम रूपं समास्थाय कृतवानसि दुर्मते। अकर्तव्यमिदं यस्माद्विफलस्त्वं भविष्यसि ॥२७॥

उत्तर दिया ॥ १३ ॥ अच्छा सुनो, मैं यथार्थ बातें कहता हूँ। जिस महर्षिका यह आश्रम है और क्रोधसे इसको जिसने शाप दिया है, वे सब बातें कहता हूँ ॥ १४ ॥ महात्मा गौतमका यह पहले आश्रम था। देवाश्रमके समान दिव्य था, देवता भी इसकी प्रसंशा करते थे ॥१५॥ अहल्याके साथ उन्होंने पहले अनेक वर्षों तक यहीं तपस्या की ॥१६॥ मुनिका आश्रममें न रहना जानकर शचीपति इन्द्रने, मुनिका वेष धारण करके अहल्यासे यह कहा ॥ १७ ॥ हे सुन्दरी, प्रार्थी ऋतुकालकी प्रतीक्षा नहीं करता, हे सुमध्यमे, मैं तुम्हारे साथ सङ्गम चाहता हूँ ॥१८॥ रामचन्द्र, अहल्याने समझ लिया कि यह मुनिके वेषमें इन्द्र हैं, फिर भी उस मूर्खाने देवराजके प्रति कुतूहल होनेके कारण, उनकी बात स्वीकार की ॥१९॥ पुनः कृतार्थ मनसे उसने इन्द्रसे कहा–हे देवराज, मैं कृतार्थ हुई। तुम शीघ्र यहाँ से जाओ ॥ २० ॥ गौतमसे अपनी और मेरी सब तरहसे रक्षा करो। इन्द्रने हँसते हुए अहल्यासे यह कहा ॥ २१ ॥ हे सुन्दरि, मैं प्रसन्न हूँ और अपने स्थानको जाता हूँ। इस प्रकार अहल्यासे संगम कर, इन्द्र गौतमकी झोपड़ीसे निकल भागा ॥ २२ ॥ गौतमके डरसे घबराकर वह जानेमें शीघ्रता कर रहा था, उसी समय उसने देखा कि महामुनि गौतम आश्रम में प्रवेश कर रहे हैं ॥ २३ ॥ महाराज गौतम प्रदीप्त अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे। तीर्थके जलसे उनका अभिषेक हुआ था। उस तपोबलयुक्त महर्षिको देव, दानव आदि भी नीचा नहीं दिखा सकते ॥ २४ ॥ लकड़ी और कुश लिए हुए, मुनिश्रेष्ठको देखकर देवराज डर गया, उसका चेहरा उतर गया ॥ २५ ॥ मुनिका वेष धारण किये हुए इन्द्रको देखकर, चरित्रवान मुनि, उस दुश्चरित्रसे क्रोधपूर्वक बोले ॥२६॥ तुम मूर्खने मेरा रूप धरकर जो यह कुकर्म किया है

गौतमेनैवमुक्तस्य सुरोषेण महात्मना । पेततुर्वृषणौ भूमौ सहस्राक्षस्य तत्क्षणात् ॥२८॥
तथा शप्त्वा च वै शक्रं भार्यामपि च शप्तवान् । इह वर्षसहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि ॥२९॥
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी । अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि ॥३०॥
यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः । आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि ॥३१॥
तस्यातिथ्येन दुर्वृत्ते लोभमोहविवर्जिता । मत्सकाशं मुदा युक्ता स्वं वपुर्धारयिष्यसि ॥३२॥
एवमुक्त्वा महातेजा गौतमो दुष्टचारिणीम् । इममाश्रममुत्सृज्य सिद्धचारणसेविते ।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे महातपाः ॥३३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः ४९

अफलस्तु ततः शक्रो देवानग्निपुरोगमान् । अब्रवीत्त्रस्तनयनः सिद्धगन्धर्वचारणान् ॥ १ ॥
कुर्वता तपसो विघ्नं गौतमस्य महात्मनः । क्रोधमुत्पाद्य हि मया सुरकार्यमिदं कृतम् ॥ २ ॥
अफलोऽस्मि कृतस्तेन क्रोधात्सा च निराकृता । शापमोक्षेण महता तपोऽस्यापहृतं मया ॥ ३ ॥
तन्मां सुरवराः सर्वे सर्षिसङ्घाः सचारणाः । सुरकार्यकरं यूयं सफलं कर्तुमर्हथ ॥ ४ ॥

उससे तुम विफल (अण्डकोषहीन) हो जाओगे ॥२७॥ महात्मा गौतमके क्रोधपूर्वक ऐसा कहते ही, इन्द्रके दोनों अण्डकोष उसी समय पृथिवीपर गिर पड़े ॥२८॥ इन्द्रको ऐसा शाप देकर, मुनिने अपनी स्त्रीको भी शाप दिया—तुमको यहाँ बहुत हजार वर्षों तक रहना पड़ेगा ॥२९॥ वायु छोड़ दूसरा आहार न कर तपस्या करो, राखपर सोओ। किसी भी प्राणीके सामने न होओ। इसप्रकार इस आश्रममें रहो ॥ ३० ॥ दशरथके पुत्र रामचन्द्र जब इस बीहड़ वनमें आवेंगे, तब तुम पवित्र होओगी ॥३१॥ ऐ दुराचारिणी, लोभ-मोह छोड़कर रामचन्द्रका आतिथ्य-सत्कार करनेके पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक मेरे समीप आना और उसी समय तुम्हें अपना पहला सौन्दर्य मिल सकेगा ॥३२॥ महातेजस्वी गौतम उस दुराचारिणीसे ऐसा कहकर और इस आश्रमको छोड़कर हिमवानके उस शिखरपर तपस्या करने लगे, जहाँ सिद्ध और चारण निवास करते हैं ॥ ३३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अड़तालीसवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४८ ॥

विफल इन्द्रने अग्नि आदि देवताओं, सिद्ध, गंधर्व और चारणोंसे कहा- इन्द्रकी आँखोंसे भय टपक रहा था ॥ १ ॥ महात्मा गौतमकी उग्र तपस्यामें विघ्न करनेकी इच्छासे मैंने उनका क्रोध बढ़ाया और इस प्रकार उनकी तपस्या नष्ट की, यह मैंने देवताओंका काम किया है ॥ २ ॥ मुझे मुनिने अण्डहीन बनाया और अपनी स्त्रीका त्याग किया। उन्होंने बड़ा कठोर शाप दिया और इस प्रकार मैंने मुनिकी तपस्याका अपहरण किया ॥ ३ ॥ इस कारण, हे देवता, ऋषि और चारणगण, आपलोगोंका हित करनेके कारण मेरी

शतक्रतोर्वचः श्रुत्वा देवाः साग्निपुरोगमाः । पितृदेवानुपेत्याहुः सर्वे सह मरुद्गणैः ॥ ५ ॥
अयं मेषः सवृषणः शक्रो ह्यवृषणः कृतः । मेषस्य वृषणौ गृह्य शक्रायाशु प्रयच्छत ॥ ६ ॥
अफलस्तु कृतो मेषः परां तुष्टिं प्रदास्यति । भवतां हर्षणार्थं च ये च दास्यन्ति मानवाः ।
अक्षयं हि फलं तेषां यूयं दास्यथ पुष्कलम् ॥ ७ ॥
अग्नेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागताः । उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन् ॥ ८ ॥
तदाप्रभृति काकुत्स्थ पितृदेवाः समागताः । अफलान्भुञ्जते मेषान्फलैस्तेषामयोजयन् ॥ ९ ॥
इन्द्रस्तु मेषवृषणस्तदाप्रभृति राघव । गौतमस्य प्रभावेण तपसा च महात्मनः ॥१०॥
तदागच्छ महातेजा आश्रमं पुण्यकर्मणः । तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम् ॥११॥
विश्वामित्रवचःश्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य आश्रमं प्रविवेश ह ॥१२॥
ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम् । लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ॥१३॥
प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव । धूमेनाभिपरीताङ्गीं दीप्तामग्निशिखामिव ॥१४॥
सतुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव । मध्येऽम्भसो दुराधर्षां दीप्तां सूर्यप्रभामिव ॥१५॥
सा हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह । त्रयाणामपि लोकानां यावद्रामस्य दर्शनम् ।
शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता ॥१६॥

यह जो दुर्दशा हुई है, उसे दूर करनेका आप उपाय करें ॥ ४ ॥ इन्द्रके वचन सुनकर अग्नि आदि देवता मरुतोंके साथ पितृदेवोंके पास जाकर बोले ॥ ५ ॥ यह आपका भेड़ा अण्डकोष युक्त है, और इन्द्र अण्डकोष हीन हैं । भेड़के अण्डकोष इन्द्रके लिए शीघ्र दीजिए ॥ ६ ॥ यह अफल भेड़ा आपलोगोंको बहुत ही सन्तुष्ट करेगा । जो मनुष्य आपलोगोंकी प्रसन्नताके लिए अफल भेड़ा दे, उन्हें आपलोग भी अक्षय और प्रचुर फल दें ॥ ७ ॥ अग्निके वचन सुनकर पितृदेवता इकट्ठे हुए और भेड़का अण्डकोष उखाड़कर उनलोगोंने इन्द्रको लगा दिया ॥ ८ ॥ रामचन्द्र, तबसे पितृदेव अण्डकोषहीन ही भेड़े स्वीकार करते हैं और अर्पयिताको पूर्ण फल देते हैं ॥ ९ ॥ रामचन्द्र, उस समयसे महात्मा गौतमकी तपस्याके प्रभावसे इन्द्रने भेड़का अण्डकोष ग्रहण किया ॥ १० ॥ हे तेजस्विन्, उस पुण्यकर्ता मुनिके आश्रममें आप आइये और देवरूपिणी अहल्याका उद्धार कीजिए ॥ ११ ॥ लक्ष्मणके साथ, विश्वामित्रका वचन सुन उन्हें आगे कर, रामने आश्रममें प्रवेश किया ॥ १२ ॥ इनलोगोंने उस आश्रममें महाभागा अहल्याको देखा । उनकी तपस्याकी ज्योति चारो ओर फैली थी । देवता, असुर आदि मिलकर भी उस तेजस्विनीको नहीं देख सकते थे ॥ १३ ॥ मालूम होता था कि ब्रह्माने मायामयीके समान बड़े प्रयत्नोंसे इसके रूपका निर्माण किया होगा । वे इस समय धूमसे घिरी हुई, प्रदीप्त अग्नि-शिखाके समान मालूम होती थीं ॥१४॥ पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान-जो मेघ और बरफसे ढकगयी हो-मालूम होती थी, जलमें पड़ी हुई, दीप्तिमान और न छूने योग्य सूर्यकी प्रभाके समान वे मालूम होती था ॥ १५ ॥ वेही गौतमके कहनेसे रामचन्द्रके दर्शन तक, त्रिलोकवासियोंके न देखने योग्य हो गयीं । शापका अन्त होनेपर सब लोगोंने उनका

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा । स्मरन्ती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हि तौ ॥१७॥
पाद्यमर्घ्यं तथातिथ्यं चकार सुसमाहिता । प्रतिजग्राह काकुत्स्थो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१८॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः । गन्धर्वाप्सरसां चैव महानासीत्समुत्सवः ॥१९॥
साधु साध्विति देवास्तामहल्यां समपूजयन् । तपोबलविशुद्धाङ्गीं गौतमस्य वशानुगाम् ॥२०॥
गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी । रामं संपूज्य विधिवत्तपस्तेपे महातपाः ॥२१॥
रामोऽपि परमां पूजां गौतमस्य महामुनेः । सकाशाद्विधिवत्प्राप्य जगाम मिथिलां ततः ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशः सर्गः ५०

ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ १ ॥
रामस्तु मुनिशार्दूलमुवाच सहलक्ष्मणः । साध्वी यज्ञसमृद्धिर्हि जनकस्य महात्मनः ॥ २ ॥
बहूनीह सहस्राणि नानादेशनिवासिनाम् । ब्राह्मणानां महाभागवेदाध्ययनशालिनाम् ॥ ३ ॥
ऋषिवाटाश्च दृश्यन्ते शकटीशतसंकुलाः । देशो विधीयतां ब्रह्मन्यत्र वत्स्यामहे वयम् ॥ ४ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः । निवासमकरोद्देशे विविक्ते सलिलान्विते ॥ ५ ॥

दर्शन पाया ॥ १६ ॥ राम और लक्ष्मणने उन मुनि-पत्नीके चरण प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण किये । उस समय मुनि-पत्नीको गौतमके वचनका स्मरण हुआ और उन्होंने राम तथा लक्ष्मणका अतिथि-सत्कार किया ॥१७॥ पाद्य, अर्घ्य तथा अन्य अतिथि-सत्कार उसने बड़ी सावधानीसे किये । राम और लक्ष्मणने भी, शास्त्रीय विधिके अनुसार वे सब ग्रहण किये ॥ १८ ॥ उस समय देवताओंके नगाड़ेकी ध्वनिके साथ पुष्पवृष्टि हुई । गन्धर्व और अप्सराओंके यहाँ भी बहुत बड़ा उत्सव हुआ ॥१९॥ तपस्याके द्वारा शुद्ध हुई और गौतमका अनुसरण करनेवाली अहल्याको देवताओंने साधुवाद दिया और उनका अभिनन्दन किया ॥ २० ॥ महातेजस्वी गौतम भी अहल्याको पाकर सुखी हुए । रामचन्द्रकी पूजा कर वे विधिपूर्वक तपस्या करने लगे ॥ २१ ॥ रामचन्द्र भी महामुनि गौतमसे उत्तम पूजा पाकर मिथिलाको गये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनचासवाँ सर्ग समाप्त ॥ ४९ ॥

राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र थोड़ी दूर तक उत्तरकी ओर गये और वे सब जनकके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचे ॥१॥ राम और लक्ष्मणने मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे कहा—महात्मा जनकने तो यज्ञकी बड़ी तयारी की है ॥२॥ वेदपाठी, श्रोत्रिय ब्राह्मण भिन्न-भिन्न देशोंमें रहनेवाले यहाँ कई हजारोंकी संख्यामें एकत्र हुए हैं ॥ ३ ॥ ऋषियोंका यह टोला दिखायी पड़ता है, वहाँ सैकड़ों बैलगाड़ियाँ पड़ी हैं । महाराज, आप अपने रहनेके लिए स्थान निश्चित करें, जहाँ हमलोग ठहरें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रके वचन सुनकर, विश्वामित्रने एकान्त स्थानमें डेरा डाला, वहाँ जलका भी सुपास था ॥५॥

विश्वामित्रमनुप्राप्तं श्रुत्वा नृपवरस्तदा । शतानन्दं पुरस्कृत्य पुरोहितमनिन्दितः ॥ ६ ॥
ऋत्विजोऽपि महात्मानस्त्वर्घ्यमादाय सत्वरम् । प्रत्युज्जगाम सहसा विनयेन समन्वितः ॥ ७ ॥
विश्वामित्राय धर्मेण ददौ धर्मपुरस्कृतम् । प्रतिगृह्य तु तां पूजां जनकस्य महात्मनः ॥ ८ ॥
पप्रच्छ कुशलं राज्ञो यज्ञस्य च निरामयम् । स तांश्चाथ मुनीन्पृष्ट्वा सोपाध्याय पुरोधसः ॥ ९ ॥
यथार्हमृषिभिः सर्वैः समागच्छत्प्रहृष्टवत् । अथ राजा मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिरभाषत ॥१०॥
आसने भगवानास्तां सहैभिर्मुनिपुंगवैः । जनकस्य वचः श्रुत्वा निषसाद महामुनिः ॥११॥
पुरोधा ऋत्विजश्चैव राजा च सहमन्त्रिभिः । आसनेषु यथान्यायमुपविष्टाः समन्ततः ॥१२॥
दृष्ट्वा स नृपतिस्तत्र विश्वामित्रमथाब्रवीत् । अद्य यज्ञसमृद्धिर्मे सफला दैवतैः कृता ॥१३॥
अद्य यज्ञफलं प्राप्तं भगवद्दर्शनान्मया । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव॥१४॥
यज्ञोपसदनं ब्रह्मन्प्राप्तोऽसि मुनिभिः सह । द्वादशाहं तु ब्रह्मर्षे दीक्षामाहुर्मनीषिणः ॥१५॥
ततो भागार्थिनो देवान्द्रष्टुमर्हसि कौशिक । इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलं प्रहृष्टवदनस्तदा ॥१६॥
पुनस्तं परिपप्रच्छ प्राञ्जलिः प्रयतो नृपः । इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥१७॥
गजतुल्यगती वीरौ शार्दूलवृषभोपमौ । अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ॥१८॥
यदृच्छयेव गां प्राप्तौ देवलोकादिवामरौ । कथं पद्भ्यामिह प्राप्तौ किमर्थं कस्य वा मुने ॥१९॥
वरायुधधरौ वीरौ कस्य पुत्रौ महामुने । भूषयन्ताविमं देशं चन्द्रसूर्याविवाम्बरम् ॥२०॥

सदाचारी राजश्रेष्ठ जनकने जब सुना कि विश्वामित्र आये हैं, तब वे अपने पुरोहित शतानन्द ॥६॥ और यज्ञ करानेवाले ऋत्विजोंके साथ अर्घ्य लेकर बड़े विनयके साथ शीघ्रतापूर्वक विश्वामित्रके पास गये ॥ ७ ॥ धर्मानुसार मन्त्र पढ़कर उन्होंने विश्वामित्रको अर्घ्य दिया । विश्वामित्रने भी महात्मा जनककी पूजा ग्रहण की ॥ ८ ॥ विश्वामित्रने राजासे कुशल पूछी, और उनके यज्ञकी निर्विघ्नताके सम्बन्धमें पूछा । तदनन्तर मुनिने अन्य मुनियों, पुरोहितों और उपाध्यायोंसे कुशल पूछी ॥ ९ ॥ विश्वामित्र मुनि अन्य मुनियोंसे प्रसन्नतापूर्वक मिले । राजा जनकने हाथ जोड़कर विश्वामित्रसे कहा ॥ १० ॥ भगवन्, इन मुनियोंके साथ आप आसनपर बैठें । जनकके कहनेपर विश्वामित्र बैठे ॥ ११ ॥ पुरोहित, ऋत्विज और मन्त्रियोंके साथ राजा भी अपनी-अपनी मर्यादाके अनुसार भिन्न-भिन्न आसनोंपर बैठे ॥१२॥ विश्वामित्रकी ओर देखकर राजा जनक बोले—देवताओंने मेरे यज्ञकी तयारी आज सफल की ॥१३॥ भगवान् (विश्वामित्र) के दर्शनसे मुझे आज यज्ञफल प्राप्त हुआ, मैं धन्य हूं, मैं अनुगृहीत हूं । जिसके यहां मुनिश्रेष्ठ आप ॥ १४ ॥ मुनियोंके साथ यज्ञ देखनेके लिए आये । ब्रह्मर्षे, यह दीक्षा बारह दिनोंकी बतलायी गयी है अर्थात् मैंने बारह दिनोंकी दीक्षा ली है ॥१५॥ कौशिक, यज्ञमें निमन्त्रित आप देवताओंका दर्शन करें । पुनः राजाने प्रसन्नतापूर्वक मुनिसे ॥ १६ ॥ हाथ जोड़कर पूछा, देवताके समान पराक्रमी ये दोनों राजकुमार ॥ १७ ॥ जो हाथीके समान चलते हैं, सिंहके समान पराक्रमी हैं, अश्विनोंके समान सुन्दर हैं और अभी जवान हो रहे हैं, कौन हैं ? ॥१८॥ मालूम होता है कि अपनी इच्छासेही देवलोकसे दो देवता मर्त्यलोकमें आये हैं । ये यहां पैदल किसलिए आये हैं ? ॥ १९ ॥ इन लोगोंने सुन्दर अस्त्र धारण किये हैं, महामुने, ये

परस्परस्य सदृशौ प्रमाणेङ्गितचेष्टितैः । काकपक्षधरौ वीरौ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥२१॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जनकस्य महात्मनः । न्यवेदयदमेयात्मा पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥२२॥
सिद्धाश्रमनिवासं च राक्षसानां वधं तथा । तत्रागमनमव्यग्रं विशालायाश्च दर्शनम् ॥२३॥
अहल्यादर्शनं चैव गौतमेन समागमम् । महाधनुषि जिज्ञासां कर्तुमागमनं तथा ॥२४॥
एतत्सर्वं महातेजा जनकाय महात्मने । निवेद्य विररामाथ विश्वामित्रो महामुनिः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशः सर्गः ५१

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रस्य धीमतः । हृष्टरोमा महातेजाः शतानन्दो महातपाः ॥ १ ॥
गौतमस्य सुतो ज्येष्ठस्तपसा द्योतितप्रभः । रामसंदर्शनादेव परं विस्मयमागतः ॥ २ ॥
एतौ निषण्णौ संप्रेक्ष्य शतानन्दो नृपात्मजौ । सुखासीनौ मुनिश्रेष्ठं विश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ ३ ॥
अपि ते मुनिशार्दूल मम माता यशस्विनी । दर्शिता राजपुत्राय तपो दीर्घमुपागता ॥ ४ ॥
अपि रामे महातेजा मम माता यशस्विनी । वन्यैरुपाहरत्पूजां पूजार्हे सर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥
अपि रामाय कथितं यदवृत्तं तत्पुरातनम् । मम मातुर्महातेजो देवेन दुरनुष्ठितम् ॥ ६ ॥
अपि कौशिक भद्रं ते गुरुणा मम संगता । मम माता मुनिश्रेष्ठ रामसंदर्शनादितः ॥ ७ ॥

किसके पुत्र हैं जो इस देशको इस समय सुशोभित कर रहे हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्य आकाशको शोभित करते हैं ॥ २० ॥ चाल-ढाल रहन-सहनमें ये दोनों समान हैं । ये दोनों अभी काकपक्षधर बालक हैं । इनका यथार्थ परिचय जानना चाहता हूँ ॥ २१ ॥ महात्मा जनककी बात सुनकर उदार ऋषिने कहा कि ये राजा दसरथके पुत्र हैं ॥ २२ ॥ पुनः सिद्धाश्रममें ठहरना, वहां राक्षसोंका माराजाना, मिथिलाके लिए यात्रा, बीचमें विशालामें ठहरना, ॥ २३ ॥ अहल्याका दर्शन, गौतमसे भेट, महाधनुषके सम्बन्धमें रामचन्द्रकी जिज्ञासा तथा यहां आना ॥२४॥ आदि सब बातें महातेजस्वी विश्वामित्र मुनि महात्मा जनकसे कहकर चुप हुए ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पचासवां सर्ग समाप्त ॥ ५० ॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रकी बातें (अहल्योद्धार) सुनकर महातपस्वी और तेजस्वी शतानन्दको बड़ा आश्चर्य हुआ, उनके रोंगटे खड़े होगये ॥ १ ॥ वे गौतमके बड़े पुत्र थे, उनकी तपस्याका तेज महान् था । उन्हें रामचन्द्रको देखनेसे बड़ा विस्मय हुआ ॥ २ ॥ सुखपूर्वक बैठे इन राजपुत्रोंको देखकर शतानन्द मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे बोले ॥ ३ ॥ मुनिश्रेष्ठ, आपने राजपुत्रोंको मेरी यशस्विनी माता दिखायी, जिसने बड़ी कठोर तपस्या की है ॥४॥ क्या मेरी यशस्विनी माताने सब प्राणियोंसे पूजा पानेके योग्य रामचन्द्रकी जङ्गली फल-फूलोंसे पूजा की ? ॥ ५ ॥ देवराज इन्द्रने मेरी माताके लिए जो कलुषित कृत्य किया, वह पुराना वृत्तान्त क्या रामचन्द्रसे कहा गया ? ॥६॥ विश्वामित्र, आपका कल्याण हो, रामचन्द्रके दर्शन पाजानेसे क्या अब मेरी माता मेरे पिताके साथ मिलगई ॥७॥

अपि मे गुरुणा रामः पूजितः कुशिकात्मज । इहागतो महातेजाः पूजां प्राप्य महात्मनः ॥ ८ ॥
अपि शान्तेन मनसा गुरुर्मे कुशिकात्मज । इहागतेन रामेण पूजितेनाभिवादितः ॥ ९ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विश्वामित्रो महामुनिः । प्रत्युवाच शतानन्दं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ॥१०॥
नातिक्रान्तं मुनिश्रेष्ठ यत्कर्तव्यं कृतं मया । संगता मुनिना पत्नी भार्गवेणेव रेणुका ॥११॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विश्वामित्रस्य धीमतः । शतानन्दो महातेजा रामं वचनमब्रवीत् ॥१२॥
स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव । विश्वामित्रं पुरस्कृत्य महर्षिमपराजितम् ॥१३॥
अचिन्त्यकर्मा तपसा ब्रह्मर्षिरमितप्रभः । विश्वामित्रो महातेजा वेद्म्येनं परमां गतिम् ॥१४॥
नास्ति धन्यतरो राम त्वत्तोऽन्यो भुवि कश्चन । गोप्ता कुशिकपुत्रस्ते येन तप्तं महत्तपः ॥१५॥
श्रूयतां चाभिधास्यामि कौशिकस्य महात्मनः । यथाबलं यथातत्त्वं तन्मे निगदतः शृणु ॥१६॥
राजासीदेष धर्मात्मा दीर्घकालमरिंदमः । धर्मज्ञः कृतविद्यश्च प्रजानां च हिते रतः ॥१७॥
प्रजापतिसुतस्त्वासीत्कुशो नाम महीपतिः । कुशस्य पुत्रो बलवान्कुशनाभः सुधार्मिकः ॥१८॥
कुशनाभसुतस्त्वासीद्गाधिरित्येव विश्रुतः । गाधेः पुत्रो महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ॥१९॥
विश्वामित्रो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् । बहुवर्षसहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥२०॥
कदाचित्तु महातेजा योजयित्वा वरूथिनीम् । अक्षौहिणीपरिवृतः परिचक्राम मेदिनीम् ॥२१॥
नगराणि च राष्ट्राणि सरितश्च महागिरीन् । आश्रमान्क्रमशो राजा विचरन्नाजगाम ह ॥२२॥

हे कौशिक, क्या मेरे पिताने रामचन्द्रकी पूजा की, क्या उस महात्माकी पूजा पाकर रामचन्द्र यहां आये हैं ? ॥ ८ ॥ क्या मेरे पितासे पूजा पाकर यहां आये हुए रामचन्द्रने उनको प्रणाम किया ॥९॥ दूसरेका अभिप्राय समझनेवाले और स्वयं भी बोलनेमें निपुण विश्वामित्र मुनि, शतानन्दकी बातें सुनकर, उनसे बोले ॥१०॥ मुनिश्रेष्ट, मैंने जो कुछ किया, उसमें मर्यादाका अतिक्रम कहीं भी नहीं हुआ । जैसे भार्गवसे रेणुका मिली थी वैसेही अहल्या गौतमसे मिलगयी ॥११॥ विश्वामित्रकी बातें सुनकर महातेजस्वी शतानन्द रामचन्द्रसे बोले ॥१२॥ अजेय महर्षि विश्वामित्रके साथ आप आये हैं, मैं आपका स्वागत करता हूं ॥ १३ ॥ इनके कर्म बड़े अद्भुत हैं, इन्होंने तपस्यासे ब्रह्मर्षि पद पाया है, ये बड़े तेजस्वी हैं, इनको मैं बड़ा हितकारी समझता हूं ॥१४॥ रामचन्द्र, इस संसारमें आपसे बढ़कर धन्य दूसरा नहीं है, क्योंकि घोर तपस्या करनेवाले विश्वामित्र आपके रक्षक हैं ॥ १५ ॥ महात्मा कौशिकको किस प्रकार तपोबल प्राप्त हुआ यह मैं कहूँगा । विधिपूर्वक आप मेरे द्वारा सुनें ॥१६॥ ये शत्रुओंको दमन करनेवाले बहुत दिनों तक राजा थे, धर्मात्मा थे, धर्मज्ञ थे, विद्वान् थे और प्रजाके कल्याणमें सदा तत्पर रहा करते थे ॥१७॥ प्रजापतिके पुत्र कुश नामके राजा थे, कुशके पुत्र कुशनाभ हुए जो बड़े बलवान् और धार्मिक थे ॥१८॥ कुशनाभके पुत्र गाधी नामसे प्रसिद्ध हुए, उन्हीं गाधीके पुत्र महातेजस्वी महात्मा विश्वामित्र हैं ॥१९॥ राजा होकर विश्वामित्रने कई हजार वर्षों तक पृथिवीका पालन किया ॥२०॥ किसी समय राजा विश्वामित्रने सेना इकट्ठी की और अक्षौहिणी सेना लेकर वे पृथिवी परिभ्रमण करनेके लिए निकले ॥२१॥ नगरों, राज्यों, नदियों, पर्वतों

वसिष्ठस्याश्रमपदं नानापुष्पलताद्रुमम् । नानामृगगणाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम् ॥२३॥
देवदानवगन्धर्वैः किंनरैरुपशोभितम् । प्रशान्तहरिणाकीर्णं द्विजसङ्घनिषेवितम् ॥२४॥
ब्रह्मर्षिगणसंकीर्णं देवर्षिगणसेवितम् । तपश्चरणसंसिद्धैरग्निकल्पैर्महात्मभिः ॥२५॥
सततं संकुलं श्रीमद्ब्रह्मकल्पैर्महात्मभिः । अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शीर्णपर्णाशनैस्तथा ॥२६॥
फलमूलाशनैर्दान्तैर्जितदोषैर्जितेन्द्रियैः । ऋषिभिर्वालखिल्यैश्च जपहोमपरायणैः ॥२७॥
अन्यैर्वैखानसैश्चैव समन्तादुपशोभितम् । वसिष्ठस्याश्रमपदं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।
ददर्श जयतां श्रेष्ठो विश्वामित्रो महाबलः ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशः सर्गः ५२

तं दृष्ट्वा परमप्रीतो विश्वामित्रो महाबलः । प्रणतो विनयाद्वीरो वसिष्ठं जपतां वरम् ॥ १ ॥
स्वागतं तव चेत्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना । आसनं चास्य भगवान्वसिष्ठो व्यादिदेश ह ॥ २ ॥
उपविष्टाय च तदा विश्वामित्राय धीमते । यथान्यायं मुनिवरः फलमूलमुपाहरत् ॥ ३ ॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजां वसिष्ठाद्राजसत्तमः । तपोऽग्निहोत्रशिष्येषु कुशलं पर्यपृच्छत ॥ ४ ॥

और आश्रमोंको देखते हुए राजा विश्वामित्र वसिष्ठके आश्रममें पहुंचे ॥२२॥ उस आश्रममें अनेक तरहके फूलोंकी लताएँ, वृक्ष, अनेक प्रकारके पशु और सिद्ध, चारण आदि शोभित होरहे थे ॥ २३ ॥ उस आश्रममें देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर भी थे, हरिण थे और वे शान्त थे, ब्राह्मणोंका समूह भी था ॥२४॥ ब्रह्मर्षियोंसे वह आश्रम भरा हुआ था, देवर्षि भी उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे, जिनकी तपस्या सिद्ध होगयी है ऐसे अग्निके समान तेजस्वी महात्मा भी थे ॥२५॥ ब्रह्मासे समता करनेवाले महात्माओंसे वह आश्रम सदा भरा रहता था । उन महात्माओंमें कोई जल, कोई वायु और कोई सूखे पत्ते खाकर निर्वाह करता था ॥२६॥ फल-मूल खानेवाले, नियमपालनकरनेवाले, जितेन्द्रिय, जप होम आदि करनेवाले वालखिल्य ऋषियोंसे वह आश्रम सदा भरा रहता था ॥ २७ ॥ अन्य वैखानसोंसे भी वह आश्रम सदा पूर्ण रहता था । इस प्रकार वह वसिष्ठका आश्रम दूसरे ब्रह्मलोकके समान मालूम पड़ता था । उस आश्रमको विजयी राजाओंमें श्रेष्ठ राजा विश्वामित्रने देखा ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५१ ॥

महाबली वीर विश्वामित्र ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने विनय पूर्वक प्रणाम किया ॥ १ ॥ महात्मा वसिष्ठने राजा विश्वामित्रका स्वागत किया और बैठनेके लिये उन्हें आसन दिया ॥ २ ॥ बुद्धिमान् विश्वामित्र जब आसनपर बैठे, तब नियमानुसार मुनिवरने फल-फूल उपहार दिया ॥ ३ ॥ राजश्रेष्ठ विश्वामित्रने वसिष्ठकी दी हुई पूजा ग्रहण की, तथा उन्होंने

विश्वामित्रो महातेजा वनस्पतिगणे तदा । सर्वत्र कुशलं प्राह वसिष्ठो राजसत्तमम् ॥ ५ ॥
सुखोपविष्टं राजानं विश्वामित्रं महातपाः । पप्रच्छ जपतां श्रेष्ठो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः ॥ ६ ॥
कच्चित्ते कुशलं राजन्कच्चिद्धर्मेण रञ्जयन् । प्रजाः पालयसे राजन्राजवृत्तेन धार्मिक ॥ ७ ॥
कच्चित्ते संभृता भृत्याः कच्चित्तिष्ठन्ति शासने । कच्चित्ते विजिताः सर्वे रिपवो रिपुसूदन ॥ ८ ॥
कच्चिद्बलेषु कोशेषु मित्रेषु च परंतप । कुशलं ते नरव्याघ्र पुत्रपौत्रे तथानघ ॥ ९ ॥
सर्वत्र कुशलं राजा वसिष्ठं प्रत्युदाहरत् । विश्वामित्रो महातेजा वसिष्ठं विनयान्वितम् ॥१०॥
कृत्वा तौ सुचिरं कालं धर्मिष्ठौ ताः कथास्तदा । मुदा परमया युक्तौ प्रीयेतां तौ परस्परम् ॥११॥
ततो वसिष्ठो भगवान्कथान्ते रघुनन्दन । विश्वामित्रमिदं वाक्यमुवाच प्रहसन्निव ॥१२॥
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि बलस्यास्य महाबल । तव चैवाप्रमेयस्य यथार्हं संप्रतीच्छ मे ॥१३॥
सत्क्रियां हि भवानेतां प्रतीच्छतु मया कृताम् । राजंस्त्वमतिथिश्रेष्ठः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥१४॥
एवमुक्तो वसिष्ठेन विश्वामित्रो महामुनिः । कृतमित्यब्रवीद्राजा पूजावाक्येन मे त्वया ॥१५॥
फलमूलेन भगवन्विद्यते यत्तवाश्रमे । पाद्येनाचमनीयेन भगवद्दर्शनेन च ॥१६॥
सर्वथा च महाप्राज्ञ पूजार्हेण सुपूजितः । नमस्तेऽस्तु गमिष्यामि मैत्रेणेक्षस्व चक्षुषा ॥१७॥
एवं ब्रुवन्तं राजानं वसिष्ठः पुनरेव हि । न्यमन्त्रयत धर्मात्मा पुनः पुनरुदारधीः ॥१८॥
बाढमित्येव गाधेयो वसिष्ठं प्रत्युवाच ह । यथाप्रियं भगवतस्तथास्तु मुनिपुंगव ॥१९॥

तपस्या, अग्निहोत्र और शिष्योंकी कुशल पूछी ॥ ४ ॥ पुनः विश्वामित्रने वृक्षोंके समाचार पूछे। वसिष्ठने सबकी कुशल बतलायी ॥५॥ सुखसे बैठे हुए विश्वामित्रसे महातपस्वी, ब्रह्मपुत्र, ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने पूछा ॥६॥ राजन्, आपकी तो कुशल है ? धार्मिक, क्या आप राजाके नियमोंसे प्रजाको सुखी रखते हैं ? धर्मपूर्वक उनका पालन करते हैं ?॥७॥ क्या आपको नौकर चाकर काफी मिलगये हैं ? क्या वे आपकी आज्ञा मानते हैं ? शत्रु-विजयिन्, क्या आपने सब शत्रु जीत लिये हैं ? ॥८॥ शत्रु-सन्तापक, आपकी सेना, खजाना और मित्र-राजाओंकी कुशल तो है ? हे नरश्रेष्ठ, हे निष्पाप, आपके पुत्र-पौत्रोंकी तो कुशल है ? ॥९॥ महातेजस्वी राजा विश्वामित्रने विनयी वसिष्ठको अपने सब विभागोंकी कुशल बतलायी ॥१०॥ बहुत देर तक उन धर्मात्माओंने बहुतसी बातें कीं। वे दोनों परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ तब भगवान वसिष्ठने हँसते हुए, विश्वामित्रसे कहा ॥ १२ ॥ हे महाबलिन्, आपको इस सेनाका मैं अतिथि-सत्कार करना चाहता हूँ, और परमपराक्रमी आपका भी उचित अतिथि-सत्कार करना चाहता हूँ, ग्रहण कीजिए ॥ १३ ॥ मेरा यह सत्कार आप ग्रहण करें। राजन्, आप श्रेष्ठ अतिथि हैं, अतएव हमारे पूजनीय हैं ॥ १४ ॥ महामुनि वसिष्ठकी बातें सुनकर, राजाने कहा-आपके इन प्रिय वचनोंने मेरा सत्कार करदिया ॥१५॥ भगवन्, आपके आश्रममें जो है-फल, मूल, पाद्य, आचमनीय (जल) और आपका दर्शन ॥ १६ ॥ इनके द्वारा, हम लोगोंके पूज्य होकर भी आपने सर्वथा पूजा की है। आपको प्रणाम !जाता हूं। मित्रताकी दृष्टि बनाये रखें ॥ १७ ॥ राजा के ऐसा कहनेपर धर्मात्मा और बुद्धिमान वशिष्ठने पुनः उनको अतिथि-सत्कार ग्रहण करनेके लिए निमंत्रित किया ॥१८॥ विश्वामित्रने अच्छा कहकर वशिष्ठका निमंत्रण मानलिया।

एवमुक्तस्तथा तेन वसिष्ठो जपतां वरः। आजुहाव ततः प्रीतः कल्माषीं धूतकल्मषाम् ॥२०॥
एह्येहि शबले क्षिप्रं शृणु चापि वचो मम। सबलस्यास्य राजर्षेः कर्तुं व्यवसितोऽस्म्यहम्।
भोजनेन महार्हेण सत्कारं संविधत्स्व मे ॥२१॥
यस्य यस्य यथाकामं षड्रसेष्वभिपूजितम्। तत्सर्वं कामधुग्दिव्ये अभिवर्ष कृते मम ॥२२॥
रसेनान्नेन पानेन लेह्यचोष्येण संयुतम्। अन्नानां निचयं सर्वं सृजस्व शबले त्वर ॥२३॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः ५३

एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन। विदधे कामधुक्कामान्यस्य यस्येप्सितं यथा ॥ १ ॥
इक्षून्मधूंस्तथा लाजान्मैरेयांश्च वरासवान्। पानानि च महार्हाणि भक्ष्यांश्चोच्चावचानपि ॥ २ ॥
उष्णाढ्यस्यौदनस्यात्र राशयः पर्वतोपमाः। मृष्टान्यन्नानि सूपांश्च दधिकुल्यास्तथैव च ॥ ३ ॥
नानास्वादुरसानां च खाण्डवानां तथैव च। भोजनानि सुपूर्णानि गौणानि च सहस्रशः ॥ ४ ॥
सर्वमासीत्सुसंतुष्टं हृष्टपुष्टजनायुतम्। विश्वामित्रबलं राम वसिष्ठेन सुतर्पितम् ॥ ५ ॥
विश्वामित्रो हि राजर्षिर्हृष्टपुष्टस्तदाभवत्। सान्तःपुरवरो राजा सब्राह्मणपुरोहितः ॥ ६ ॥

उन्होंने कहा-जैसी आपकी रुचि है, मुनिश्रेष्ठ, आप वैसाही करें ॥ १९ ॥ विश्वामित्रके स्वीकृत करनेपर ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठने प्रसन्नतापूर्वक, सर्वांगसुन्दर अपनी कपिला (गौ) बुलायी ॥ २० ॥ कपिले, आओ, मेरी बात सुनो। सेनाके साथ इन राजाका मैं अतिथिसत्कार करना चाहता हूँ। उत्तम भोजन तथा अन्य सत्कारकी वस्तुओंको जुटाओ ॥२१॥ जिस जिसकी (षड्रसोंमें) जिस रसकी ओर रुचि हो, उसके लिए वही रस दो। जो कुछ आवश्यकता हो, हे कामदुघे, उन सब वस्तुओंकी तुम मेरे लिए वृष्टि करो ॥२२॥ रस, अन्न, पान, लेह्य (चाटनेकी चीज़), चोष्य (चूसनेकी चीज़) तथा विविध अन्नोंकी राशिकी, हे कपिले, तुम मेरे लिए सृष्टि करो ॥ २३ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बावनवां सर्ग समाप्त ॥५२॥

वसिष्ठने कपिला कामधेनुसे इस प्रकार कहा और उसने सबके मनोरथ पूरे किये ॥१॥ ईख, मधु, (महुआ), लाज (लावा,अन्न) और मैरेय (ये सब शराबके नाम हैं) आदि उत्तम आसव तथा अन्य उत्तम पानकी वस्तुएँ, और भोजनकी अनेक प्रकारकी वस्तुएँ, उसने उपस्थित कीं ॥२॥ गरम भातकी पर्वतके समान ऊँची ढेरियां लगा दीं। मृष्ट अन्न (एक प्रकारका पायस), रहरकी दाल, दही, और घी आदि, कामधेनुकी कृपासे, पर्याप्त परिमाणमें वहाँ उपस्थित किये गये ॥३॥ विविध स्वाद रखनेवाले खाण्डव (एक तरहका भोजन) पदार्थोंसे भरे हुए उत्तम भोजनपात्र तथा गुड़की बनी हुई अनेक तरहकी चीजें वहाँ उपस्थित की गयीं ॥ ४ ॥ वसिष्ठके द्वारा तृप्त किये जानेपर विश्वामित्रकी समूची सेना बहुतही सन्तुष्ट हुई, बहुतही प्रसन्न हुई ॥ ५ ॥ राजा विश्वामित्र भी अपनी रानियों

सामात्यो मन्त्रिसहितः सभृत्यः पूजितस्तदा । युक्तः परमहर्षेण वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥
पूजितोऽहं त्वया ब्रह्मन्पूजार्हेण सुसत्कृतः । श्रूयतामभिधास्यामि वाक्यं वाक्यविशारद ॥ ८ ॥
गवां शतसहस्रेण दीयतां शबला मम । रत्नं हि भगवन्नेतद्रत्नहारी च पार्थिवः ॥ ९ ॥
तस्मान्मे शबलां देहि ममैषा धर्मतो द्विज । एवमुक्तस्तु भगवान्वसिष्ठो मुनिपुंगवः ॥१०॥
विश्वामित्रेण धर्मात्मा प्रत्युवाच महीपतिम् । नाहं शतसहस्रेण नापि कोटिशतैर्गवाम् ॥११॥
राजन्दास्यामि शबलां राशिभी रजतस्य वा । न परित्यागमर्हेयं मत्सकाशादरिंदम ॥१२॥
शाश्वती शबला मह्यं कीर्तिरात्मवतो यथा । अस्यां हव्यं च कव्यं च प्राणयात्रा तथैव च ॥१३॥
आयत्तमग्निहोत्रं च बलिहोमस्तथैव च । स्वाहाकारवषट्कारौ विद्याश्च विविधास्तथा ॥१४॥
आयत्तमत्र राजर्षे सर्वमेतन्न संशयः । सर्वस्वमेतत्सत्येन मम तुष्टिकरी तथा ॥१५॥
कारणैर्बहुभी राजन्न दास्ये शबलां तव । वसिष्ठेनैवमुक्तस्तु विश्वामित्रोऽब्रवीत्तदा ॥१६॥
संरब्धतरमत्यर्थं वाक्यं वाक्यविशारदः । हैरण्यकक्ष्याग्रैवेयान्सुवर्णाङ्कुशभूषितान् ॥१७॥
ददामि कुञ्जराणां ते सहस्राणि चतुर्दश । हैरण्यानां रथानां च श्वेताश्वानां चतुर्युजान् ॥१८॥
ददामि ते शतान्यष्टौ किंकिणीकविभूषितान् । हयानां देशजातानां कुलजानां महौजसाम् ॥१९॥

तथा ब्राह्मण पुरोहितोंके साथ, महर्षिके आतिथ्यसे बहुतही प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्रका, अमात्य (साथ काम करनेवाले मंत्री), मंत्री (सलाह देनेवाले) और भृत्योंके साथ, अतिथिसत्कार किया । इस प्रकार सत्कृत होकर बड़ी प्रसन्नतासे वे वसिष्ठसे बोले ॥७॥ हे ब्रह्मन्, आप पूजाके योग्य हैं, फिर भी आपने बड़े आदरके साथ मेरा सत्कार किया । हे वाक्यविशारद (वाक्यके गुण दोष जाननेवाले), मैं कहता हूँ, सुनिये ॥ ८ ॥ महाराज, गायें मैं देता हूँ, यह कपिला गौ आप मुझे दीजिए, क्योंकि यह रत्न है, और राजा रत्नका ग्रहण करनेवाला होता है ॥९॥ इस कारण यह गौ आप मुझे दीजिए, क्योंकि धर्मपूर्वक यह मेरी ही है । मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा वसिष्ठने विश्वामित्रकी यह बात सुनकर ॥ १० ॥ कहा-मैं सौ हज़ार गायों के बदले अथवा सौ करोड़ गायोंके बदलेमें भी ॥ ११ ॥ और राजन्, चाँदीकी राशिके बदलेमेंभी, यह गौ नहीं देसकता हूँ । किसी प्रकार मैं इसे अपने पाससे हटा नहीं सकता ॥ १२ ॥ राजयोगियोंकी कीर्ति, जिस प्रकार सदा उनके साथ रहती है, यह गौ भी उसी प्रकार सदा मेरे साथ रहती है । इसीके द्वारा देवताओंके लिए हव्य, पितरोंके लिये कव्य मिलता है तथा हमलोगोंको जीवन-यात्राका निर्वाह होता है ॥१३॥ अग्निहोत्र, बलि, होम, स्वाहाकार, वषट्कार (इनके द्वारा होनेवाले यज्ञ) की पूर्ति इसी गौके अधीन है ॥१४॥ राजन, मेरा जो कुछ है, सब इसीके अधीन है । यह मेरी गौ मेरा सर्वस्व है । यह आप सच समझें । यह गौ अनेक प्रकारसे मुझे सदा सन्तुष्ट किया करती है ॥१५॥ इस प्रकार अनेक कारण हैं, जिनसे मैं यह गौ आपको नहीं देसकता । वसिष्ठके ऐसा कहनेपर विश्वामित्रने बड़े आग्रहके साथ कहा ॥१६॥ सोनेके घण्टे, अंकुश तथा गलेके गहनोंसे युक्त ॥ १७ ॥ चौदह हज़ार हाथी मैं आपको देता हूँ । जिनमें चार-चार सफेद घोड़े जोते जाते हैं ॥ १८ ॥ जिनमें घण्टी लगी हुई हैं, वैसे एकसौ आठ सोनेके रथ मैं आपको देता हूँ । उत्तम देश और कुलोंमें

सहस्रमेकं दश च ददामि तव सुव्रत । नानावर्णविभक्तानां वयःस्थानां तथैव च ।
ददाम्येकां गवां कोटिं शबला दीयतां मम ॥२०॥
यावदिच्छसि रत्नानि हिरण्यं वा द्विजोत्तम । तावद्ददामि ते सर्वं दीयतां शबला मम ॥२१॥
एवमुक्तस्तु भगवान्विश्वामित्रेण धीमता । न दास्यामीति शबलां प्राह राजन्कथंचन ॥२२॥
एतदेव हि मे रत्नमेतदेव हि मे धनम् । एतदेव हि सर्वस्वमेतदेव हि जीवितम् ॥२३॥
दर्शश्च पौर्णमासश्च यज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः । एतदेव हि मे राजन्विविधाश्च क्रियास्तथा ॥२४॥
अतोमूलाः क्रियाः सर्वा मम राजन्न संशयः । बहुना किं प्रलापेन न दास्ये कामदोहिनीम् ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशः सर्गः ५४

कामधेनुं वसिष्ठोऽपि यदा न त्यजते मुनिः । तदास्य शबलां राम विश्वामित्रोऽन्वकर्षत ॥ १ ॥
नीयमाना तु शबला राम राज्ञा महात्मना । दुःखिता चिन्तयामास रुदती शोककर्शिता ॥ २ ॥
परित्यक्ता वसिष्ठेन किमहं सुमहात्मना । याहं राजभृतैर्दीना ह्रियेय भृशदुःखिता ॥ ३ ॥
किं मयापकृतं तस्य महर्षेर्भावितात्मनः । यन्मामनागसं दृष्ट्वा भक्तां त्यजति धार्मिकः ॥ ४ ॥

उत्पन्न बड़े पराक्रमी घोड़े ॥१९॥ दस हजार मैं आपको देता हूं। ये घोड़े अनेक रंगके तथा जवान होंगे। एक कोटि गौ मैं आपको देता हूँ, आप यह कपिला मुझे दीजिए ॥ २० ॥ आप जितना रत्न, जितना सोना चाहते हों, वह मैं आपको दूँगा। आप वह गौ मुझे दें ॥२१॥ बुद्धिमान विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर वसिष्ठने कहा राजन्, मैं यह गौ किसी प्रकार नहीं दे सकता ॥ २२ ॥ यह गौ ही मेरा रत्न है, यही मेरा धन है, मेरा सर्वस्व है, यहाँ तक कि मेरा जीवन है ॥ २३ ॥ दर्श, पौर्णमास तथा दक्षिणाप्राप्त होनेवाले यज्ञ और भी अनेक प्रकार की क्रियाएँ जो कुछ भी है, वह सब मेरेलिए यह गौही है ॥ २४ ॥ क्योंकि मेरी सब क्रियाएँ इसीके द्वारा सिद्ध होती हैं, इसमें आप सन्देह न करें। राजन्, अधिक कहनेसे क्या लाभ ! मैं आपको यह कामधेनु न दूँगा ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तिरपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५३ ॥

रामचन्द्र, जब वसिष्ठ किसी प्रकार भी अपनी शबला (चितकबरी) कामधेनु देनेको राजी न हुए, तब विश्वामित्रने उसे खुदही लेलिया ॥ १ ॥ जब राजा बलपूर्वक उसे ले जाने लगे, तब वह गौ बहुत दुःखी हुई, शोकसे पीड़ित होकर वह रोने लगी और मन ही मन सोचने लगी ॥ २ ॥ क्या महात्मा वसिष्ठने मेरा त्याग कर दिया, जिस कारण मुझ दुःखिनीको राजाके नौकर लिये जारहे हैं ॥३॥ उन दर्शनीय मूर्ति महर्षिका मैंने कौनसा अपराध किया। मुनिने भक्त तथा निरपराधिनी मेरा त्याग

इति संचिन्तयित्वा तु निश्वस्य च पुनःपुनः । जगाम वेगेन तदा वसिष्ठं परमौजसम् ॥ ५ ॥
निर्धूय तांस्तदा भृत्याञ्शतशः शत्रुसूदन । जगामानिलवेगेन पादमूलं महात्मनः ॥ ६ ॥
शबला सा रुदन्ती च क्रोशन्ती चेदमब्रवीत् । वसिष्ठस्याग्रतः स्थित्वा रुदन्ती मेघनिःस्वना ॥ ७ ॥
भगवन्किं परित्यक्ता त्वयाहं ब्रह्मणः सुत । यस्माद्राजभटा मां हि नयन्ते त्वत्सकाशतः ॥ ८ ॥
एवमुक्तस्तु ब्रह्मर्षिरिदं वचनमब्रवीत् । शोकसंतप्तहृदयां स्वसारमिव दुःखिताम् ॥ ९ ॥
न त्वां त्यजामि शबले नापि मेऽपकृतं त्वया । एष त्वां नयते राजा बलान्मत्तो महाबलः ॥१०॥
नहि तुल्यं बलं मह्यं राजा त्वद्य विशेषतः । बली राजा क्षत्रियश्च पृथिव्याः पतिरेवच ॥११॥
इयमक्षौहिणी पूर्णा गजवाजिरथाकुला । हस्तिध्वजसमाकीर्णा तेनासौ बलवत्तमः ॥१२॥
एवमुक्ता वसिष्ठेन प्रत्युवाच विनीतवत् । वचनं वचनज्ञा सा ब्रह्मर्षिमतुलप्रभम् ॥१३॥
न बलं क्षत्रियस्याहुर्ब्राह्मणा बलवत्तराः । ब्रह्मन्ब्रह्मबलं दिव्यं क्षत्राच्च बलवत्तरम् ॥१४॥
अप्रमेयं बलं तुभ्यं न त्वया बलवत्तराः । विश्वामित्रो महावीर्यस्तेजस्तव दुरासदम् ॥१५॥
नियुङ्क्ष्व मां महातेजस्त्वं ब्रह्मबलसंभृताम् । तस्य दर्पं बलं यत्नं नाशयामि दुरात्मनः ॥१६॥
इत्युक्तस्तु तया राम वसिष्ठस्तु महायशाः । सृजस्वेति तदोवाच बलं परबलार्दनम् ॥१७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुरभिः सासृजत्तदा । तस्या हुंभारवोत्सृष्टाः पह्लवाः शतशो नृप ॥१८॥

क्यों किया ॥ ४ ॥ इस प्रकार विचार कर तथा दुःखकी सांसें छोड़कर वह बड़े वेगसे परम तेजस्वी मुनिके पास गयी ॥ ५ ॥ उन सैकड़ों नौकरोंको झटककर वायुवेगसे वह महात्माके चरणोंके पास गयी ॥ ६ ॥ वह वसिष्ठके आगे बैठकर रोती हुई तथा अपने भाग्यकी निन्दा करती हुई गम्भीर शब्दोंमें बोली ॥ ७ ॥ भगवन् ब्रह्मपुत्र, क्या आपने मेरा त्याग कर दिया, जिससे ये राजाके नौकर आपके पाससे मुझे ले जारहे हैं ॥ ८ ॥ ब्रह्मर्षिने दुःखिता, बहिनके समान, पीड़ित गौसे कहा ॥ ९ ॥ कामदुघे, मैंने तुम्हारा त्याग नहीं किया और तुमने भी मेरी कोई बुराई नहीं की है, जबरदस्ती ये राजा तुमको लेजारहे हैं, क्योंकि ये मुझसे बलवान् हैं और घमण्डी हैं ॥१०॥ इनके समान मुझमें बल नहीं है, विशेषकर ये इस समय राजा हैं, बलवान् हैं, क्षत्रिय हैं और पृथिवीके स्वामी हैं ॥११॥ इनके पास यह अक्षौहिणी सेना है, जिसमें उत्तम हाथी, घोड़े और रथ हैं, इस कारण ये और भी बलवान् हैं ॥१२॥ वसिष्ठकी बातें सुनकर गौने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, अनुपम तेजस्वी महर्षिके वचनोंका अभिप्राय उसने समझ लिया था ॥१३॥ ब्राह्मणलोग क्षत्रियोंके बलको श्रेष्ठ नहीं मानते हैं । ब्रह्मन्, ब्रह्मबल अलौकिक है और वह क्षत्रियोंके बलसे भी बलवान् है ॥ १४ ॥ महाराज, आपका बल अद्भुत है, विश्वामित्र आपसे बलवान् नहीं हैं । विश्वामित्र केवल बलवान् हैं, पर आपका तेज असह्य है ॥ १५ ॥ महाराज, आप मुझे आज्ञा दें मैं ब्रह्मबलसे युक्त होकर उस दुरात्माके अहङ्कार, सेना तथा बुद्धिका नाश कर देता हूं ॥ १६ ॥ रामचन्द्र, गौके ऐसा कहनेपर महायशस्वी वसिष्ठने कहा-शत्रुसेनाको नष्ट करनेवाली अपनी सेना बनाओ ॥ १७ ॥ वसिष्ठकी आज्ञा पातेही उस गौने तत्काल सेनाकी सृष्टि की । उसके हंभा (गौका शब्द) करतेही

नाशयन्ति बलं सर्वं विश्वामित्रस्य पश्यतः । स राजा परमक्रुद्धः क्रोधविस्फारितेक्षणः ॥१९॥
पह्लवान्नाशयामास शस्त्रैरुच्चावचैरपि । विश्वामित्रार्दितान्दृष्ट्वा पह्लवाञ्शतशस्तदा ॥२०॥
भूय एवासृजद्घोराञ्छकान्यवनमिश्रितान् । तैरासीत्संवृता भूमिः शकैर्यवनमिश्रितैः ॥२१॥
प्रभावद्भिर्महावीर्यैर्हेमकिंजल्कसंनिभैः । तीक्ष्णासिपट्टिशधरैर्हेमवर्णाम्बरावृतैः ॥२२॥
निर्दग्धं तद्बलं सर्वं प्रदीप्तैरिव पावकैः । ततोऽस्त्राणि महातेजा विश्वामित्रो मुमोच ह ।
तैस्ते यवनकाम्बोजा बर्बराश्चाकुलीकृताः ॥ २३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःपञ्चाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ५५

ततस्तानाकुलान्दृष्ट्वा विश्वामित्रास्त्रमोहितान् । वसिष्ठश्चोदयामास कामधुक्सृज योगतः ॥ १ ॥
तस्या हुंकारतो जाताःकाम्बोजा रविसंनिभाः । ऊधसश्चाथ संभूता बर्बराः शस्त्रपाणयः ॥ २ ॥
योनिदेशाच्च यवनाः शकृद्देशाच्छकाः स्मृताः । रोमकूपेषु म्लेच्छाश्च हारीताः सकिरातकाः ॥ ३ ॥
तैस्तन्निषूदितं सर्वं विश्वामित्रस्य तत्क्षणात् । सपदातिगजं साश्वं सरथं रघुनन्दन ॥ ४ ॥
दृष्ट्वा निषूदितं सैन्यं वसिष्ठेन महात्मना । विश्वामित्रसुतानां तु शतं नानाविधायुधम् ॥ ५ ॥

सैकड़ों पह्लव (म्लेच्छ) जातिके वीर उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥ विश्वामित्रके देखते-देखतेही उनकी सेना नष्ट होने लगी, इससे राजा बड़े क्रोधित हुए और उन्होंने क्रोधसे आँखें फाड़कर ॥ १९ ॥ अनेक तरहके अस्त्रोंसे पह्लवोंका नाश कर दिया । इस प्रकार विश्वामित्रके द्वारा अपनी पह्लव सेनाको नष्ट देखकर ॥२०॥ गौने और भी भयानक शक और यवन वीरोंकी सृष्टि की, उन दोनों जातियोंके वीरोंसे यह समस्त पृथिवी भरगयी ॥ २१ ॥ वे बड़े प्रभावशाली थे, बड़े वीर थे, वे पीले रंगके थे, उनकी तलवारें बड़ी तीखी थीं, उनलोगोंने पीले रंगके वस्त्र पहने थे ॥ २२ ॥ प्रदीप्त अग्निके समान उस सेनाने विश्वामित्रकी समस्त सेनाको नष्ट कर दिया । तब महातेजस्वी विश्वामित्रने अस्त्रप्रहार करना प्रारंभ किया, जिससे धेनुकी सेनाके यवन, काम्बोज और बर्बर सिपाही भाग खड़े हुए ॥२३॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौअनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५४ ॥

विश्वामित्रके अस्त्र-प्रहारसे उनलोगोंको भागते देखकर वसिष्ठने कामधेनुसे कहा-तुम अपने योगके प्रभावसे नयी सृष्टि करो ॥ १ ॥ उसके हुंकारसे कांबोज जातिके वीर उत्पन्न हुए, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे । धेनुके थनसे अस्त्र-शस्त्र लिये बर्बर जातिके वीर उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ धेनुके गुह्य अंगसे यवन और शकृत (गोबर) से शक उत्पन्न हुए । रोमोंसे म्लेच्छ, हारीत और किरात नामक जातियोंके वीर उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ विश्वामित्रकी बची हुई पैदल, हाथीसवार, घुड़सवार और रथ-सवार सेनाको धेनुकी सेनाने शीघ्रही नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥ महात्मा वसिष्ठने विश्वा-

अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धं वसिष्ठं जपतां वरम् । हुंकारेणैव तान्सर्वान्निर्ददाह महानृषिः ॥ ६ ॥
ते साश्वरथपादाता वसिष्ठेन महात्मना । भस्मीकृता मुहूर्तेन विश्वामित्रसुतास्तथा ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा विनाशितान्सर्वान्बलं च सुमहायशाः । सव्रीडं चिन्तयाविष्टो विश्वामित्रोऽभवत्तदा ॥ ८ ॥
समुद्र इव निर्वेगो भग्नदंष्ट्र इवोरगः । उपरक्त इवादित्यः सद्यो निष्प्रभतां गतः ॥ ९ ॥
हतपुत्रबलो दीनो लूनपक्ष इव द्विजः । हतसर्वबलोत्साहो निर्वेदं समपद्यत ॥१०॥
स पुत्रमेकं राज्याय पालयेति नियुज्य च । पृथिवीं क्षत्रधर्मेण वनमेवाभ्यपद्यत ॥११॥
स गत्वा हिमवत्पार्श्वे किंनरोरगसेविते । महादेवप्रसादार्थं तपस्तेपे महातपाः ॥१२॥
केनचित्त्वथ कालेन देवेशो वृषभध्वजः । दर्शयामास वरदो विश्वामित्रं महामुनिम् ॥१३॥
किमर्थं तप्यसे राजन्ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् । वरदोऽस्मि वरो यस्ते काङ्क्षितःसोऽभिधीयताम् १४
एवमुक्तस्तु देवेन विश्वामित्रो महातपाः । प्रणिपत्य महादेवं विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥१५॥
यदि तुष्टो महादेव धनुर्वेदो ममानघ । साङ्गोपाङ्गोपनिषदः सरहस्यः प्रदीयताम् ॥१६॥
यानि देवेषु चास्त्राणि दानवेषु महर्षिषु । गन्धर्वयक्षरक्षःसु प्रतिभान्तु ममानघ ॥१७॥
तव प्रसादाद्भवतु देवदेव ममेप्सितम् । एवमस्त्विति देवेशो वाक्यमुक्त्वा गतस्तदा ॥१८॥
प्राप्य चास्त्राणि देवेशाद्विश्वामित्रो महाबलः । दर्पेण महता युक्तो दर्पपूर्णोऽभवत्तदा ॥१९॥

मित्रकी समस्त सेना नष्ट कर दी, यह देखकर विश्वामित्रके सौ पुत्रोंने, विविध अस्त्र-शस्त्र लेकर ॥ ५ ॥ बड़े क्रोधसे ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठपर आक्रमण किया, पर वे सब, महर्षि वसिष्ठके एक हुंकार-सेही जलमरे ॥ ६ ॥ अश्व, रथ और पैदल सेना तथा विश्वामित्रके लड़कोंको एक मुहूर्तमें ही महात्मा वसिष्ठने भस्म करदिया ॥ ७ ॥ महायशस्वी विश्वामित्र अपनी सेना तथा पुत्रोंको नष्ट देखकर बड़े लज्जित हुए और वे चिन्तामग्न होगये ॥ ८ ॥ स्तब्ध समुद्रके समान, दन्तहीन सर्पके समान और ग्रहण लगे सूर्यके समान, विश्वामित्र शीघ्रही प्रभाहीन होगये ॥ ९ ॥ सेना और पुत्रोंके मारे जानेपर विश्वामित्र पङ्कटे पक्षीके समान होगये । सब प्रकारके बल और उत्साहके नष्ट होनेसे विश्वामित्रके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ उन्होंने अपने एक पुत्रको राज्यके लिए नियुक्त करके और क्षात्र धर्मसे पृथिवीका पालन करो-यह आज्ञा देकर, वनका आश्रय लिया ॥११॥ वे हिमवान पर्वतके समीप गये, जहाँ किन्नर और उरग निवास करते हैं । वहीं महातपस्वी विश्वामित्रने महादेवकी प्रसन्नताके लिए तप करना प्रारंभ किया ॥ १२ ॥ कुछ समयके बाद वरद महादेवजीने महामुनि विश्वामित्रको दर्शन दिये ॥ १३ ॥ महादेवजीने कहा-राजन्, किसलिए तपस्या कर रहे हो ? क्या चाहते हो ? मैं वर देनेवाला हूँ । जो वर तुम चाहो, वह मुझसे माँगलो ॥ १४ ॥ महादेवकी यह बात सुन कर महातपस्वी विश्वामित्रने प्रणाम करके यह कहा ॥ १५ ॥ महादेव, यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो अंगोपांग मंत्र तथा रहस्यके साथ धनुर्वेद (अस्त्र-विद्या) मुझे दें ॥ १६ ॥ देवताओंके, दानवोंके, महर्षियोंके, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंके जो कुछ अस्त्र हों, वे सब मुझे मालूम होजायँ ॥ १७ ॥ देवदेव, आपकी कृपासे मेरा यह मनोरथ पूरा हो । 'ऐसा ही हो' कहकर महादेव अपने स्थानको गये ॥ १८ ॥ महाबली विश्वामित्रने महादेवसे सब अस्त्र पाये,

विवर्धमानो वीर्येण समुद्र इव पर्वणि । हतं मेने तदा राम वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥२०॥
ततो गत्वाश्रमपदं मुमोचास्त्राणि पार्थिवः । यैस्तत्तपोवनं नाम निर्दग्धं चास्त्रतेजसा ॥२१॥
उदीर्यमाणमस्त्रं तद्विश्वामित्रस्य धीमतः । दृष्ट्वा विप्रद्रुता भीता मुनयः शतशो दिशः ॥२२॥
वासिष्ठस्य च ये शिष्या ये च वै मृगपक्षिणः । विद्रवन्ति भयाद्भीता नानादिग्भ्यः सहस्रशः ॥२३॥
वसिष्ठस्याश्रमपदं शून्यमासीन्महात्मनः । मुहूर्तमिव निःशब्दमासीदीरिणसंनिभम् ॥२४॥
वदतो वै वसिष्ठस्य मा भैरिति मुहुर्मुहुः । नाशयाम्यद्य गाधेयं नीहारमिव भास्करः ॥२५॥
एवमुक्त्वा महातेजा वसिष्ठो जपतां वरः । विश्वामित्रं तदा वाक्यं सरोषमिदमब्रवीत् ॥२६॥
आश्रमं चिरसंवृद्धं यद्विनाशितवानसि । दुराचारो हि यन्मूढस्तस्मात्त्वं न भविष्यसि ॥२७॥
इत्युक्त्वा परमक्रुद्धो दण्डमुद्यम्य सत्वरः । विधूम इव कालाग्निर्यमदण्डमिवापरम् ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशः सर्गः ५६

एवमुक्तो वसिष्ठेन विश्वामित्रो महाबलः । आग्नेयमस्त्रमुद्दिश्य तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ १ ॥
ब्रह्मदण्डं समुद्यम्य कालदण्डमिवापरम् । वसिष्ठो भगवान्क्रोधादिदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

जिससे उनका अहंकार और भी बढ़गया ॥ १९ ॥ पूर्णिमाके समुद्रके समान, विश्वामित्रका पराक्रम बढ़ने लगा और उस समय विश्वामित्रने समझा कि ऋषिश्रेष्ठको मैंने मारलिया ॥ २० ॥ वे वसिष्ठके आश्रमपर गये और वहाँ अस्त्र छोड़ने लगे । उन अस्त्रोंके तेजसे, वह तपोवन जलने लगा ॥ २१ ॥ विश्वामित्र बड़ी बुद्धिमत्तासे अस्त्र चला रहे हैं, यह देख सैकड़ों मुनि डरकर भाग गये ॥ २२ ॥ वसिष्ठके जो शिष्य थे, जो पशुपक्षी थे, वे भी भयभीत होकर इधर-उधर दिशाओंमें भागने लगे ॥ २३ ॥ महात्मा वसिष्ठका वह आश्रम क्षणभरमें शून्य होगया, ऊसर खेतके समान होगया ॥ २४ ॥ तब वसिष्ठजीने कहा कि मत डरो, मैं शीघ्रही इस गाधेय (गाधिके लड़के) का नाश करता हूँ, जैसे सूर्य कुहासाका करते हैं ॥ २५ ॥ आश्रमवासियोंसे महर्षिश्रेष्ठ वसिष्ठने ऐसा कहकर, क्रोधपूर्वक विश्वामित्रसे यों कहा ॥ २६ ॥ मूर्ख, बहुत दिनोंसे बनाये हुए, इस आश्रमका तुमने नाश किया है, यह बड़ा भारी पाप है, इस पापसे तुम्हारा नाश अवश्य होगा ॥ २७ ॥ ऐसा कहकर बड़े क्रोधसे उन्होंने दण्ड उठाया, दूसरे यमदंडके समान या उस समय वसिष्ठ धूम रहित कालाग्निके समान मालूम पड़ते थे ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पचपनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५५ ॥

वसिष्ठके ऐसा कहनेपर महाबली विश्वामित्रने उनपर आग्नेय अस्त्र चलाया और 'ठहरो ठहरो' कहकर ललकारा ॥ १ ॥ भगवान् वसिष्ठने दूसरे कालदण्ड (मृत्युदण्ड) के समान ब्रह्म

सब्रबन्धो स्थितोऽस्म्येष यद्बलं तद्विदर्शय । नाशयाम्यद्य ते दर्पं शस्त्रस्य तव गाधिज ॥ ३ ॥
क्व च ते क्षत्रियबलं क्व च ब्रह्मबलं महत् । पश्य ब्रह्मबलं दिव्यं मम क्षत्रियपांसन ॥ ४ ॥
तस्यास्त्रं गाधिपुत्रस्य घोरमाग्नेयमुत्तमम् । ब्रह्मदण्डेन तच्छान्तमग्नेर्वेग इवाम्भसा ॥ ५ ॥
वारुणं चैव रौद्रं च ऐन्द्रं पाशुपतं तथा । ऐषीकं चापि चिक्षेप कुपितो गाधिनन्दनः ॥ ६ ॥
मानवं मोहनं चैव गान्धर्वं स्वापनं तथा । जृम्भणं मोहनं चैव संतापनविलापने ॥ ७ ॥
शोषणं दारणं चैव वज्रमस्त्रं सुदुर्जयम् । ब्रह्मपाशं कालपाशं वारुणं पाशमेव च ॥ ८ ॥
पिनाकमस्त्रं दयितं शुष्कार्द्रे अशनी तथा । दण्डास्त्रमथ पैशाचं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ॥ ९ ॥
धर्मचक्रं कालचक्रं विष्णुचक्रं तथैव च । वायव्यं मथनं चैव अस्त्रं हयशिरस्तथा ॥१०॥
शक्तिद्वयं च चिक्षेप कंकालं मुसलं तथा । वैद्याधरं महास्त्रं च कालास्त्रमथ दारुणम् ॥११॥
त्रिशूलमस्त्रं घोरं च कापालमथ कङ्कणम् । एतान्यस्त्राणि चिक्षेप सर्वाणि रघुनन्दन ॥१२॥
वासिष्ठे जपतां श्रेष्ठे तदद्भुतमिवाभवत् । तानि सर्वाणि दण्डेन ग्रसते ब्रह्मणः सुतः ॥१३॥
तेषु शान्तेषु ब्रह्मास्त्रं क्षिप्तवान्गाधिनन्दनः । तदस्त्रमुद्यतं दृष्ट्वा देवाः साग्निपुरोगमाः ॥१४॥
देवर्षयश्च संभ्रान्ता गन्धर्वाः समहोरगाः । त्रैलोक्यमासीत्संत्रस्तं ब्रह्मास्त्रे समुदीरिते ॥१५॥
तदप्यस्त्रं महाघोरं ब्राह्मं ब्राह्मेण तेजसा । वसिष्ठो ग्रसते सर्वं ब्रह्मदण्डेन राघव ॥१६॥

दण्ड उठाकर यों कहा ॥ २ ॥ क्षत्रियाधम, मैं खड़ा हूं । जो कुछ तुम्हारा बल हो वह दिखाओ, शस्त्र-विद्याका तुम्हारा अहङ्कार मैं नष्ट करूंगा ॥ ३ ॥ कहां तुम्हारा क्षत्रिय बल, और कहां यह महान् ब्रह्मबल । क्षत्रियाधम, आज मेरे अलौकिक ब्रह्मबलको तू देख ॥ ४ ॥ वसिष्ठके ब्रह्म-दण्डसे विश्वामित्र का वह भयानक आग्नेय अस्त्र शान्त होगया, जिसप्रकार जलसे आग शान्त होजाती है ॥ ५ ॥ तब क्रोध करके गाधिपुत्र विश्वामित्रने क्रोध करके वसिष्ठपर वारुण (वरुणका), रौद्र (रुद्रका), ऐन्द्र (इन्द्रका), पाशुपत (पशुपतिका) और ऐषीक नाम अस्त्र चलाये ॥ ६ ॥ पुनः विश्वामित्रने नीचे लिखे नामोंवाले, अस्त्र चलाये, बेहोश कर देनेवाला मानवास्त्र, नींद ला देनेवाला गन्धर्व अस्त्र, जृम्भण, मोहन, सन्तापन, विलापन नामके अस्त्र ॥७॥ शोषण, दारण, और कठिनतासे जीते जाने योग्य वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश और वरुणका पाश, ॥८॥ प्यारा पिनाक, शुष्क और आर्द्र दोनों अशनी, पिशाचोंका दण्ड अस्त्र तथा क्रौञ्चअस्त्र ॥ ९ ॥ धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णु चक्र, वायव्य मथन और हयसिर ॥१०॥ दो शक्तियां तथा कङ्काल और मुसल नामक अस्त्र विश्वामित्रने छोड़े । विद्याधरोंका महास्त्र, भयानक कालास्त्र, ॥११॥ त्रिशूल, कापाल, और कङ्कण ये सब अस्त्र विश्वामित्रने छोड़े ॥ १२ ॥ विश्वामित्रने इतने अस्त्र ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठपर छोड़े, पर आश्चर्य है कि ब्रह्मपुत्र वशिष्ठने उन सब अस्त्रोंको दण्डसे नष्ट करदिया ॥ १३ ॥ उन सब अस्त्रोंके बेकार होजानेपर गाधिपुत्र विश्वामित्रने ब्रह्मास्त्र चलाया । इस अस्त्रको विश्वामित्रने चलाया, यह देख-कर अग्नि प्रभृति आदि देवता, ॥ १४ ॥ देवर्षि, गन्धर्व और महोरग (सर्प) ये सब घबड़ा गये । ब्रह्मास्त्रके चलाने से समस्त त्रिलोक कांप गया ॥१५॥ उस महाभयानक ब्राह्म अस्त्रको भी वसिष्ठने

ब्रह्मास्त्रं ग्रसमानस्य वसिष्ठस्य महात्मनः। त्रैलोक्यमोहनं रौद्रं रूपमासीत्सुदारुणम् ॥१७॥
रोमकूपेषु सर्वेषु वसिष्ठस्य महात्मनः। मरीच्य इव निष्पेतुरग्नेर्धूमाकुलार्चिषः ॥१८॥
प्राज्वलद्ब्रह्मदण्डश्च वसिष्ठस्य करोद्यतः। विधूम इव कालाग्नेर्यमदण्ड इवापरः ॥१९॥
ततोऽस्तुवन्मुनिगणा वासिष्ठं जपतां वरम्। अमोघं ते बलं ब्रह्मंस्तेजो धारय तेजसा ॥२०॥
निगृहीतस्त्वया ब्रह्मन्विश्वामित्रो महाबलः। अमोघं ते बलं श्रेष्ठं लोकाःसन्तु गतव्यथाः ॥२१॥
एवमुक्तो महातेजाः शमं चक्रे महातपाः। विश्वामित्रो विनिकृतो विनिःश्वस्येदमब्रवीत् ॥२२॥
धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्। एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥२३॥
तदेतत्प्रसमीक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रियमानसः। तपो महत्समास्थास्ये यद्वै ब्रह्मत्वकारणम् ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्पञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः ५७

ततः संतप्तहृदयः स्मरन्निग्रहमात्मनः। विनिःश्वस्य विनिःश्वस्य कृतवैरो महात्मना ॥ १ ॥
स दक्षिणां दिशं गत्वा महिष्या सह राघव। तताप परमं घोरं विश्वामित्रो महातपाः ॥ २ ॥
फलमूलाशनो दान्तश्चचार परमं तपः। अथास्य जज्ञिरे पुत्राः सत्यधर्मपरायणाः ॥ ३ ॥

ब्राह्मतेज ब्रह्मदण्डसे शान्त करदिया ॥ १६ ॥ जिस समय वसिष्ठने ब्राह्ममस्त्रको शान्त किया, उस समय उनका रूप बड़ा भयानक होगया था, उस समयका उनका रूप त्रिलोकको मूर्च्छित करनेवाला होगया था ॥१७॥ महात्मा वसिष्ठके प्रत्येक रोमकूपसे किरणोंके समान अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं थीं ॥ १८ ॥ वसिष्ठके हाथमें उठा हुआ ब्रह्मदण्ड भी प्रज्वलित हुआ, जो धूमहीन कालाग्निके समान तथा दूसरे यमदण्डके समान मालूम पड़ता था ॥ १९ ॥ तब मुनियोंने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठकी स्तुति की, ब्रह्मन्, तुम्हारा बल अजेय है, तुम अपना तेज अपने तेजसे शान्त करो ॥ २० ॥ तुमने विश्वामित्रको परास्त किया, तुम्हारा बल अमोघ (व्यर्थ न होनेवाला) है, अपना तेज हटाओ जिससे प्राणियोंकी पीड़ा दूर हो ॥ २१ ॥ मुनियोंके स्तुति करनेपर महातेजस्वी वसिष्ठने अपना ब्रह्मदण्ड शान्त किया। पराजित विश्वामित्रने लम्बी सांस लेकर कहा ॥ २२ ॥ क्षत्रिय बलको धिक्कार ! ब्रह्मतेजही प्रधान बल है, एक ब्रह्मदण्डने मेरे सब अस्त्रोंको नष्ट करदिया ॥ २३ ॥ इन सब बातोंको देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और मैं स्वयं यह तपस्या करने जारहा हूँ, जिससे मनुष्य ब्रह्म तेज पाता है, ब्राह्मण बनता है ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छप्पनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५६ ॥

अपना पराजय स्मरण करनेसे विश्वामित्रका हृदय जलने लगा । महात्मा वसिष्ठसे बैर ठान कर तथा बारबार लम्बी सांसें लेते हुए ॥१॥ अपनी महारानीके साथ दक्षिण दिशाकी ओर चेगये। वहां महातपस्वी विश्वामित्रने बड़ी कठिन तपस्या की ॥२॥ फल-मूल खाकर तथा इन्द्रियोंको वशमें

हविष्यन्दो मधुष्यन्दो दृढनेत्रो महारथः । पूर्णे वर्षसहस्रे तु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४ ॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विश्वामित्रं तपोधनम् । जिता राजर्षिलोकास्ते तपसा कुशिकात्मज ॥ ५ ॥
अनेन तपसा त्वां हि राजर्षिरिति विद्महे । एवमुक्त्वा महातेजा जगाम सहदैवतैः ॥ ६ ॥
त्रिविष्टपं ब्रह्मलोकं लोकानां परमेश्वरः । विश्वामित्रोऽपितच्छ्रुत्वाह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः॥ ७ ॥
दुःखेन महताविष्टः समन्युरिदमब्रवीत् । तपश्च सुमहत्तप्तं राजर्षिरिति मां विदुः ॥ ८ ॥
देवाः सर्षिगणाः सर्वे नास्ति मन्ये तपःफलम् । एवं निश्चित्य मनसा भूय एव महातपाः ॥ ९ ॥
तपश्चचार धर्मात्मा काकुत्स्थ परमात्मवान् । एतस्मिन्नेव काले तु सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥१०॥
त्रिशङ्कुरिति विख्यात इक्ष्वाकुकुलवर्धनः । तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना यजेयमिति राघव ॥११॥
गच्छेयं स्वशरीरेण देवतानां परां गतिम् । वसिष्ठं स समाहूय कथयामास चिन्तितम् ॥१२॥
अशक्यमिति चाप्युक्तो वसिष्ठेन महात्मना । प्रत्याख्यातो वसिष्ठेन स ययौ दक्षिणां दिशम् ॥१३॥
ततस्तत्कर्मसिद्ध्यर्थं पुत्रांस्तस्य गतो नृपः । वासिष्ठा दीर्घतपसस्तपो यत्र हि तेपिरे ॥१४॥
त्रिशङ्कुस्तु महातेजाः शतं परमभास्वरम् । वसिष्ठपुत्रान्ददृशे तप्यमानान्मनस्विनः ॥१५॥
सोऽभिगम्य महात्मानः सर्वानेव गुरोः सुतान् । अभिवाद्यानुपूर्व्येण ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः॥१६॥
अब्रवीत्स महात्मानः सर्वानेव कृताञ्जलिः । शरणं वः प्रपन्नोऽहं शरण्याञ्शरणं गतः ॥१७॥

करके वे तपस्या करनेलगे । वहीं सत्यवादी और धर्मात्मा कई पुत्र इनके उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ उनके नाम ये हैं-हविष्यन्द, मधुस्यन्द दृढ़नेत्र, और महारथ, सभी महावीर हुए । इस प्रकार एक हजार वर्ष बीतनेपर लोकपितामह ब्रह्मा ॥ ४ ॥ आये और महातपस्वी विश्वामित्रसे बोले-कौशिक, तुमने अपनी तपस्याके बलसे राजर्षियोंके लोक जीत लिये, अर्थात् राजर्षियोंको जो लोक प्राप्त होते हैं, वे तुम्हें प्राप्त होंगे ॥ ५ ॥ इस तपस्याके कारण आजसे हमलोग तुम्हें राजर्षि समझने लगे हैं । ऐसा कहकर महातेजस्वी ब्रह्मा देवताओंके साथ चलेगये ॥ ६ ॥ लोकोंके अधिपति ब्रह्मा देवलोक होते हुए ब्रह्मलोक गये । ब्रह्माकी बात सुननेसे विश्वामित्रका सिर लज्जाके कारण कुछ झुक गया ॥७॥ उनको बड़ा दुःख हुआ और वे क्रोधसे बोले-मैंने इतनी कठिन तपस्या की और येमुझे राजर्षिही समझते हैं ॥८॥ देवता और ऋषि मुझे राजर्षिही समझते हैं । इससे मालूम पड़ता है कि जो तपस्या मैंने की है उसका फल ब्रह्मतेज नहीं है । ऐसा निश्चय करके महातपस्वी विश्वामित्र पुनः ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंको वशमें करके धर्मपूर्वक तपस्या करनेलगे । इसी समय सत्यवादी और जितेन्द्रिय ॥ १० ॥ राजा त्रिशङ्कु इक्ष्वाकुकुलमें थे । राघव, उन्हें यज्ञ करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई ॥११॥ और इसी शरीरसे मैं देवताओंके लोकमें जाऊँ, यह इच्छा हुई । उन्होंने वसिष्ठको बुलाकर अपनी सोची हुई बात कह सुनायी ॥ १२ ॥ महात्मा वसिष्ठने कहा कि यह असम्भव है। वसिष्ठसे जवाब पाकर राजा दक्षिण दिशाको ओर गये ॥ १३ ॥ वे अपने मनोरथकी पूर्तिकी लिए वसिष्ठके पुत्रोंके यहां गये । वहां दक्षिण दिशामें वसिष्ठके पुत्र लम्बी तपस्या कर रहे थे ॥ १४ ॥ महातेजस्वी त्रिशङ्कुने वसिष्ठके सौ पुत्रोंको देखा, जो तपस्या कर रहे थे ॥ १५ ॥ वे सब गुरुपुत्रोंके यहां गये, क्रमानुसार सबको प्रणाम करके तथा लज्जाके कारण थोड़ा सिर झुकाकर ॥ १६ ॥ सभी महात्माओंसे

प्रत्याख्यातो हि भद्रं वो वासिष्ठेन महात्मना । यष्टुकामो महायज्ञं तदनुज्ञातुमर्हथ ॥१८॥
गुरुपुत्रानहं सर्वान्नमस्कृत्य प्रसादये । शिरसा प्रणतो याचे ब्राह्मणांस्तपसि स्थितान्॥१९॥
ते मां भवन्तः सिद्ध्यर्थं याजयन्तु समाहिताः । सशरीरो यथाहं वै देवलोकमवाप्नुयाम् ॥२०॥
प्रत्याख्यातो वासिष्ठेन गतिमन्यां तपोधनाः । गुरुपुत्रानृते सर्वान्नाहं पश्यामि कांचन ॥२१॥
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां पुरोधाः परमा गतिः । तस्मादनन्तरं सर्वे भवन्तो दैवतं मम ॥२२॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तपञ्चाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः ५८

ततस्त्रिशङ्कोर्वचनं श्रुत्वा क्रोधसमन्वितम् । ऋषिपुत्रशतं राम राजानमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
प्रत्याख्यातोऽसि दुर्मेधो गुरुणा सत्यवादिना । तं कथं समतिक्रम्य शाखान्तर मुपेयिवान् ॥ २ ॥
इक्ष्वाकूणां हि सर्वेषां पुरोधाः परमा गतिः । न चातिक्रमितुं शक्यं वचनं सत्यवादिनः ॥ ३ ॥
अशक्यमिति सोवाच वसिष्ठो भगवानृषिः । तं वयं वै समाहर्तुं क्रतुं शक्ताः कथंचन ॥ ४ ॥
बालिशस्त्वं नरश्रेष्ठ गम्यतां स्वपुरं पुनः । याजने भगवाञ्शक्तस्त्रैलोक्यस्यापि पार्थिव ॥ ५ ॥
अवमानं कथं कर्तुं तस्य शक्ष्यामहे वयम् । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ॥ ६ ॥

हाथ जोड़कर बोले–मैं आपलोगोंकी शरण आया हूँ, क्योंकि आप लोग शरणमें आये हुओंकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ १७ ॥ गुरु वसिष्ठने मेरी यज्ञ करनेकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की अतः आप लोग यज्ञ करनेकी आज्ञा दीजिये। आपलोगोंका कल्याण हो ॥१८॥ मैं सब गुरुपुत्रोंको प्रणाम कर प्रसन्न करना चाहता हूं । मैं सिर झुकाकर तपस्या करनेवाले ब्राह्मणोंसे यह मांगता हूं ॥ १९ ॥ आपलोग सावधान होकर मेरी मनोरथ सिद्धिके लिए मुझे यज्ञ करावें, जिससे इसी शरीरसे मैं स्वर्गलोक जासकूं ॥ २० ॥ हे तपस्वियो, वसिष्ठने यज्ञ करानेसे नाहीं कर दी है । अब गुरुपुत्रोंको छोड़कर अपनी मनोरथ-सिद्धिका उपाय मैं दूसरा नहीं देखता ॥ २१ ॥ समस्त इक्ष्वाकुवंशियोंके पुरोहित वसिष्ठही सब कुछ हैं, उनके बाद आप ही सब लोग मेरे पूज्य हैं, देवता हैं ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सत्तावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५७ ॥

राजा त्रिशङ्कुके वचन सुनकर वसिष्ठके सौ पुत्रोंने क्रोधपूर्वक कहा ॥ १ ॥ मूर्ख जब सत्यवादी गुरुने नाहीं करदी है, तब उनको छोड़कर उनका तिरस्कार कर तुम दूसरी जगह क्यों आये ॥ २॥ वसिष्ठही समस्त इक्ष्वाकुवंशियोंके पुरोहित हैं, वेही परम गुरु हैं, उन सत्यवादीके वचनोंका अतिक्रमण करना उचित नहीं ॥ ३ ॥ जिस यज्ञको भगवान् वसिष्ठने अशक्य बतलाया है, भला उसी यज्ञको करानेमें हमलोग कैसे समर्थ हो सकते हैं ?॥४॥ राजन्, आप मूर्ख हैं, आप अपने घर लौट जांय । राजन जो वसिष्ठ त्रिलोकको यज्ञ करानेकी शक्ति रखते हैं ॥ ५ ॥ उनका अपमान (तुम्हें यज्ञ करवाकर) भला हमलोग कैसे कर सकते हैं ? क्रोधके कारण गुरुपुत्रोंके मुँहसे ठीक-ठीक

स राजा पुनरेवैतानिदं वचनमब्रवीत् । प्रत्याख्यातो भगवता गुरुपुत्रैस्तथैव हि ॥ ७ ॥
अन्यां गतिं गमिष्यामि स्वस्ति वोऽस्तु तपोधनाः । ऋषिपुत्रास्तु तच्छ्रुत्वा वाक्यं घोराभिसंहितम् ॥ ८ ॥
शेपुः परमसंक्रुद्धाश्चण्डालत्वं गमिष्यसि । इत्युक्त्वा ते महात्मानो विविशुः स्वं स्वमाश्रमम् ॥ ९ ॥
अथ राज्यां व्यतीतायां राजा चण्डालतां गतः । नीलवस्त्रधरो नीलः परुषो ध्वस्तमूर्धजः ॥ १० ॥
चित्यमाल्याङ्गरागश्च आयसाभरणोऽभवत् । तं दृष्ट्वा मन्त्रिणः सर्वे त्यज्य चण्डालरूपिणम् ॥ ११ ॥
प्राद्रवन्सहिता राम पौरा येऽस्यानुगामिनः । एको हि राजा काकुत्स्थ जगाम परमात्मवान् ॥ १२ ॥
दह्यमानो दिवारात्रं विश्वामित्रं तपोधनम् । विश्वामित्रस्तु तं दृष्ट्वा राजानं विफलीकृतम् ॥ १३ ॥
चण्डालरूपिणं राम मुनिः कारुण्यमागतः । कारुण्यात्स महातेजा वाक्यं परमधार्मिकः ॥ १४ ॥
इदं जगाद भद्रं ते राजानं घोरदर्शनम् । किमागमनकार्यं ते राजपुत्र महाबल ॥ १५ ॥
अयोध्याधिपते वीर शापाच्चण्डालतां गतः । अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा चण्डालतां गतः ॥ १६ ॥
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् । प्रत्याख्यातोऽस्मि गुरुणा गुरुपुत्रैस्तथैव च ॥ १७ ॥
अनवाप्यैव तं कामं मया प्राप्तो विपर्ययः । सशरीरो दिवं यायामिति मे सौम्यदर्शन ॥ १८ ॥
मया चेष्टं क्रतुशतं तच्च नावाप्यते फलम् । अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ॥ १९ ॥
कृच्छ्रेष्वपि गतः सौम्य क्षत्रधर्मेण ते शपे । यज्ञैर्बहुविधैरिष्टं प्रजा धर्मेण पालिताः ॥ २० ॥

अक्षर नहीं निकलते थे । राजाने उनके वचन सुने ॥ ६ ॥ राजाने पुनः गुरुपुत्रोंसे कहा-मुझे गुरुने नाहीं की और गुरु-पुत्रोंने भी ॥७॥ अब मैं दूसरा उपाय करने जाता हूँ, तपस्वियों, आपलोग फूलें फलें । भयानक अभिप्रायवाले, राजाके वचन सुनकर ऋषि-पुत्रोंने ॥८॥ बड़े क्रोधसे राजाको शाप दिया, तुम चाण्डाल हो जाओ-ऐसा शाप देकर वे सब महात्मा अपने-अपने आश्रमोंमें गये ॥ ९ ॥ अनन्तर रातके बीतनेपर राजा त्रिशङ्कु चाण्डाल हो गये, उनका वस्त्र काला हो गया, वे स्वयं काले हो गये, शरीर रूखा हो गया, माथेके बाल छोटे-छोटे हो गये ॥ १० ॥ चिताकी भस्म और माला उनके शरीरकी शोभा बढ़ाने लगीं, उनके गहने लोहेके हो गये । राजाका यह चाण्डाल रूप देखकर मन्त्री उन्हें छोड़कर ॥ ११ ॥ भाग गये, नगरवासी तथा जो राजाके अनुगामी थे, वे सब भाग गये । रामचन्द्र, परमजितेन्द्रिय एक राजाही नगरमें रह गये ॥ १२ ॥ वे दिनरात जलने लगे । वे तपस्वी विश्वामित्रके यहाँ गये । विश्वामित्रको, भग्नमनोरथ ॥ १३ ॥ और चाण्डाल रूपमें राजाको देखकर, दया आयी । परमतेजस्वी धार्मिक विश्वामित्र ॥ १४ ॥ चाण्डाल रूपवाले राजासे बोले-राजपुत्र, तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है ? ॥ १५ ॥ वीर अयोध्याके राजा, क्या तुम शापसे चाण्डाल हुए हो ? विश्वामित्रकी बात सुनकर शापसे चाण्डाल हुए राजा ॥ १६ ॥ हाथ जोड़कर बोले; राजाने विश्वामित्रके वचनोंका अभिप्राय समझा था । उन्होंने कहा-गुरुने तथा गुरुपुत्रोंने मुझे नाहीं कर दी है ॥ १७ ॥ मेरा मनोरथ तो सिद्ध नहीं हुआ, किन्तु उसके उलटा फल हुआ । हे सौम्यदर्शन, इसी शरीरसे स्वर्ग जानेकी मेरी इच्छा थी ॥ १८ ॥ मैंने सौ यज्ञ किये पर मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ, मैं इसी शरीरसे स्वर्ग न जा सका । मैं झूठ नहीं बोलता । न पहले बोला है और न आगे बोलूंगा ॥ १९ ॥ सौम्य, क्षात्रधर्मकी शपथ करके, मैं कहता हूं कि बड़े-बड़े कष्ट-

१९-२०

गुरवश्च महात्मानः शीलवृत्तेन तोषिताः। धर्मे प्रयतमानस्य यज्ञं चाहर्तुमिच्छतः ॥२१॥
परितोषं न गच्छन्ति गुरवो मुनिपुंगव। दैवमेव परं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥२२॥
दैवेनाक्रम्यते सर्वं दैवं हि परमा गतिः। तस्य मे परमार्तस्य प्रसादमभिकाङ्क्षतः।
कर्तुमर्हसि भद्रं ते दैवोपहतकर्मणः ॥ २३ ॥
नान्यां गतिं गमिष्यामि नान्यच्छरणमस्ति मे। दैवं पुरुषकारेण निवर्तयितुमर्हसि ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टपञ्चाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ५९

उक्तवाक्यं तु राजानं कृपया कुशिकात्मजः। अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साक्षाच्चण्डालतां गतम् ॥ १ ॥
इक्ष्वाको स्वागतं वत्स जानामि त्वां सुधार्मिक। शरणं ते प्रदास्यामि मा भैषीर्नृपपुंगव ॥ २ ॥
अहमामन्त्रये सर्वान्महर्षीन्पुण्यकर्मणः। यज्ञसाह्यकरान्राजंस्ततो यक्ष्यसि निर्वृतः ॥ ३ ॥
गुरुशापकृतं रूपं यदिदं त्वयि वर्तते। अनेन सह रूपेण सशरीरो गमिष्यसि ॥ ४ ॥
हस्तमाप्तमहं मन्ये स्वर्गं तव नराधिप। यस्त्वं कौशिकमागम्य शरण्यं शरणागतः ॥ ५ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः पुत्रान्परमधार्मिकान्। व्यादिदेश महाप्राज्ञान्यज्ञसंभारकारणात् ॥ ६ ॥

में भी मैंने सत्य नहीं छोड़ा है, मैंने अनेक यज्ञ किये हैं और धर्म पूर्वक प्रजाका पालन किया है ॥ २० ॥ महात्मा गुरुओंको भी अपने सद्‌गुणों और आचरणोंसे सन्तुष्ट किया है। इस प्रकार धर्म-में रहकर मैं यज्ञ करना चाहता हूँ ॥ २१ ॥ मुनिश्रेष्ठ, पर मेरे गुरु मुझपर प्रसन्न नहीं होते। ऐसी दशामें मैं भाग्यको ही प्रधान समझता हूँ और पुरुषार्थको निरर्थक ॥ २२ ॥ भाग्यहीसे मनुष्य सञ्चालित होता है, वही प्रधान है। इस प्रकार मैं बड़ा दुःखी हूँ, भाग्यने मेरे पुरुषार्थको नष्ट कर दिया है, मैं आपकी कृपा चाहता हूँ, आप मुझपर कृपा करें ॥ २३ ॥ मैं दूसरी जगह न जाऊँगा, मेरी शरण और कोई नहीं है, महाराज पुरुषार्थसे भाग्यको हटानेका उपाय कीजिए ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अट्ठावनवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५८ ॥

अपना वृत्तान्त कहकर चाण्डाल-रूपधारी राजाके चुप होजानेपर कुशिकपुत्र विश्वामित्र कृपा करके स्वयं ये मधुर वचन बोले ॥ १३ ॥ राजन्, आपका स्वागत, आप धर्मात्मा हैं, यह मैं जानता हूँ। मैं आपकी रक्षा करूँगा। हे नृपश्रेष्ठ, आप भयभीत न हों ॥ २ ॥ मैं पवित्र कर्म करनेवाले सब महर्षियोंको बुलाता हूँ। वे यज्ञमें सहायता देंगे और आप निश्चिन्त होकर यज्ञ कर सकेंगे ॥३॥ गुरुके शापसे इस समय आपका जो रूप है उसी रूप और शरीरसे आप स्वर्ग जा सकेंगे ॥ ४ ॥ राजन्, मैं समझता हूँ कि स्वर्ग आपके हाथमें रक्खा हुआ है, क्योंकि शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले कौशिककी शरण आप आये हैं ॥ ५ ॥ ऐसा कहकर, महातेजस्वी विश्वामित्रने अपने परमधार्मिक

सर्वाञ्छिष्यान्समाहूय वाक्यमेतदुवाच ह । सर्वानृषीन्सवासिष्ठानानयध्वं ममाज्ञया ॥ ७ ॥
सशिष्यान्सुहृदश्चैव सर्त्विजः सुबहुश्रुतान् । यदन्यो वचनं ब्रूयान्मद्वाक्यबलचोदितः ॥ ८ ॥
तत्सर्वमखिलेनोक्तं ममाख्येयमनादृतम् । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दिशो जग्मुस्तदाज्ञया ॥ ९ ॥
आजग्मुरथ देशेभ्यः सर्वेभ्यो ब्रह्मवादिनः । ते च शिष्याः समागम्य मुनिं ज्वलिततेजसम् ॥१०॥
ऊचुश्च वचनं सर्वे सर्वेषां ब्रह्मवादिनाम् । श्रुत्वा ते वचनं सर्वे समायान्ति द्विजातयः ॥११॥
सर्वदेशेषु चागच्छन्वर्जयित्वा महोदयम् । वासिष्ठं यच्छतं सर्वं क्रोधपर्याकुलाक्षरम् ॥१२॥
यथाह वचनं सर्वं शृणु त्वं मुनिपुंगव । क्षत्रियो याजको यस्य चण्डालस्य विशेषतः ॥१३॥
कथं सदसि भोक्तारो हविस्तस्य सुरर्षयः ।ब्राह्मणा वा महात्मानो भुक्त्वा चाण्डालभोजनम् ॥१४॥
कथं स्वर्गं गमिष्यन्ति विश्वामित्रेण पालिताः । एतद्वचननैष्ठुर्यमूचुः संरक्तलोचनाः ॥१५॥
वासिष्ठा मुनिशार्दूल सर्वे सह महोदयाः । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सर्वेषां मुनिपुंगवः ॥१६॥
क्रोधसंरक्तनयनः सरोषमिदमब्रवीत् । यद्दूषयन्त्यदुष्टं मां तप उग्रं समास्थितम् ॥१७॥
भस्मीभूता दुरात्मानो भविष्यन्ति न संशयः । अद्य ते कालपाशेन नीता वैवस्वतक्षयम् ॥१८॥
सप्तजातिशतान्येव मृतपाः संभवन्तु ते । श्वमांसनियताहारा मुष्टिका नाम निर्घृणाः ॥१९॥

और बुद्धिमान पुत्रोंको यज्ञकी सामग्री एकत्र करनेकी आज्ञा दी ॥ ६ ॥ उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा कि मेरी आज्ञासे सब ऋषियों तथा वशिष्ठ-पुत्रोंको यहाँ ले आओ ॥ ७ ॥ वे बहुश्रुत अपने मित्रों और ऋत्विजोंके साथ आवें, जो लोग मेरे द्वारा आहूत होनेपर, मेरे विरुद्ध कुछ कहें ॥ ८ ॥ उनका वह सब कहा–चाहे अनादर केही वाक्य क्यों न हों–आकर हमसे कहो विश्वामित्रके वचन सुनकर, उनकी आज्ञासे, वे सब भिन्न-भिन्न दिशाओंमें गये ॥ ९ ॥ सब देश-से ब्रह्मवादी मुनि आने लगे । वे शिष्य भी तेजस्वी मुनिके पास लौट गये ॥१०॥ उन सबने समस्त ब्रह्मवादी मुनियोंके वचन विश्वामित्रसे कहे । उनलोगोंने कहा–आपकी आज्ञा सुनकर सभी द्विज आरहे हैं ॥ ११ ॥ जिन स्थानोंमें आपने जानेको कहा था, उन सभी स्थानोंमें हमलोग गये, वे सभी आरहे हैं, केवल महोदय नामके ऋषि नहीं आते । वसिष्ठके पुत्र यज्ञ कर रहे हैं । उनलोगोंने क्रोध पूर्वक ॥ १२ ॥ जो वचन कहे हैं, हे मुनिश्रेष्ठ, वे सब भी आप सुनें—जिस यज्ञका करानेवाला क्षत्रिय हैं और यजमान चाण्डाल है ॥ १३ ॥ उस यज्ञकी हवि, देवता और ऋषि कैसे ग्रहण करेंगे ? ब्राह्मण और महात्मागण चाण्डालका अन्न खाकर ॥ १४ ॥ विश्वामित्रके द्वारा साहायता पानेपर भी स्वर्गको कैसे जासकेंगे ?—क्रोधसे आँखें लाल कर, उनलोगोने ऐसे क्रूर वचन कहे हैं ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, महोदय ऋषिने तथा वसिष्ठके पुत्रोंने ये बातें कही हैं । उन सबके ये वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ ॥ १६ ॥ विश्वामित्रकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं । उन्होंने कहा-कठोर तपस्या करने-वाले और दोषहीन मुझको जो दोष लगाते हैं ॥ १७ ॥ वे दुरात्मा भस्म हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं । वे आजही कालपाशसे यमराजके घर जायँगे ॥ १८ ॥ सात सौ जन्मों तक वे मुर्दा खानेवाले होंगे । वे मुष्टिक (इस नामकी कोई नीच जाती) जातिके होंगे और कुत्तेके माँस खानेमें भी उन्हें

विकृताश्च विरूपाश्च लोकाननुचरन्त्विमान् । महोदयश्च दुर्बुद्धिर्मामदूष्यं ह्यदूषयत् ॥२०॥
दूषितः सर्वलोकेषु निषादत्वं गमिष्यति । प्राणातिपातनिरतो निरनुक्रोशतां गतः ॥२१॥
दीर्घकालं मम क्रोधाद् दुर्गतिं वर्तयिष्यति । एतावदुक्त्वा वचनं विश्वामित्रो महातपाः ।
विरराम महातेजा ऋषिमध्ये महामुनिः ॥ २२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५६ ॥

षष्टितमः सर्गः ६०

तपोबलहताञ्ज्ञात्वा वासिष्ठान्समहोदयान् । ऋषिमध्ये महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥
अयमिक्ष्वाकुदायादस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः । धर्मिष्ठश्च वदान्यश्च मां चैव शरणं गतः ॥ २ ॥
स्वेनानेन शरीरेण देवलोकजिगीषया । यथायं स्वशरीरेण देवलोकं गमिष्यति ॥ ३ ॥
तथा प्रवर्त्यतां यज्ञो भवद्भिश्च मया सह । विश्वामित्रवचः श्रुत्वा सर्व एव महर्षयः ॥ ४ ॥
ऊचुः समेताः सहसा धर्मज्ञा धर्मसंहितम् । अयं कुशिकदायादो मुनिः परमकोपनः ॥ ५ ॥
यदाह वचनं सम्यगेतत्कार्यं न संशयः । अग्निकल्पो हि भगवाञ्शापं दास्यति रोषतः॥ ६ ॥
तस्मात्प्रवर्त्यतां यज्ञः सशरीरो यथा दिवि । गच्छेदिक्ष्वाकुदायादो विश्वामित्रस्य तेजसा ॥ ७ ॥
ततः प्रवर्त्यतां यज्ञः सर्वे समधितिष्ठत । एवमुक्त्वा महर्षयः संजह्रुस्ताः क्रियास्तदा ॥ ८ ॥

घृणा न होगी ॥ १६ ॥ वे विकृत और विरूप होकर इस लोकमें घूमेंगे । मूर्ख महोदयने भी मुझ दोषहीनको दोष लगाया है ॥ २० ॥ वह स्वयं सबसे दूषित होकर निषाद हो जायगा और निर्दय होकर प्राणियोंकी हिंसा किया करेगा ॥ २१ ॥ मेरे क्रोधके कारण बहुत दिनों तक वह ऐसी दुर्दशा भोगेगा । ऋषियोंके बीचमें महातपस्वी, महातेजस्वी और महामुनि विश्वामित्र ऐसे वचन कहकर चुप होगये ॥ २२ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ५९ ॥

विश्वामित्रने अपनी तपस्याके प्रभावसे जान लिया कि वसिष्ठके पुत्र और महोदय तपोभ्रष्ट हो गये, उनका तपस्याका प्रभाव जाता रहा, अनन्तर वे ऋषियोंसे बोले ॥१॥ ये इक्ष्वाकुवंशी हैं और त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध हैं, ये धर्मात्मा हैं, दाता हैं और मेरी शरण आये हैं, ॥ २ ॥ ये अपनी इसी शरीरसे स्वर्ग जाना चाहते हैं । जिस प्रकार ये अपने इसी शरीरसे देवलोकमें जांय ॥३॥ वैसा यज्ञ आपलोग मेरे साथ मिलकर इनको कराइए । विश्वामित्रके ये वचन सुनकर धर्मरहस्य जाननेवाले वे सब महर्षि ॥ ४ ॥ इकट्ठा धर्मयुक्त वचन आपसमें बोले । यह कुशिकका वंशज बड़ा क्रोधी है ॥ ५ ॥ जो इसने कहा है, उसका पालन सन्देह छोड़कर करना चाहिए । नहीं तो अग्निके समान तेजस्वी यह अवश्यही क्रोध करके शाप देगा ॥ ६ ॥ इस कारण यज्ञ प्रारम्भ करो, जिससे यह इक्ष्वाकुवंशी राजा इसी शरीरसे, विश्वामित्रके तेजसे, स्वर्गमें जाय ॥ ७ ॥ यज्ञ प्रारम्भ करें, आप सब लोग अपना-अपना काम प्रारम्भ करें--ऐसा एक साथ ही कहकर महर्षियोंने यज्ञकी भारी-भारी

याजकश्च महातेजा विश्वामित्रोऽभवत्क्रतौ । ऋत्विजश्चानुपूर्व्येण मन्त्रवन्मन्त्रकोविदाः ॥ ९ ॥
चक्रुः सर्वाणि कर्माणि यथाकल्पं यथाविधि । ततः कालेन महता विश्वामित्रो महातपाः ॥१०॥
चकारावाहनं तत्र भागार्थं सर्वदेवताः । नाभ्यागमंस्तदा तत्र भागार्थं सर्वदेवताः ॥११॥
ततः कोपसमाविष्टो विश्वामित्रो महामुनिः । स्रुवमुद्यम्य सक्रोधस्त्रिशङ्कुमिदमब्रवीत् ॥१२॥
पश्य मे तपसो वीर्यं स्वार्जितस्य नरेश्वर । एष त्वां स्वशरीरेण नयामि स्वर्गमोजसा ॥१३॥
दुष्प्रापं स्वशरीरेण स्वर्गं गच्छ नरेश्वर । स्वार्जितं किंचिदप्यस्ति मयाहि तपसः फलम् ॥१४॥
राजंस्त्वं तेजसा तस्य सशरीरो दिवं व्रज । उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्सशरीरो नरेश्वरः ॥१५॥
दिवं जगाम काकुत्स्थ मुनीनां पश्यतां तदा । स्वर्गलोकं गतं दृष्ट्वा त्रिशङ्कुं पाकशासनः ॥१६॥
सह सर्वैः सुरगणैरिदं वचनमब्रवीत् । त्रिशङ्को गच्छ भूयस्त्वं नासि स्वर्गकृतालयः ॥१७॥
गुरुशापहतो मूढ पत भूमिमवाक्शिराः । एवमुक्तो महेन्द्रेण त्रिशङ्कुरपतत्पुनः ॥१८॥
विक्रोशमानस्त्राहीति विश्वामित्रं तपोधनम् । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य क्रोशमानस्य कौशिकः ॥१९॥
रोषमाहारयत्तीव्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् । ऋषिमध्ये स तेजस्वी प्रजापतिरिवापरः ॥२०॥
सृजन्दक्षिणमार्गस्थान्सप्तर्षीनपरान्पुनः । नक्षत्रवंशमपरमसृजत्क्रोधमूर्च्छितः ॥२१॥
दक्षिणां दिशमास्थाय ऋषिमध्ये महायशाः । सृष्ट्वा नक्षत्रवंशं च क्रोधेन कलुषीकृतः ॥२२॥

क्रियाएँ प्रारम्भ कीं ॥ ८ ॥ उस यज्ञके करानेवाले महातेजस्वी विश्वामित्र हुए, तथा क्रमशः मन्त्र जाननेवाले और मन्त्रके रहस्य जाननेवाले ऋषि हुए ॥ ९ ॥ शास्त्र और विधानके अनुसार उनलोगोंने सब क्रियाएँ कीं । इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर महातपस्वी विश्वामित्रने ॥ १० ॥ अपना-अपना यज्ञ भाग लेनेके लिए सब देवताओंका आवाहन किया, पर सब देवता भाग लेनेके लिए वहां नहीं आये ॥ ११ ॥ इससे महामुनि विश्वामित्रको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने क्रोध-पूर्वक हाथमें स्रुवा (हवन करनेका पात्र) उठाकर त्रिशङ्कुसे कहा ॥ १२ ॥ राजन् स्वयं अर्जित की हुई मेरी तपस्याके प्रभावको देखो, बलपूर्वक इसी शरीरसे मैं तुम्हें स्वर्ग भेजता हूँ ॥ १३ ॥ इसी शरीरसे स्वर्ग जाना कठिन है, तथापि मैंने आज तक अपने लिए जो कुछ तपस्याका फल अर्जित किया है ॥ १४ ॥ उस तपस्याके तेजसे तुम इसी शरीरसे स्वर्ग जाओ । विश्वामित्रके ऐसा कहनेपर राजा त्रिशङ्कु इसी शरीरसे ॥ १५ ॥ स्वर्ग गये । रामचन्द्र, मुनियोंने भी यह दृश्य देखा था । त्रिशङ्कु स्वर्ग लोक में आया है यह देखकर इन्द्रने ॥ १६ ॥ समस्त देवताओं तथा गणोंके साथ त्रिशङ्कुसे कहा—तुम लौट जाओ, तुमने स्वर्गमें अपने लिए स्थान नहीं बनाया है ॥ १७ ॥ मूर्ख, तुमपर गुरुका शाप लगा है, यहांसे शीघ्रही नीचे सिर करके गिरजा । इन्द्रके ऐसा कहनेपर त्रिशङ्कु वैसाही स्वर्ग से गिरा ॥१८॥ वह तपोधन विश्वामित्रको अपनी रक्षाके लिए "त्राहि त्राहि" कहकर पुकारने लगा । विश्वामित्रने त्रिशङ्कुके वे करुण वचन सुने ॥ १९ ॥ उनको क्रोध आया, उन्होंने त्रिशङ्कुको वहीं ठहरनेके लिए कहा । पुनः ऋषियोंके सामनेही उस तेजस्वीने दूसरे ब्रह्माके समान ॥२०॥ दक्षिण दिशामें नये सप्तर्षियोंकी सृष्टि की, क्रोधसे प्रदीप्त होकर उन्होंने नये नक्षत्रोंकी भी सृष्टि की ॥२१॥ विश्वामित्रका चित्त क्रोधसे व्याकुल हो गया था, मुनियोंके साथ दक्षिण दिशामें

अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोकोवा स्यादनिन्द्रकः। दैवतान्यपि स क्रोधात्स्रष्टुं समुपचक्रमे ॥२३॥
ततः परमसंभ्रान्ताः सर्षिसङ्घाः सुरासुराः। विश्वामित्रं महात्मानमूचुः सानुनयं वचः ॥२४॥
अयं राजा महाभाग गुरुशापपरिक्षतः। सशरीरो दिवं यातुं नार्हत्येव तपोधन ॥२५॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां मुनिपुंगवः। अब्रवीत्सुमहद्वाक्यं कौशिकः सर्वदेवताः ॥२६॥
सशरीरस्य भद्रं वस्त्रिशङ्कोरस्य भूपतेः। आरोहणं प्रतिज्ञातं नानृतं कर्तुमुत्सहे ॥२७॥
स्वर्गोऽस्तु सशरीरस्य त्रिशङ्कोरस्य शाश्वतः। नक्षत्राणि च सर्वाणि मामकानि ध्रुवाण्यथ ॥२८॥
यावल्लोका धरिष्यन्ति तिष्ठन्त्वेतानि सर्वशः। यत्कृतानि सुराः सर्वे तदनुज्ञातुमर्हथ ॥२९॥
एवमुक्ताः सुरा सर्वे प्रत्यूचुर्मुनिपुंगवम्। एवं भवतु भद्रं ते तिष्ठन्त्वेतानि सर्वशः ॥३०॥
गगनं तान्यनेकानि वैश्वानरपथाद्बहिः। नक्षत्राणि मुनिश्रेष्ठ तेषु ज्योतिःषु जाज्वलन् ॥३१॥
अवाक्शिरास्त्रिशङ्कुश्च तिष्ठत्वमरसंनिभः। अनुयास्यन्ति चैतानि ज्योतींषि नृपसत्तमम् ॥३२॥
कृतार्थं कीर्तिमन्तं च स्वर्गलोकगतं यथा। विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥३३॥
ऋषिमध्ये महातेजा बाढमित्येव देवताः। ततो देवा महात्मानो ऋषयश्च तपोधनाः।
जग्मुर्यथागतं सर्वे यज्ञस्यान्ते नरोत्तम ॥३४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

रहकर उन्होंने नये नक्षत्रोंकी सृष्टि की ॥२२॥ पुनः उन्होंने कहा—मैं दूसरा इन्द्र बनाऊँगा (यदि न बना सकूँतो) मेरा बनाया स्वर्ग बिना इन्द्रका ही होगा। इस प्रकार वे देवताओंकी भी सृष्टि करने लगे ॥२३॥ इससे देवता, ऋषि आदि बहुत घबड़ाये, वे सब विश्वामित्रके यहाँ जाकर अनुनय-पूर्वक बोले ॥ २४ ॥ महाभाग, इस राजाको गुरुका शाप लगा है, यह इसी शरीरसे स्वर्गमें नहीं जा सकता ॥ २५ ॥ देवताओंके वचन सुनकर तपोधन विश्वामित्रने सब देवताओंसे कहा ॥ २६ ॥ आपका कल्याण हो, इसी शरीरसे त्रिशङ्कुको स्वर्ग भेजनेकी मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। मैं अपनी प्रतिज्ञा झूठी करना नहीं चाहता ॥ २७ ॥ त्रिशङ्कु इसी शरीरसे सदाके लिए स्वर्गवासी हों। जो नक्षत्र मैंने बनाये हैं, वे सदा वर्तमान रहें ॥ २८ ॥ जब तक यह सृष्टि रहे, तब तक मेरी यह रचना संसारमें रहे। देवगण, आपलोग इसकी आज्ञा दें ॥ २९ ॥ देवताओंने विश्वामित्र से कहा कि जैसा आप कहते हैं, वैसाही हो। यह सब रहें ॥ ३० ॥ वैश्वानर नामक नक्षत्र मण्डलके बाहर ये सब नक्षत्र रहें और उनमें प्रकाशित होकर त्रिशङ्कु रहें ॥ ३१ ॥ त्रिशङ्कु सिर नीचा करके रहें। ये देवता समझे जायँगे। ये सब नक्षत्र इनका अनुगमन करेंगे ॥३२॥ ये राजा त्रिशङ्कु इसी शरीरसे स्वर्ग पाकर कृतार्थ हो गये और इनकी कीर्ति भी बढ़ी। धर्मात्मा विश्वामित्रकी सब देवताओंने स्तुति की ॥ ३३ ॥ ऋषियोंकी सभामें महातेजस्वी विश्वामित्रने देवताओंकी स्तुति स्वीकार की। अनन्तर यज्ञकी समाप्तिमें महात्मा देवता और तपस्वी ऋषि अपने स्थानोंको गये ॥ ३४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका साठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६० ॥

एकषष्ठितमः सर्गः ६१

विश्वामित्रो महातेजाःप्रस्थितान्वीक्ष्य तानृषीन्। अब्रवीन्नरशार्दूल सर्वांस्तान्वनवासिनः ॥ १ ॥
महाविघ्नः प्रवृत्तोऽयं दक्षिणामास्थितो दिशम्। दिशमन्यां प्रपत्स्यामस्तत्र तप्स्यामहे तपः ॥ २ ॥
पश्चिमायां विशालायां पुष्करेषु महात्मनः। सुखं तपश्चरिष्यामः सुखं तद्धि तपोवनम् ॥ ३ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः पुष्करेषु महामुनिः। तप उग्रं दुराधर्षं तेपे मूलफलाशनः ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु अयोध्याधिपतिर्महान्। अम्बरीष इति ख्यातो यष्टुं समुपचक्रमे ॥ ५ ॥
तस्य वै यजमानस्य पशुमिन्द्रो जहार ह। प्रनष्टे तु पशौ विप्रो राजानमिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
पशुरभ्याहृतो राजन्प्रनष्टस्तव दुर्नयात्। अरक्षितारं राजानं घ्नन्ति दोषा नरेश्वर ॥ ७ ॥
प्रायश्चित्तं महद्ध्येतन्नरं वा पुरुषर्षभ। आनयस्व पशुं शीघ्रं यावत्कर्म प्रवर्तते ॥ ८ ॥
उपाध्यायवचः श्रुत्वा स राजा पुरुषर्षभः। अन्वियेष महाबुद्धिः पशुं गोभिः सहस्रशः ॥ ९ ॥
देशाञ्जनपदांस्तांस्तान्नगराणि वनानि च। आश्रमाणि च पुण्यानि मार्गमाणो महीपतिः ॥१०॥
स पुत्रसहितं तात सभार्यं रघुनन्दन। भृगुतुङ्गे समासीनमृचीकं संददर्श ह ॥११॥
तमुवाच महातेजाः प्रणम्याभिप्रसाद्य च। महर्षिं तपसा दीप्तं राजर्षिरमितप्रभः ॥१२॥
पृष्ट्वा सर्वत्र कुशलमृचीकं तमिदं वचः। गवां शतसहस्रेण विक्रीणीषे सुतं यदि ॥१३॥
पशोरर्थे महाभाग कृतकृत्योऽस्मि भार्गव। सर्वे परिगता देशा याज्ञियं न लभे पशुम् ॥१४॥

हे रामचन्द्र, सब ऋषि चले गये, यह देखकर महातेजस्वी विश्वामित्रने वनवासियों (अपने साथियों) से कहा ॥ १ ॥ यहां दक्षिण दिशामें रहनेसे मेरे यज्ञमें विघ्न होता है, इस कारण मैं अन्य दिशामें जाता हूँ, वहीं तपस्या करूँगा ॥ २ ॥ पश्चिम दिशामें बड़े-बड़े तपोवन हैं, मैं पुष्कर क्षेत्रमें जाता हूँ, वहीं तपस्या करूँगा, उस वनमें सब बातोंका सुपास है ॥ ३ ॥ उन वनवासियोंसे ऐसा कहकर महामुनि महातेजस्वी विश्वामित्र पुष्कर क्षेत्र गये और वे वहां फल-मूल खाकर, बड़ीही कठिन तपस्या करने लगे ॥ ४ ॥ इसी समय अयोध्याके महान् राजा अम्बरीषने यज्ञ करना प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ यज्ञ करनेवाले उन राजाके पशुको (यज्ञीयपशु) इन्द्र चुरा ले गया, पशुके नष्ट होने-पर पुरोहितने राजासे कहा ॥६॥ राजन्, तुम्हारीही दुर्नीति (भूल) से पशुको किसीने चुरालिया, नरेश्वर, रक्षा न करनेवाले राजाको पाप लगता है ॥ ७ ॥ यह पशुका चोरी जाना बहुत बड़े पाप-का हेतु है, यज्ञ प्रारम्भ होनेके पहलेही आप पशु लेआवें, यदि वह पशु न मिल सके तो किसी मनुष्यकोही पशु रूपमें ले आवें, ॥ ८ ॥ पुरोहितके वचन सुनकर पुरुषश्रेष्ठ राजाने पशु ढूँढना प्रारम्भ किया और उसके बदलेमें हजार गौ देनेकी घोषणा की ॥ ९ ॥ देशों, प्रान्तों, नगरों, वनों और पवित्र आश्रमोंमें ढूँढते हुए ॥१०॥ राजाने भृगु-शिखरपर पुत्र और स्त्रीके साथ निवास करने वाले ऋचीकको देखा ॥११॥ प्रणाम और स्तुति करके महातेजस्वी राजाने तपस्यासे प्रदीप्त उन ऋषिसे ॥ १२ ॥ कुशलसंवाद पूछा और बोले, सौ हजार गौओंके बदलेमें क्या आप अपना एक पुत्र बेचेंगे ॥ १३ ॥ यदि आप बेचें तो पशुके लिए मेरी चिन्ता जाती रहे, मैं कृतकृत्य हो जाऊं, मैं

दातुमर्हसि मूल्येन सुतमेकमितो मम । एवमुक्तो महातेजा ऋचीकस्त्वब्रवीद्वचः ॥१५॥
नाहं ज्येष्ठं नरश्रेष्ठ विक्रीणीयां कथंचन । ऋचीकस्य वचः श्रुत्वा तेषां माता महात्मनाम् ॥१६॥
उवाच नरशार्दूलमम्बरीषमिदं वचः । अविक्रेयं सुतं ज्येष्ठं भगवानाह भार्गव ॥१७॥
ममापि दयितं विद्धि कनिष्ठं शुनकं प्रभो । तस्मात्कनीयसं पुत्रं न दास्ये तव पार्थिव ॥१८॥
प्रायेण हि नरश्रेष्ठ ज्येष्ठाः पितृषु वल्लभाः । मातॄणां च कनीयांसस्तस्माद्रक्ष्ये कनीयसम् ॥१९॥
उक्तवाक्ये मुनौ तस्मिन्मुनिपत्न्यां तथैव च । शुनःशेपः स्वयं राम मध्यमो वाक्यमब्रवीत् ॥२०॥
पिता ज्येष्ठमविक्रेयं माता चाह कनीयसम् । विक्रेयं मध्यमं मन्ये राजपुत्र नयस्व माम् ॥२१॥
अथ राजा महाबाहो वाक्यान्ते ब्रह्मवादिनः । हिरण्यस्य सुवर्णस्य कोटिभी रत्नराशिभिः ॥२२॥
गवां शतसहस्रेण शुनःशेपं नरेश्वरः । गृहीत्वा परमप्रीतो जगाम रघुनन्दन ॥२३॥
अम्बरीषस्तु राजर्षी रथमारोप्य सत्वरः । शुनःशेपं महातेजा जगामाशु महायशाः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ६२

शुनःशेपं नरश्रेष्ठ गृहीत्वा तु महायशाः । व्यश्रमत्पुष्करे राजा मध्याह्ने रघुनन्दन ॥ १ ॥
तस्य विश्रममाणस्य शुनःशेपो महायशाः । पुष्करं ज्येष्ठमागम्य विश्वामित्रं ददर्श ह ॥ २ ॥

सब देशोंमें घूम आया पर यज्ञका पशु न मिला ॥ १४ ॥ मूल्य लेकर कृपापूर्वक एक पुत्र आप मुझे दें। राजाके ऐसा कहनेपर ऋचीकने कहा ॥ १५ ॥ मैं अपने जेठे पुत्रको किसी प्रकार भी न बेचूँगा, ऋचीककी बात सुनकर उन पुत्रोंकी माताने ॥ १६ ॥ नरश्रेष्ठ राजा अम्बरीषसे कहा— भृगुवंशी ऋचीकने अपने ज्येष्ठ पुत्रको न बेचनेकी बात कही है ॥ १७ ॥ छोटा लड़का शुनक मुझे अत्यन्त प्रिय है, राजन्, वह छोटा लड़का मैं आपको न दूंगी ॥ १८ ॥ देखा जाता है कि प्रायः बड़े लड़के पिताको प्रिय होते हैं और माताको छोटे, इस कारण मैं छोटे लड़केकी रक्षा करना चाहती हूँ ॥ १९ ॥ मुनि और मुनिपत्नीके कह चुकनेपर मझले शुनःशेपने स्वयं कहा ॥ २० ॥ पिता बड़ेको बेचना नहीं चाहते और माता छोटेको, अब मझलाही पुत्र बेचने योग्य हुआ, राजपुत्र, हमें ले चलिए। ॥२१॥ ब्रह्मवादी शुनःशेपके ऐसा कह चुकनेपर कई करोड़ सोने और रत्नोंकी ढेरी ॥२२॥ और सौ हजार गौओंके बदलेमें शुनःशेपको लेकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और वे चले ॥ २३ ॥ महातेजस्वी और यशस्वी राजा अम्बरीष शुनशेपको रथपर बैठाकर शीघ्र चले ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका एकसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६१ ॥

रामचन्द्र, शुनशेपको लेकर आते हुए महायशस्वी राजा अम्बरीषने मध्यान्हके समय पुष्कर क्षेत्रमें विश्राम किया ॥ १ ॥ विश्राम करते हुए राजाको छोड़कर शुनःशेपने पुष्कर क्षेत्रमें विचरण

तप्यन्तमृषिभिः सार्धं मातुलं परमातुरः । विषण्णवदनो दीनस्तृष्णया च श्रमेण च ॥ ३ ॥
पपाताङ्के मुने राम वाक्यं चेदमुवाच ह । न मेऽस्तिमातानपिताज्ञातयोबान्धवाःकुतः॥ ४ ॥
त्रातुमर्हसि मां सौम्य धर्मेण मुनिपुंगव । त्राता त्वं हि नरश्रेष्ठ सर्वेषां त्वं हि भावनः ॥ ५ ॥
राजा च कृतकार्यः स्यादहं दीर्घायुरव्ययः । स्वर्गलोकमुपाश्नीयां तपस्तप्त्वा ह्यनुत्तमम् ॥ ६ ॥
स मे नाथो ह्यनाथस्य भव भव्येन चेतसा । पितेव पुत्रं धर्मात्मंस्त्रातुमर्हसि किल्बिषात् ॥ ७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महातपाः । सान्त्वयित्वा बहुविधं पुत्रानिदमुवाच ह ॥ ८ ॥
यत्कृते पितरः पुत्राञ्जनयन्ति शुभार्थिनः । परलोकहितार्थाय तस्य कालोऽयमागतः ॥ ९ ॥
अयं मुनिसुतो बालो मत्तः शरणमिच्छति । अस्य जीवितमात्रेण प्रियं कुरुत पुत्रकाः ॥१०॥
सर्वे सुकृतकर्माणः सर्वे धर्मपरायणाः । पशुभूता नरेन्द्रस्य तृप्तिमग्नेः प्रयच्छत ॥११॥
नाथवांश्च शुनःशेपो यज्ञश्चाविघ्नितो भवेत् । देवतास्तर्पिताश्च स्युर्मम चापि कृतं वचः ॥१२॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा मधुच्छन्दादयः सुताः । साभिमानं नरश्रेष्ठ सलीलमिदमब्रुवन् ॥१३॥
कथमात्मसुतान्हित्वा त्रायसेऽन्यसुतं विभो । अकार्यमिव पश्यामः श्वमांसमिव भोजने ॥१४॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा पुत्राणां मुनिपुंगवः । क्रोधसंरक्तनयनो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥१५॥
निःसाध्वसमिदं प्रोक्तं धर्मादपि विगर्हितम् । अतिक्रम्य तु मद्वाक्यं दारुणं रोमहर्षणम् ॥१६॥

करते हुए, विश्वामित्रको देखा ॥ २ ॥ उसने अपने मामा विश्वामित्रको ऋषियोंके साथ तपस्या करते देखा । शुनःशेपका मुँह सूख गया था, प्यास और थकावटके कारण वह बहुतही कमजोर हो गया था ॥३॥ वह विश्वामित्रके आगे गिर पड़ा और बोला-न मेरी माता है, न पिता, फिर भाई-बन्धु कहाँसे होंगे ? ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, धर्म समझकर आप मेरी रक्षा करें, क्योंकि आप रक्षक हैं । शरणागतोंके मनोरथ पूरा करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ आप ऐसा प्रयत्न करें, जिससे राजाका मनोरथ पूरा हो, मैं भी दीर्घायु होऊं और उत्तम तपस्या करके स्वर्गलोगमें जाऊं ॥ ६ ॥ महाराज, अनाथ हूँ आप अपने मंगलमय चित्तसे मेरे नाथ बनें । धर्मात्मन्, पिता जैसे पुत्रकी रक्षा करता है, वैसेही इस विपत्तिसे आप मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥ शुनःशेपकी बातें सुनकर तपस्वी विश्वामित्रने उसे अनेक प्रकारसे समझाया, धैर्य दिया, पुनः वे अपने पुत्रोंसे बोले ॥ ८ ॥ कल्याणकी कामना करनेवाले पिता, जिस पारलौकिक मंगलके लिए पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं, उसका यह समय आगया ॥९॥ यह मुनिपुत्र मेरी शरण आया है । तुम लोग इसके प्राण-बचाकर मेरा प्रियकार्य करो ॥ १० ॥ तुम सभी पवित्र कर्म करनेवाले हो, धर्मात्मा हो, तुमलोग राजाके यज्ञमें, पशु बनकर, अग्निको प्रसन्न करो ॥ ११ ॥ इस प्रकार शुनःशेपकी रक्षा हो जायगी, यज्ञमें विघ्न भी न होगा, देवता भी प्रसन्न होंगे और मेरे वचनका पालन भी होगा ॥ १२ ॥ मुनिके वचन सुनकर मधुच्छन्दादि इनके पुत्रोंने बड़े अभिमान और उपहासके साथ कहा ॥ १३ ॥ अपने लड़कोंको नष्ट करके दूसरे लड़केकी रक्षा करना आप क्यों चाहते हैं ? यह तो पाप है अपने मांसका भोजन करनेके समान है ॥ १४ ॥ मुनिश्रेष्ठने अपने पुत्रोंके वचन सुने । क्रोधसे उनकी आँखें लाल होगयीं । क्रोधसे वे बोलने लगे ॥ १५ ॥ तुमलोगोंने निर्भय होकर यह बात कही, तुम्हारी यह बात

श्वमांसभोजिनः सर्वे वासिष्ठा इव जातिषु । पूर्णं वर्षसहस्रं तु पृथिव्यामनुवत्स्यथ ॥१७॥
कृत्वा शापसमायुक्तान्पुत्रान्मुनिवरस्तदा । शुनःशेपमुवाचार्तं कृत्वा रक्षां निरामयाम् ॥१८॥
पवित्रपाशैराबद्धो रक्तमाल्यानुलेपनः । वैष्णवं यूपमासाद्य वाग्भिरग्निमुदाहर ॥१९॥
इमे च गाथे द्वे दिव्ये गायेथा मुनिपुत्रक । अम्बरीषस्ययज्ञेस्मिंस्ततःसिद्धिमवाप्स्यसि॥२०॥
शुनःशेपो गृहीत्वा ते द्वे गाथे सुसमाहितः । त्वरया राजसिंहं तमम्बरीषमुवाच ह ॥२१॥
राजसिंह महाबुद्धे शीघ्रं गच्छावहे वयम् । निवर्तयस्व राजेन्द्र दीक्षां च समुदाहर ॥२२॥
तद्वाक्यमृषिपुत्रस्य श्रुत्वा हर्षसमन्वितः । जगाम नृपतिः शीघ्रं यज्ञवाटमतन्द्रितः ॥२३॥
सदस्यानुमते राजा पवित्रकृतलक्षणम् । पशुं रक्ताम्बरं कृत्वा यूपे तं समबन्धयत् ॥२४॥
स बद्धो वाग्भिरग्र्याभिरभितुष्टाव वै सुरौ । इन्द्रमिन्द्रानुजं चैव यथावन्मुनिपुत्रकः ॥२५॥
ततः प्रीतः सहस्राक्षो रहस्यस्तुतितोषितः । दीर्घमायुस्तदा प्रादाच्छुनःशेपाय वासवः ॥२६॥
स च राजा नरश्रेष्ठ यज्ञस्य च समाप्तवान् । फलं बहुगुणं राम सहस्राक्षप्रसादजम् ॥२७॥
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा भूयस्तेपे महातपाः । पुष्करेषु नरश्रेष्ठ दशवर्षशतानि च ॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

धर्मसे भी निन्दित है मेरे वचनका तुमलोगोंने तिरस्कार किया है और बड़ाही कठोर उत्तर दिया है ॥ १६ ॥ इस कारण तुमलोग कुत्तेका मांस खानेवाले हो जाओ और वसिष्ठके पुत्रोंके समान तुम्हारी जाति हो जाय । इस प्रकार एक हज़ार वर्षतक पृथिवीमें रहो ॥ १७ ॥ इस प्रकार अपने पुत्रोंको शाप देकर, मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र शुनःशेपकी निर्विघ्न रक्षा (मंत्रोंसे) करके उससे बोले ॥ १८ ॥ हे मुनिपुत्र, जब तुम कुशकी रस्सीसे बाँधे जाओ, लाल फूलोंकी माला और अनुलेपन जब तुम्हें लगाया जाय और वैष्णवयूप (विष्णुका यज्ञीय खंभा) में बाँधे जाओ, तब अग्निकी स्तुति करो ॥१९॥ राजा अम्बरीषके यज्ञमें इन दो गाथाओंका (दो वैदिक मंत्रों का) तुम गान करो, इससे तुम्हारी सिद्धि होगी ॥ २० ॥ सावधान होकर शुनःशेपने वे दो मंत्र ले लिये और शीघ्रतापूर्वक राजा अंबरीषके पास आकर कहा ॥ २१ ॥ राजश्रेष्ठ, महाबुद्धे, हमलोग शीघ्र यहाँसे चलें । आप यज्ञकी दीक्षा लें और मेरा बलिदान करें ॥ २२ ॥ ऋषिपुत्रके ये वचन सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और वे शीघ्रतापूर्वक यज्ञ-मण्डपकी ओर चले ॥ २३ ॥ यज्ञ करानेवाले पुरोहितोंकी आज्ञासे राजाने शुनःशेपको यज्ञ-पशुके सब चिन्होंसे युक्त किया । उसे लाल वस्त्र पहनाया और खँभेसे बाँधा ॥ २४ ॥ खंभेमें बँधा हुआ वह दीन मुनि-पुत्र, इन्द्र और विष्णुकी, उत्तम स्तुतियोंसे, स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ इन्द्र उसकी उत्तम स्तुतिसे प्रसन्न हुए और उन्होंने, उसे दीर्घायु होनेका, वर दिया ॥२६॥ उन राजा अम्बरीषने भी इन्द्रकी कृपासे यज्ञका बहुत अधिक फल पाया ॥२७॥ धर्मात्मा विश्वामित्र पुनः तपस्या करने लगे । उन्होंने पुष्करक्षेत्रमें एक हज़ार वर्षोंतक तपस्या की ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बासठवाँ सर्ग समाप्त ॥६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ६३

पूर्णे वर्षसहस्रे तु व्रतस्नातं महामुनिम् । अभ्यगच्छन्सुराः सर्वे तपःफलचिकीर्षवः ॥ १ ॥
अब्रवीत्सुमहातेजा ब्रह्मा सुरुचिरं वचः । ऋषिस्त्वमसि भद्रं ते स्वार्जितैः कर्मभिः शुभैः ॥ २ ॥
तमेवमुक्त्वा देवेशस्त्रिदिवं पुनरभ्यगात् । विश्वामित्रो महातेजा भूयस्तेपे महत्तपः ॥ ३ ॥
ततः कालेन महता मेनका परमाप्सरा । पुष्करेषु नरश्रेष्ठ स्नातुं समुपचक्रमे ॥ ४ ॥
तां ददर्श महातेजा मेनकां कुशिकात्मजः । रूपेणाप्रतिमां तत्र विद्युतं जलदे यथा ॥ ५ ॥
कन्दर्पदर्पवशगो मुनिस्तामिदमब्रवीत् । अप्सरः स्वागतं तेऽस्तु वस चेह ममाश्रमे ॥ ६ ॥
अनुगृह्णीष्व भद्रं ते मदनेन विमोहितम् । इत्युक्ता सा वरारोहा तत्रावासमथाकरोत् ॥ ७ ॥
तपसो हि महाविघ्नो विश्वामित्रमुपागमत् । तस्यां वसन्त्यां वर्षाणि पञ्च पञ्च च राघव ॥ ८ ॥
विश्वामित्राश्रमे सौम्ये सुखेन व्यतिचक्रमुः । अथ काले गते तस्मिन्विश्वामित्रो महामुनिः ॥ ९ ॥
सव्रीड इव संवृत्तश्चिन्ताशोकपरायणः । बुद्धिर्मुनेः समुत्पन्ना सामर्षा रघुनन्दन ॥१०॥
सर्वं सुराणां कर्मैतत्तपोपहरणं महत् । अहोरात्रापदेशेन गताः संवत्सरा दश ॥११॥
काममोहाभिभूतस्य विघ्नोऽयं प्रत्युपस्थितः । स निःश्वसन्मुनिवरः पश्चात्तापेन दुःखितः ॥१२॥
भीतामप्सरसं दृष्ट्वा वेपन्तीं प्राञ्जलिं स्थिताम् । मेनकां मधुरैर्वाक्यैर्विसृज्य कुशिकात्मजः ॥१३॥
उत्तरं पर्वतं राम विश्वामित्रो जगाम ह । स कृत्वा नैष्ठिकीं बुद्धिं जेतुकामो महायशाः ॥१४॥

जब एक हज़ार वर्ष पूरे हो गये, मुनिने व्रतका स्नान किया, उस समय सब देवता उन्हें तपस्याका फल देनेके लिए आये ॥ १ ॥ ब्रह्माने बड़े मधुर स्वरोंमें कहा—तुम अपनी तपस्याके प्रभावसे ऋषि-पद पागये । तुम्हारा कल्याण हो ॥ २ ॥ उनसे ऐसा कहकर, देवेश ब्रह्मा स्वर्ग गये और तेजस्वी विश्वामित्र पुनः कठोर तपस्या करने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार बहुत समय बीतनेपर, मेनका नामकी एक अप्सरा,पुष्करक्षेत्रमें स्नान करने आयी ॥ ४ ॥ विश्वामित्रने अद्वितीय सुन्दरी उस मेनकाको देखा । उन्होंने मेघमें बिजलीके समान उसे देखा ॥५॥ मुनि कामके वश हुए और उन्होंने उससे कहा—अप्सरे! तुम्हारा स्वागत! तुम मेरे आश्रममें रहो ॥६॥ मैं कामसे पीड़ित हूँ, मुझपर कृपा करो । तुम्हारा कल्याण हो । मुनिके ऐसा कहनेपर, उस सुन्दरीने वहीं निवास किया ॥ ७ ॥ यह (मेनकाका रहना) विश्वामित्रकी तपस्यामें एक बहुत बड़ा विघ्न हुआ । उसने दस वर्ष ॥ ८ ॥ विश्वामित्रके सुन्दर आश्रममें, सुखसे बिताये । कुछ समय बीतनेपर महामुनि विश्वामित्र ॥ ९ ॥ लज्जित-से हुए । चिन्ता और शोकसे दुर्बल होगये । उस समय क्रोधके साथ-साथ उनके मनमें विचार उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ यह सब देवताओंके काम हैं । उन लोगोंनेही मेरी तपस्या नष्ट की है। ओह! दिन रातके बहाने (एक-एक दिन और एक-एक रात करके) मेरे दस वर्ष बीत गये ॥ ११ ॥ कामके वशीभूत होनेके कारण यह विघ्न उपस्थित हुआ है । इस प्रकार पश्चात्तापसे दुःखित होकर, मुनिवर दुःखकी साँस लेने लगे ॥ १२ ॥ डरी हुई, काँपती हुई और हाथ जोड़कर खड़ी हुई मेनका अप्सराको मुनिने मीठे वचनोंके द्वारा बिदा कर दिया ॥ १३ ॥ वे वहाँसे उत्तर पर्वतपर

कौशिकीतीरमासाद्य तपस्तेपे दुरासदम् । तस्य वर्षसहस्राणि घोरं तप उपासतः ॥१५॥
उत्तरे पर्वते राम देवतानामभूद्भयम् । अमन्त्रयन्समागम्य सर्वे सर्षिगणाः सुराः ॥१६॥
महर्षिशब्दं लभतां साध्वयं कुशिकात्मजः । देवतानां वचः श्रुत्वा सर्वलोकपितामहः ॥१७॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं विश्वामित्रं तपोधनम् । महर्षे स्वागतं वत्स तपसोग्रेण तोषितः ॥१८॥
महत्त्वमृषिमुख्यत्वं ददामि तव कौशिक । ब्रह्मणस्तु वचः श्रुत्वा विश्वामित्रस्तपोधनः ॥१९॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रत्युवाच पितामहम् । ब्रह्मर्षिशब्दमतुलं स्वार्जितैः कर्मभिः शुभैः ॥२०॥
यदि मे भगवानाह ततोऽहं विजितेन्द्रियः । तमुवाच ततो ब्रह्मा न तावत्त्वं जितेन्द्रियः ॥२१॥
यतस्व मुनिशार्दूल इत्युक्त्वा त्रिदिवं गतः । विप्रस्थितेषु देवेषु विश्वामित्रो महामुनिः ॥२२॥
ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बो वायुभक्षस्तपश्चरन् । घर्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षास्वाकाशसंश्रयः ॥२३॥
शिशिरे सलिलेशायी राञ्यहानि तपोधनः । एवं वर्षसहस्रं हि तपो घोरमुपागमत् ॥२४॥
तस्मिन्संतप्यमाने तु विश्वामित्रे महामुनौ । संतापः सुमहानासीत्सुराणां वासवस्य च ॥२५॥
रम्भामप्सरसं शक्रः सर्वैः सह मरुद्गणैः । उवाचात्महितं वाक्यमहितं कौशिकस्य च ॥२६॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चले गये और कामके विकारोंको जीतनेके लिए दृढ़ संकल्प किया ॥१४॥ कौशिकी नदीके तीरपर आकर उन्होंने कठोर तपस्या की । रामचन्द्र, उत्तर पर्वतपर कठोर तपस्या करते हुए विश्वामित्र-को एक हज़ार वर्ष बीत गये ॥१५॥ तब देवताओंको भय हुआ । वे सब मिलकर ब्रह्माके पास गये और उनकी प्रार्थना करने लगे ॥१६॥ महाराज, विश्वामित्रको महर्षिका पद दे देना ही अच्छा है । देवताओंकी बात सुनकर पितामह ब्रह्मा ॥ १७ ॥ विश्वामित्रके पास आये और उस तपस्वीसे बोले–महर्षे, तुम्हारा स्वागत ! मैं तुम्हारी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हूँ ॥ १८ ॥ मैं तुमको महर्षि-का पद देता हूँ । ब्रह्माके वचन सुनकर तपस्वी विश्वामित्र ॥ १९ ॥ हाथ जोड़कर, नम्र होकर, पितामह ब्रह्मासे बोले–पितामह, श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि पद मैंने अपने कर्मोंसे ॥ २० ॥ नहीं पाया (अर्थात् आप मुझे ब्रह्मर्षि नहीं कहते, किन्तु महर्षि कहते हैं), इससे मालूम होता है कि मैं जिते-न्द्रिय नहीं हूँ । मैंने इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया । ब्रह्माने उनसे कहा-अभी तुमने इन्द्रियोंको अपने वश में नहीं किया है ॥२१॥ मुनिश्रेष्ठ, इन्द्रियोंको जीतनेका प्रयत्न करो। ऐसा कहकर वे स्वर्ग चलेगये । देवताओंके चले जानेपर महामुनि विश्वामित्र ॥ २२ ॥ बिना किसी अवलम्बके ऊर्ध्वबाहु तथा वायुके आहारपर रहकर, तपस्या करने लगे । गर्मीके दिनोंमें पंचाग्नि लेकर, वर्षाके दिनोंमें खुली जगहमें रहकर, ॥ २३ ॥ जाड़ेके दिनोंमें दिन रात जलमें रहकर वे तपस्या करनेलगे । इस प्रकार उन तपोधनने एक हज़ार वर्षतक कठोर तपस्या की ॥२४॥ महामुनि विश्वामित्रकी कठोर तपस्या-से देवताओं और इन्द्रको बड़ा दुःख हुआ ॥ २५ ॥ सब देवताओंके साथ, इन्द्रने रम्भा नामकी अप्सरासे अपने कल्याण तथा विश्वामित्रके अकल्याणकी बात कही ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तिरसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ६४

सुरकार्यमिदं रम्भे कर्तव्यं सुमहत्त्वया। लोभनं कौशिकस्येह काममोहसमन्वितम् ॥ १ ॥
तथोक्ता साप्सरा राम सहस्राक्षेण धीमता। व्रीडिता प्राञ्जलिर्वाक्यं प्रत्युवाच सुरेश्वरम् ॥ २ ॥
अयं सुरपते घोरो विश्वामित्रो महामुनिः। क्रोधमुत्स्रक्ष्यते घोरं मयि देव न संशयः ॥ ३ ॥
ततो हि मे भयं देव प्रसादं कर्तुमर्हसि। एवमुक्तस्तया राम सभयं भीतया तदा ॥ ४ ॥
तमुवाच सहस्राक्षो वेपमानां कृताञ्जलिम्। मा भैषी रम्भे भद्रं ते कुरुष्व मम शासनम् ॥ ५ ॥
कोकिलो हृदयग्राही माधवे रुचिरद्रुमे। अहं कन्दर्पसहितः स्थास्यामि तव पार्श्वतः ॥ ६ ॥
त्वं हि रूपं बहुगुणं कृत्वा परमभास्वरम्। तमृषिं कौशिकं भद्रे भेदयस्व तपस्विनम् ॥ ७ ॥
सा श्रुत्वा वचनं तस्य कृत्वा रूपमनुत्तमम्। लोभयामास ललिता विश्वामित्रं शुचिस्मिता ॥ ८ ॥
कोकिलस्य तु शुश्राव वल्गु व्याहरतः स्वनम्। संप्रहृष्टेन मनसा स चैनामन्ववैक्षत ॥ ९ ॥
अथ तस्य च शब्देन गीतेनाप्रतिमेन च। दर्शनेन च रम्भाया मुनिः संदेहमागतः ॥ १० ॥
सहस्राक्षस्य तत्सर्वं विज्ञाय मुनिपुंगवः। रम्भां क्रोधसमाविष्टः शशाप कुशिकात्मजः ॥ ११ ॥
यन्मां लोभयसे रम्भे कामक्रोधजयैषिणम्। दशवर्षसहस्राणि शैली स्थास्यसि दुर्भगे ॥ १२ ॥
ब्राह्मणः सुमहातेजास्तपोबलसमन्वितः। उद्धरिष्यति रम्भे त्वां मत्क्रोधकलुषीकृताम् ॥ १३ ॥
एवमुक्त्वा महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः। अशक्नुवन्धारयितुं कोपं संतापमात्मनः ॥ १४ ॥

रम्भे! देवताओंका महान् कार्य तुम संपादित करो। कौशिक मुनिको, कामसे वशीभूत करके, लुभाओ ॥ १ ॥ बुद्धिमान इन्द्रके ऐसा कहनेपर, वह अप्सरा लज्जित हुई और उसने हाथ जोड़कर इन्द्रसे कहा ॥ २ ॥ सुरपति, ये विश्वामित्र बड़े भयानक हैं। ये मुझपर बहुत भयानक क्रोध करेंगे, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३ ॥ इसीसे मैं डर रही हूँ। आप मुझे क्षमा करें। डरती हुई रम्भाके ऐसा कहनेपर ॥ ४ ॥ देवराज इन्द्रने उस हाथ जोड़े खड़ी और काँपती हुई रम्भासे कहा—रम्भे! मत डरो, तुम्हारा कल्याण होगा, मेरी आज्ञा मानो ॥ ५ ॥ वसंतकालमें, मनोहर पेड़पर, सुन्दर कोकिल बनकर, कामदेवके साथ मैं तुम्हारे पासही रहूँगा ॥६॥ तुम बहुत मनोहर, सुन्दर रूप बनाकर, उस तपस्वीके चित्तको तपस्याकी ओरसे हटाकर अपनी ओर खींचो ॥ ७ ॥ इन्द्रके कहनेके अनुसार रंभाने, सुन्दर रूप बनाया और सुन्दर हँसनेवाली उसने, ऋषिके मनको अपनी ओर खींचा ॥ ८ ॥ कोकिल मधुर बोल रहा था। विश्वामित्रने प्रसन्न मनसे उसके शब्द सुने और रंभाकी ओर देखा ॥ ९ ॥ कोकिलके मनोहर शब्द और रंभाके वे गीत सुनकर, तथा रम्भाको देखकर, मुनिके मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ मुनिने निश्चय किया कि ये सब काम इन्द्रके हैं और उन्होंने क्रोध कर रम्भाको शाप दिया ॥११॥ काम, क्रोधको जीतनेकी इच्छा रखने-वाले मुझको, हे रम्भे, तू लुभाना चाहती है, इसलिए दस हज़ार वर्षों तक तुझको शिला होकर रहना पड़ेगा, क्योंकि तूने बहुत बुरा प्रयत्न किया है ॥ १२ ॥ मेरे क्रोधसे दुख भोगती हुई तुम्हारा कोई तेजस्वी और तपस्वी ब्राह्मण उद्धार करेगा ॥१३॥ अपने क्रोधको वशमें न रख सकनेके कारण,

तस्य शापेन महता रम्भा शैली तदाभवत् । वचः श्रुत्वा च कन्दर्पो महर्षेः स च निर्गतः ॥१५॥
कोपेन च महातेजास्तपोपहरणे कृते । इन्द्रियैरजितै राम न लेभे शान्तिमात्मनः ॥१६॥
बभूवास्य मनश्चिन्ता तपोपहरणे कृते । नैवं क्रोधं गमिष्यामि न च वक्ष्ये कथंचन ॥१७॥
अथवा नोच्छ्वसिष्यामि संवत्सरशतान्यपि । अहं हि शोषयिष्यामि आत्मानं विजितेन्द्रियः॥१८॥
तावद्यावद्धि मे प्राप्तं ब्राह्मण्यं तपसार्जितम् । अनुच्छ्वसन्नभुञ्जानस्तिष्ठेयं शाश्वतीः समाः ॥१९॥
नहि मे तप्यमानस्य क्षयं यास्यन्ति मूर्तयः । एवं वर्षसहस्रस्य दीक्षां स मुनिपुंगवः ।
चकाराप्रतिमां लोके प्रतिज्ञां रघुनन्दन ॥२०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ६५

अथ हैमवतीं राम दिशं त्यक्त्वा महामुनिः । पूर्वां दिशमनुप्राप्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १ ॥
मौनं वर्षसहस्रस्य कृत्वा व्रतमनुत्तमम् । चकाराप्रतिमं राम तपः परमदुष्करम् ॥ २ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु काष्ठभूतं महामुनिम् । विघ्नैर्बहुभिराधूतं क्रोधो नान्तरमाविशत् ॥ ३ ॥
स कृत्वा निश्चयं राम तप आतिष्ठताव्ययम् । तस्य वर्षसहस्रस्य व्रते पूर्णे महाव्रतः ॥ ४ ॥
भोक्तुमारब्धवानन्नं तस्मिन्काले रघूत्तम । इन्द्रो द्विजातिर्भूत्वा तं सिद्धमन्नमयाचत ॥ ५ ॥

महातेजस्वी विश्वामित्र मुनिने रम्भाको शाप दिया; पर क्रोधके कारण तपस्या नष्ट होनेका दुःख उनके मनमें हुआ ॥ १४ ॥ मुनिके शापसे रम्भा उसी समय शिला हो गयी और मुनिके वे वचन सुनकर, इन्द्र तथा कामदेव वहाँसे भाग गये ॥१५॥ क्रोधके कारण, तेजस्वी मुनिका तप नष्ट हुआ । इन्द्रियोंपर पूरी विजय न पानेके हेतु, मुनिका मन अशान्त हो गया ॥ १६ ॥ तपके नष्ट होनेपर मुनिने अपने मनमें निश्चय किया कि मैं न तो क्रोध करूँगा और न कुछ बोलूँगा ॥१७॥ अथवा सौ वर्षों तक मैं साँसही न लूँगा, इन्द्रियोंको वशमें करके अपनेको सुखा डालूँगा ॥ १८ ॥ जब तक मुझे, तपस्याके द्वारा, ब्राह्मणका पद न प्राप्त होगा, तबतक न साँस लूँगा, न खाऊँगा । अनेक वर्षोंतक इसी तरह रहूँगा ॥ १९ ॥ ऐसी तपस्या करनेसे मेरा शरीर-पात न होगा । इस प्रकार निश्चय करके मुनिने हजार वर्षोंकी दीक्षा ली और उन्होंने अद्भुत प्रतिज्ञा की ॥ २० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६४ ॥

ऐसा निश्चय करके, मुनिने उत्तर दिशाका त्याग किया और पूर्व दिशामें जाकर, वे कठोर तपस्या करने लगे ॥१॥ एक हज़ार वर्षतक मौन रहनेकी प्रतिज्ञा करके, वे दूसरोंके न करने योग्य प्रतिज्ञा करके तप करने लगे ॥२॥ एक हज़ार वर्ष बीतनेपर मुनि लकड़ीके समान हो गये । अनेक विघ्न आये, पर उनके हृदयमें क्रोध न आया ॥ ३ ॥ अविचल निश्चय कर मुनिने तपस्या की । हज़ार वर्षके पूर्ण होनेपर उनका व्रत पूरा हुआ ॥ ४ ॥ उस समय मुनि अन्न खानेका प्रारंभ

तस्मै दत्त्वा तदा सिद्धं सर्वं विप्राय निश्चितः। निःशेषितेऽन्ने भगवानभुक्त्वैव महातपाः ॥ ६ ॥
न किंचिदवदद्विप्रं मौनव्रतमुपास्थितः। तथैवासीत्पुनर्मौनमनुच्छ्वासं चकार ह ॥ ७ ॥
अथ वर्षसहस्रं च नोच्छ्वसन्मुनिपुंगवः। तस्यानुच्छ्वसमानस्य मूर्ध्नि धूमो व्यजायत॥ ८ ॥
त्रैलोक्यं येन संभ्रान्तमातापितमिवाभवत्। ततो देवर्षिगन्धर्वाः पन्नगोरगराक्षसाः ॥ ९ ॥
मोहितास्तपसा तस्य तेजसा मन्दरश्मयः। कश्मलोपहताः सर्वे पितामहमथाब्रुवन् ॥१०॥
बहुभिः कारणैर्देव विश्वामित्रो महामुनिः। लोभितः क्रोधितश्चैव तपसा चाभिवर्धते ॥११॥
नह्यस्य वृजिनं किंचिद्दृश्यते सूक्ष्ममप्युत। न दीयते यदि त्वस्य मनसा यदभीप्सितम्॥१२॥
विनाशयति त्रैलोक्यं तपसा सचराचरम्। व्याकुलाश्च दिशः सर्वा न च किंचित्प्रकाशते॥१३॥
सागराः क्षुभिताः सर्वे विशीर्यन्ते च पर्वताः। प्रकम्पते च वसुधा वायुर्वातीह संकुलः ॥१४॥
ब्रह्मन्न प्रतिजानीमो नास्तिको जायते जनः। संमूढमिव त्रैलोक्यं संप्रक्षुभितमानसम् ॥१५॥
भास्करो निष्प्रभश्चैव महर्षेस्तस्य तेजसा। बुद्धिं न कुरुते यावन्नाशे देव महामुनिः ॥१६॥
तावत्प्रसादो भगवन्नग्निरूपो महाद्युतिः। कालाग्निना यथा पूर्वं त्रैलोक्यं दह्यतेऽखिलम्॥१७॥
देवराज्यं चिकीर्षेत दीयतामस्य यन्मनः। ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥१८॥

करना चाहते थे। इसी समय इन्द्रने ब्राह्मण होकर बना हुआ अन्न माँगा ॥ ५ ॥ जो कुछ अन्न था, वह सब मुनिने ब्राह्मण-वेषधारी इन्द्रको दे दिया और अन्नके न रहनेसे स्वयं वे बिना भोजनके ही रह गये ॥६॥ वे ब्राह्मणसे कुछ भी नहीं बोले, क्योंकि उन्होंने मौन व्रत धारण किया था। वे पुनः उसी प्रकार मौन हो तथा साँस रोककर तपस्या करने लगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार एक हज़ार वर्ष मुनिने बिना साँस लिये तपस्या की। साँस न लेनेके कारण मुनिके मस्तकसे धुआँ निकलने लगा ॥ ८ ॥ उस धुएँसे त्रैलोक्य तप्त हो गया और घबड़ा गया। तब देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि ॥ ९ ॥ विश्वामित्रकी तपस्यासे मोहित हो गये और उनके तेजसे इन लोगोंका तेज धीमा पड़ गया। वे दुःख से व्याकुल होकर ब्रह्माके यहाँ गये और बोले ॥ १० ॥ पितामह, अनेक उपायोंसे हमलोगोंने महामुनि विश्वामित्रको लुभाया और क्रोधित किया, फिर भी वे अभीतक तपस्या कर ही रहे हैं ॥ ११ ॥ इनका थोड़ा भी पाप कहीं दिखायी नहीं पड़ता। यदि इनका प्रिय मनोरथ पूरा नहीं किया जायगा॥१२॥ तो समस्त स्थावर जंगम सहित इस त्रिलोकका वे नाश कर देंगे। इसी समय सब दिशाओंमें अन्धकार हो गया है, कहीं प्रकाश दिखायी नहीं पड़ता ॥ १३ ॥ सब समुद्र क्षुभित हो गये हैं, पर्वत टूट रहे हैं, पृथिवी काँप रही है, और वायु अत्यन्त व्याकुल होकर बहता है ॥ १४ ॥ हमलोग इसको दूर करनेका उपाय नहीं जानते हैं, इस कारण सब लोग (क्रिया कर्म न कर सकनेसे) नास्तिककी तरह हो गये हैं। समस्त त्रिलोकीका मन इस समय चंचल हो गया है और प्राणी अपने कर्तव्यका निश्चय नहीं कर रहे हैं ॥ १५ ॥ उन महर्षिके तेजसे, सूर्यका तेज धीमा पड़ गया है। महाराज, वे मुनि जब तक हमलोगोंका नाश करनेका निश्चय न करें ॥ १६ ॥ उसके पहले ही, अग्निके समान तेजस्वी उन मुनिको प्रसन्न करना चाहिए। नहीं तो उनके क्रोधसे, यह समस्त त्रिलोक भस्म हो जायगा जैसे कालाग्निसे पहले हुआ था ॥ १७ ॥ जो उनका मनोरथ हो, वह दीजिए। यदि वे देवता-

विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन् । ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः ॥१९॥
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक । दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन्ददामि समरुद्गणः ॥२०॥
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गच्छ सौम्य यथासुखम् । पितामहवचः श्रुत्वा सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥२१॥
कृत्वा प्रणामं मुदितो व्याजहार महामुनिः । ब्राह्मण्यं यदि मे प्राप्तं दीर्घमायुस्तथैव च ॥२२॥
ॐकारोऽथ वषट्कारो वेदाश्च वरयन्तु माम् । क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रह्मवेदविदामपि ॥२३॥
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठो मामेवं वदतु देवताः । यद्येवं परमः कामः कृतो यान्तु सुरर्षभाः ॥२४॥
ततः प्रसादितो देवैर्वसिष्ठो जपतां वरः । सख्यं चकार ब्रह्मर्षिरेवमस्त्विति चाब्रवीत् ॥२५॥
ब्रह्मर्षिस्त्वं न संदेहः सर्वं संपद्यते तव । इत्युक्त्वा देवताश्चापि सर्वा जग्मुर्यथागतम् ॥२६॥
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्यमुत्तमम् । पूजयामास ब्रह्मर्षिं वसिष्ठं जपतां वरम् ॥२७॥
कृतकामो महीं सर्वां चचार तपसि स्थितः । एवं त्वनेन ब्राह्मण्यं प्राप्तं राम महात्मना ॥२८॥
एष राम मुनिश्रेष्ठ एष विग्रहवांस्तपः । एष धर्मः परो नित्यं वीर्यस्यैष परायणम् ॥२९॥
एवमुक्त्वा महातेजा विरराम द्विजोत्तमः । शतानन्दवचः श्रुत्वा रामलक्ष्मणसंनिधौ ॥३०॥
जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम् । धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगव ॥३१॥

ओंका राज्य चाहें, तो वह भी दीजिए । ऐसा निश्चय करके देवता लोग ब्रह्माके साथ ॥ १८ ॥ महात्मा विश्वामित्रके यहाँ गये और उनसे मधुर वचन बोले-ब्रह्मर्षि, आपकी तपस्यासे हमलोग प्रसन्न हैं । आपका स्वागत है ॥ १९ ॥ कौशिक, उग्र तपस्याके कारण आपने ब्राह्मणका पद पाया । मैं तथा देवता मिलकर आपको दीर्घायु होनेका भी वर देते हैं ॥ २० ॥ आपका कल्याण हो, आप सुखपूर्वक जायँ । ब्रह्मा तथा अन्य देवताओंके ये वचन सुनकर, विश्वामित्रने प्रसन्न होकर प्रणाम किया और कहा-यदि मुझे आपलोगोंने ब्राह्मणका पद दिया और दीर्घ आयु दिया ॥ २२ ॥ तो ओंकार और वषट्कार (इनके द्वारा होनेवाली क्रिया) तथा वेदोंका ज्ञान भी मुझे दीजिये । धनुर्वेद जाननेवाले तथा ब्रह्मवेद जाननेवालोंमें मैं श्रेष्ठ होऊँ ॥ २३ ॥ ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ भी मुझे ब्रह्मर्षि कहें । यदि आपलोगोंकी कृपासे मेरा यह मनोरथ पूरा हो गया तो, देवगण ! आपलोग खुशीसे पधारें ॥ २४ ॥ तब देवताओंने ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठको अपने अनुकूल किया । वसिष्ठने देवताओंकी बात मानली और विश्वामित्रका ब्रह्मर्षि होना उन्होंने स्वीकार किया । उनके साथ उन्होंने मैत्री की ॥ २५ ॥ आपके ब्रह्मर्षि होनेमें अब कोई सन्देह नहीं है, आपके सब मनोरथ पूरे हुए, ऐसा कहकर देवगण अपने-अपने स्थानको गये ॥ २६ ॥ धर्मात्मा विश्वामित्रने भी उत्तम ब्राह्मण-पद पाकर ऋषिश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वसिष्ठकी पूजा की ॥ २७ ॥ इस प्रकार मनोरथ सिद्ध करके तपस्या करते हुए, विश्वामित्रने भ्रमण करना आरंभ किया । हे रामचन्द्र, इतनी कठिनतासे इन्होंने ब्राह्मण-पद पाया है ॥ २८ ॥ रामचन्द्र, ये मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं, ये शरीरधारी तपस्या हैं, ये उत्तम धर्म हैं, ये श्रेष्ठ वीर हैं ॥ २९ ॥ इतना कहकर महातेजस्वी शतानन्दने कथा समाप्त की । शतानन्दकी बात सुननेके पश्चात् राम-लक्ष्मणके समीप ही ॥ ३० ॥ राजा जनकने हाथ जोड़कर, विश्वामित्रसे कहा—हे

यज्ञं काकुत्स्थसहितः प्राप्तवानसि कौशिक । पावितोऽहं त्वया ब्रह्मन्दर्शनेन महामुने ॥३२॥
गुणा बहुविधाः प्राप्तास्तव संदर्शनान्मया । विस्तरेण च वै ब्रह्मन्कीर्त्यमानं महत्तपः ॥३३॥
श्रुतं मया महातेजो रामेण च महात्मना । सदस्यैःप्राप्य च सदःश्रुतास्ते बहवो गुणाः ॥३४॥
अप्रमेयं तपस्तुभ्यमप्रमेयं च ते बलम् । अप्रमेया गुणाश्चैव नित्यं ते कुशिकात्मज ॥३५॥
तृप्तिराश्चर्यभूतानां कथानां नास्ति मे विभो । कर्मकालो मुनिश्रेष्ठ लम्बते रविमण्डलम् ॥३६॥
श्वः प्रभाते महातेजो द्रष्टुमर्हसि मां पुनः । स्वागतं जपतां श्रेष्ठ मामनुज्ञातुमर्हसि ॥३७॥
एवमुक्तो मुनिवरः प्रशस्य पुरुषर्षभम् । विससर्जाशु जनकं प्रीतं प्रीतमनास्तदा ॥३८॥
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं वैदेहो मिथिलाधिपः । प्रदक्षिणं चकाराशु सोपाध्यायः सबान्धवः ॥३९॥
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा सहरामः सलक्ष्मणः । स्ववासमभिचक्राम पूज्यमानो महात्मभिः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ६६

ततः प्रभाते विमले कृतकर्मा नराधिपः । विश्वामित्रं महात्मानमाजुहाव सराघवम् ॥ १ ॥
तमर्चयित्वा धर्मात्मा शास्त्रदृष्टेन कर्मणा । राघवौ च महात्मानौ तदा वाक्यमुवाच ह ॥ २ ॥
भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किं करोमि तवानघ । भवानाज्ञापयतु मामाज्ञाप्यो भवता ह्यहम् ॥ ३ ॥

मुनिश्रेष्ठ, मैं धन्य और अनुग्रहीत हुआ ॥ ३१ ॥ क्योंकि आप राम-लक्ष्मणके साथ मेरे यज्ञमें पधारे हैं । महामुने, आपके दर्शनसे मैं पवित्र हुआ ॥ ३२ ॥ आपके दर्शन पानेसे मुझे अनेक लाभ हुए हैं । शतानन्दके द्वारा आपकी तपस्याकी कीर्ति विस्तारपूर्वक ॥ ३३ ॥ मैंने, महात्मा रामचन्द्रने तथा यज्ञके मुख्य सदस्योंने सुनी तथा आपके अन्य अनेक गुण भी सुने ॥ ३४ ॥ आपकी तपस्या अनुपम है, आपका बल अद्भुत है । कौशिक, इसी कारण आपके गुण सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ ३५ ॥ मुनिश्रेष्ठ, आपकी अद्भुत कथाओंके सुननेसे मेरी तृप्ति नहीं होती, पर यज्ञका समय है, सूर्यमण्डल ढलक चला ॥ ३६ ॥ कल प्रातःकाल आप मुझे पुनः दर्शन दें । हे मुनिश्रेष्ठ, आपका स्वागत, अब आप मुझे आज्ञा दें ॥ ३७ ॥ जनकके ऐसा कहनेपर विश्वामित्रने उनकी प्रशंसा की और प्रसन्नता पूर्वक उन्हें जानेकी आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ विदेह जनकने अपने पुरोहितों और बान्धवोंके साथ विश्वामित्रकी प्रदक्षिणा की ॥ ३९ ॥ धर्मात्मा विश्वामित्र भी राम-लक्ष्मणके साथ महात्माओंकी पूजा ग्रहण करते हुए, अपने वासस्थानको गये ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका पैंसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६५ ॥

फिर दूसरे दिन राजा जनकने अपना प्रातःकालका कृत्य करके राम और लक्ष्मणके साथ विश्वामित्रको यज्ञ-मण्डलमें बुलवाया ॥१॥ शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार धर्मात्मा जनकने ऋषिकी पूजा की और राम-लक्ष्मणकी भी पूजा की । पुनः वे बोले ॥२॥ भगवन्, आपका स्वागत । हे निष्पाप, आपके

एवमुक्तः स धर्मात्मा जनकेन महात्मना । प्रत्युवाच मुनिश्रेष्ठो वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥
पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ । द्रष्टुकामौ धनुः श्रेष्ठं यदेतत्त्वयि तिष्ठति ॥ ५ ॥
एतद्दर्शय भद्रं ते कृतकामौ नृपात्मजौ । दर्शनादस्य धनुषो यथेष्टं प्रतियास्यतः ॥ ६ ॥
एवमुक्तस्तु जनकः प्रत्युवाच महामुनिम् । श्रूयतामस्य धनुषो यदर्थमिह तिष्ठति ॥ ७ ॥
देवरात इति ख्यातो निमेर्ज्येष्ठो महीपतिः । न्यासोऽयं तस्य भगवन्हस्ते दत्तो महात्मनः ॥ ८ ॥
दक्षयज्ञवधे पूर्वं धनुरायम्य वीर्यवान् । विध्वस्य त्रिदशान्रोषात्सलीलमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
यस्माद्भागार्थिनो भागान्नाकल्पयत मे सुराः । वराङ्गानि महार्हाणि धनुषा शातयामि वः ॥१०॥
ततो विमनसः सर्वे देवा वै मुनिपुंगव । प्रसादयन्त देवेशं तेषां प्रीतोऽभवद्भवः ॥११॥
प्रीतियुक्तस्तु सर्वेषां ददौ तेषां महात्मनाम् । तदेतद्देवदेवस्य धनूरत्नं महात्मनः ॥१२॥
न्यासभूतं तदा न्यस्तमस्माकं पूर्वजे विभौ । अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः ॥१३॥
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता । भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा ॥१४॥
वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा । भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् ॥१५॥
वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुंगव । तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् ॥१६॥
वीर्यशुल्केति भगवन्न ददामि सुतामहम् । ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंगव ॥१७॥

लिए क्या करूँ, आप आज्ञा दें, क्योंकि आपको आज्ञा देनेका अधिकार है ॥३॥ इस प्रकार जनकके कहनेपर बोलनेमें निपुण मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने कहा ॥४॥ ये दोनों राजा दसरथके पुत्र लोकप्रसिद्ध क्षत्रिय हैं, आपका जो श्रेष्ठ धनुष है, उसे ये लोग देखना चाहते हैं ॥ ५ ॥ इन्हें धनुष दिखलवा दीजिए । आपका कल्याण होगा, ये राजकुमार उस धनुषको देखकर ही तृप्त होकर लौट जायेंगे, ये सिर्फ देखना चाहते हैं ॥ ६ ॥ इन बातोंके सुननेपर राजाने महामुनि विश्वामित्रसे कहा–इस धनुष का वृत्तान्त सुनिए, जिसलिए यह यहाँ रख गया है ॥ ७ ॥ निमिके ज्येष्ठ पुत्र देवरात नामसे प्रसिद्ध राजा थे, उन्हीं महात्माको यह न्यास रूपमें (थाती) मिला है ॥८॥ दक्ष–यज्ञके नाशके समय महादेवने इस धनुषको चढ़ाया था । यज्ञका नाश करके, देवताओंसे क्रोधपूर्वक उन्होंने कहा ॥९॥ मैं यज्ञमें भाग चाहता हूँ, पर देवताओंने मेरा वह भाग मुझे न दिया, इस कारण मैं उनके मस्तक धनुषसे काटूँगा ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, इससे देवतालोग बहुत उदास हुए । उन लोगोंने महादेव-को प्रसन्न किया । महादेव भी प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ प्रसन्न होकर उन्होंने देवताओंको अपना यह धनुष दिया । यह धनुष उन्हींका है ॥ १२ ॥ यह हमारे पूर्वजोंको न्यासमें मिला था । मैं खेत खोद रहा था कि हलमें टकराकर एक कन्या निकल आयी ॥१३॥ सीता (हल की नोक) से मैं खेत बना रहा था, इससे वह सीता नामसे प्रसिद्ध हुई, मेरी कन्या बड़ी हुई है ॥ १४ ॥ इस अयोनिजा कन्याका शुल्क (वरपक्षसे कन्यापक्षको मिलनेवाली रकम) मैंने पराक्रम रक्खा है । मुनिश्रेष्ठ, भूतलसे उत्पन्न, मेरे घर बढ़ी हुई इस कन्याको ॥ १५ ॥ अनेक राजाओंने मुझसे माँगा, परन्तु कन्यार्थी उन सब राजाओंको ॥ १६ ॥ मैंने कह दिया कि इसका शुल्क पराक्रम है,

मिथिलाप्युपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा । तेषां जिज्ञासमानानां शैवं धनुरुपाहृतम् ॥१८॥
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा । तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने ॥१९॥
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन । ततः परमकोपेन राजानो मुनिपुंगव ॥२०॥
अरुन्धन्मिथिलां सर्वे वीर्यसंदेहमागताः । आत्मानमवधूतं मे विज्ञाय नृपपुंगवाः ॥२१॥
रोषेण महताविष्टाः पीडयन्मिथिलां पुरीम् । ततः संवत्सरे पूर्णे क्षयं यातानि सर्वशः ॥२२॥
साधनानि मुनिश्रेष्ठ ततोऽहं भृशदुःखितः । ततो देवगणान्सर्वांस्तपसाहं प्रसादयम् ॥२३॥
ददुश्च परमप्रीताश्चतुरंगबलं सुराः । ततो भग्ना नृपतयो हन्यमाना दिशो ययुः ॥२४॥
अवीर्या वीर्यसंदिग्धाः सामात्याः पापकारिणः । तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम् ॥२५॥
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत । यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने ।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम् ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ६७

जनकस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः । धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम् ॥ १ ॥

विना इसके मैं कन्या न दूँगा। तदनन्तर सब राजालोग एकत्र होकर ॥१७॥ मिथिलामें आये और उन-लोगोंने, सीताके लिए कौनसा पराक्रम है, यह पूछा । उन पूछनेवालोंके सामने मैंने शिवजीका यह धनुष रख दिया ॥१८॥ उस धनुषको ग्रहण करने तथा उठानेमें कोई भी समर्थ न होसका । अतएव हीन-पराक्रमी समझकर, मैंने ॥ १९ ॥ उन सब राजाओंको "नाहीं" कर दिया । मुनिश्रेष्ठ, उन राजाओंने बड़े क्रोधसे ॥ २० ॥ मिथिलापुरीको घेर लिया । उन सबोंको अपने पराक्रमी होनेका सन्देह होगया था । उनलोगोंने धनुषके कारण अपनेको तिरस्कृत समझ लिया था और इसी कारण ॥ २१ ॥ बड़े क्रोधसे मिथिलापुरीको वे पीड़ित करने लगे । एक बरस बीतनेपर, मेरे सब साधन (नागरिकोंके भोजन, वस्त्र आदि और युद्धकी सामग्रियाँ) नष्ट होगये ॥२२॥ हे मुनिश्रेष्ठ, तब मैं अत्यन्त दुःखित हुआ और तपस्याके द्वारा मैंने देवताओंको प्रसन्न किया ॥२३॥ देवताओंने प्रसन्न होकर मुझे चतुरंगिणी सेना दी, जिसके मारसे भागकर राजा अपने अपने घर गये ॥ २४ ॥ वे राजा हीन पराक्रमी थे, पर अपनेको पराक्रमी समझते थे, और उनके अमात्य तथा वे पाप किया करते थे । यही वह परम तेजस्वी धनुष है ॥२५॥ राम लक्ष्मणको भी मैं वह धनुष दिखाता हूँ । यदि रामचन्द्र उस धनुषका चिल्ला चढ़ा दें, तो मैं अपनी अयोनिजा कन्या सीता इन्हें दूँ ॥ २६ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छाछठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६६ ॥

जनककी बात सुनकर महामुनि विश्वामित्रने कहा-हाँ, रामचन्द्रको धनुष दिखलाइए ॥ १ ॥

ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह । धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम् ॥ २ ॥
जनकेन समादिष्टाः सचिवाः प्राविशन्पुरम् । तद्धनुः पुरतः कृत्वा निर्जग्मुरमितौजसः ॥ ३ ॥
नृणां शतानि पञ्चाशद्व्यायतानां महात्मनाम् । मञ्जूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन ॥ ४ ॥
तामादाय सुमञ्जूषामायसीं यत्र तद्धनुः । सुरोपमं ते जनकमूचुर्नृपतिमन्त्रिणः ॥ ५ ॥
इदं धनुर्वरं राजन्पूजितं सर्वराजभिः । मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शनीयं यदीच्छसि ॥ ६ ॥
तेषां नृपो वचः श्रुत्वा कृताञ्जलिरभाषत । विश्वामित्रं महात्मानं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥
इदं धनुर्वरं ब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम् । राजभिश्च महावीर्यैरशक्तैः पूरितं तदा ॥ ८ ॥
नैतत्सुरगणाः सर्वे सासुरा न च राक्षसाः । गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः ॥ ९ ॥
क्व गतिर्मानुषाणां च धनुषोऽस्य प्रपूरणे । आरोपणे समायोगे वेपने तोलने तथा ॥१०॥
तदेतद्धनुषां श्रेष्ठमानीतं मुनिपुंगव । दर्शयैतन्महाभाग अनयो राजपुत्रयोः ॥११॥
विश्वामित्रः सरामस्तु श्रुत्वा जनकभाषितम् । वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥१२॥
महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः । मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ॥१३॥
इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना । यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा ॥१४॥
बाढमित्यब्रवीद्राजा मुनिश्च समभाषत । लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ॥१५॥
पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः । आरोपयत्स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ॥१६॥

राजा जनकने अपने मंत्रियोंसे कहा कि गंध, माल्य आदिसे सुशोभित वह दिव्य धनुष यहाँ लाइए ॥२॥ जनककी आज्ञासे वे मंत्री नगरमें गये और धनुष लाकर उन वीरोंने राजाके सामने रख दिया ॥३॥ पाँच हजार बड़े बलिष्ठ आदमी, आठ पहियेवाली गाड़ीपर, उस धनुषके सन्दूकको किसी प्रकार लासके थे ॥ ४ ॥ उस लोहेके सन्दूकको, जिसमें वह धनुष था, ले आकर मंत्रियोंने देवतुल्य राजा जनकसे कहा ॥५॥ महाराज यही श्रेष्ठ धनुष है, जिसकी सब राजाओंने पूजा की है । मिथिलाधिप, यह दर्शनीय है, यदि आप चाहें ॥६॥ उनकी बातें सुन, हाथ जोड़कर राजा जनकने महर्षि विश्वामित्रसे राम-लक्ष्मणको धनुष दिखलानेके लिए कहा ॥ ७ ॥ ब्रह्मन्, यही वह श्रेष्ठ धनुष है । जनक राजाओंने इसकी केवल पूजा की है । वे पराक्रमी होनेपर भी इस धनुषको उठा, चला नहीं सकते थे ॥ ८ ॥ देवता, गण, असुर, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष किन्नर, नाग आदि भी ॥ ९ ॥ इस धनुषका चिल्ला चढ़ाने, उठाने, बाण चढ़ाने, खींचने आदिमें समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्योंकी क्या बात ? ॥१०॥ सब धन्वाओंमें श्रेष्ठ यह धनुष आया है । हे महाभाग मुनि, आप इसे राजपुत्रोंको दिखावें ॥११॥ रामचन्द्र और विश्वामित्रने जनककी बातें सुनीं । विश्वामित्रने कहा-वत्स राम, इस धनुषको देखो । ऐसा उन्होंने रामचन्द्रसे कहा ॥ १२ ॥ महर्षिके वचनसे, जहाँ वह धनुष था, वहाँ रामचन्द्र गये । सन्दूक खोलकर और धनुष देखकर उन्होंने कहा ॥१३॥ इस अलौकिक और श्रेष्ठ धनुषको मैं छूता हूँ । इसे उठाने और चढ़ानेका भी प्रयत्न करूँगा ॥ १४ ॥ राजा जनकने और मुनिने रामचन्द्रको ऐसा करनेकी आज्ञा दी । मुनिके कहनेसे, रामचन्द्रने, बहुत ही आसानीसे धनुषको बीचसे पकड़ा ॥ १५ ॥ हजारों मनुष्य वहाँ देख रहे थे । रामचन्द्रने अनायास ही वह धनुष चढ़ा दिया ॥ १६ ॥

आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः । तद्बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ॥१७॥
तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः । भूमिकम्पश्च सुमहान्पर्वतस्येव दीर्यतः ॥१८॥
निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः । वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ॥१९॥
प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन्राजा विगतसाध्वसः । उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुंगवम् ॥२०॥
भगवन्दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः । अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया ॥२१॥
जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता । सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥२२॥
मम सत्या प्रतिज्ञा सा वीर्यशुल्केति कौशिक । सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता ॥२३॥
भवतोऽनुमते ब्रह्मञ्शीघ्रं गच्छन्तु मन्त्रिणः । मम कौशिक भद्रं ते अयोध्यां त्वरिता रथैः ॥२४॥
राजानं प्रश्रितैर्वाक्यैरानयन्तु पुरं मम । प्रदानं वीर्यशुल्कायाः कथयन्तु च सर्वशः ॥२५॥
मुनिगुप्तौ च काकुत्स्थौ कथयन्तु नृपाय वै । प्रीतियुक्तं तु राजानमानयन्तु सुशीघ्रगाः ॥२६॥
कौशिकस्तु तथेत्याह राजा चाभाष्य मन्त्रिणः । अयोध्यां प्रेषयामास धर्मात्मा कृतशासनान् ।
यथावृत्तं समाख्यातुमानेतुं च नृपं तथा ॥ २७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

उसपर चिल्ला चढ़ाकर उसका टंकार करने लगे, वह धनुष बीचसे ही टूट गया ॥ १७ ॥ फटते हुए पर्वतोंके समान और वज्र गिरनेके समान, उस धनुषके टूटनेका भयानक शब्द हुआ । पृथिवी काँपने लगी ॥ १८ ॥ विश्वामित्र, जनक और राम-लक्ष्मणको छोड़कर और जितने मनुष्य वहाँ थे, वे सब उस धनुषके टूटनेका शब्द सुनकर बेहोश-से हो गये। जब वे सब मनुष्य होशमें आये, तब राजा जनककी घबड़ाहट दूर हुई । बालनेमें चतुर राजाने हाथ जोड़कर विश्वामित्रसे कहा ॥२०॥ महाराज, दशरथके पुत्र रामचन्द्रका पराक्रम हमलोगोंने देख लिया । इनका पराक्रम अद्भुत है, अचिन्त्य है और विचारके परे है ॥२१॥ मेरी कन्या जनकोंके कुलकी कीर्ति बढ़ावेगी क्योंकि दशरथके पुत्र रामचन्द्रको सीताने पति पाया ॥ २२ ॥ इसका जो मैंने पराक्रम-शुल्क निश्चय किया था, वह मेरी प्रतिज्ञा भी पूरी हुई । कौशिक, सीता मुझे प्राणोंसे भी प्रिय है ॥ २३ ॥ मैं इसे रामचन्द्रको दूँगा । महाराज, यदि आपकी आज्ञा हो, तो ये मेरे मंत्री, रथोंपर शीघ्र ही अयोध्याको जायँ, ॥ २४ ॥ अनुनय-विनयसे राजाको मेरे नगरमें ले आवें और रामके सीतासे व्याहकी बात भी चारो ओर कहें ॥ २५ ॥ राम और लक्ष्मण, विश्वामित्रके द्वारा रक्षित और प्रसन्न हैं, यह भी राजा दशरथसे कहें और शीघ्र जाकर प्रसन्नतापूर्वक राजाको ले आवें ॥ २६ ॥ कौशिकने राजा जनकके विचारके अनुसार काम करनेकी आज्ञा दी । धर्मात्मा राजाने मंत्रियोंको अयोध्या भेजा । जो कुछ यहाँ हुआ था, वह सब कहने तथा राजाको ले आनेके लिए जनकने मंत्रियोंको भेजा ॥ २७ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सतसठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ६८

जनकेन समादिष्टा दूतास्ते क्लान्तवाहनाः । त्रिरात्रमुषिता मार्गे तेऽयोध्यां प्राविशन्पुरीम् ॥ १ ॥
ते राजवचनाद्गत्वा राजवेश्म प्रवेशिताः । ददृशुर्देवसंकाशं वृद्धं दशरथं नृपम् ॥ २ ॥
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे दूता विगतसाध्वसाः । राजानं प्रश्रितं वाक्यमब्रुवन्मधुराक्षरम् ॥ ३ ॥
मैथिलो जनको राजा साग्निहोत्रपुरस्कृतः । मुहुर्मुहुर्मधुरया स्नेहसंरक्तया गिरा ॥ ४ ॥
कुशलं चाव्ययं चैव सोपाध्यायपुरोहितम् । जनकस्त्वां महाराजा पृच्छते सपुरःसरम् ॥ ५ ॥
पृष्ट्वा कुशलमव्यग्रं वैदेहो मिथिलाधिपः । कौशिकानुमते वाक्यं भवन्तमिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥
पूर्वं प्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा । राजानश्च कृतामर्षा निर्वीर्या विमुखीकृताः ॥ ७ ॥
सेयं मम सुता राजन्विश्वामित्रपुरस्कृतैः । यदृच्छयागतै राजन्निर्जिता तव पुत्रकैः ॥ ८ ॥
तच्च रत्नं धनुर्दिव्यं मध्ये भग्नं महात्मना । रामेण हि महावाहो महत्यां जनसंसदि ॥ ९ ॥
अस्मै देया मया सीता वीर्यशुल्का महात्मने । प्रतिज्ञां तर्तुमिच्छामि तदनुज्ञातुमर्हसि ॥१०॥
सोपाध्यायो महाराज पुरोहितपुरस्कृतः । शीघ्रमागच्छ भद्रं ते द्रष्टुमर्हसि राघवौ ॥११॥
प्रतिज्ञां मम राजेन्द्र निर्वर्तयितुमर्हसि । पुत्रयोरुभयोरेव प्रीतिं त्वमुपलप्स्यसे ॥१२॥
एवं विदेहाधिपतिर्मधुरं वाक्यमब्रवीत् । विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः शतानन्दमते स्थितः ॥१३॥
दूतवाक्यं तु तच्छ्रुत्वा राजा परमहर्षितः । वसिष्ठं वामदेवं च मन्त्रिणश्चैवमब्रवीत् ॥१४॥

जनकसे आज्ञा पाकर वे दूत अयोध्या चले । उनके घोड़े थक गये, रास्तेमें तीन रात बिताकर, उन लोगोंने अयोध्यामें प्रवेश किया ॥ १ ॥ राजाकी आज्ञासे, राजमहलमें जाकर, उन लोगोंने देवताके समान बूढ़े राजा दशरथको देखा ॥ २ ॥ हाथ जोड़कर तथा प्रसन्न होकर, वे सब दूत राजा दशरथसे बड़ेही विनयके साथ मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ महाराज, अग्निहोत्री मिथिलाके राजा जनकने बड़े स्नेहसे मधुर शब्दोंके द्वारा उपाध्याय और पुरोहितके साथ आपकी कुशल और आपका योग पूछा है ॥ ५ ॥ कुशल पूछकर, बड़ी सावधानीसे मिथिलाधिपतिने विश्वामित्रकी आज्ञा पाकर, आपसे कहनेको यह संदेश कहा है ॥ ६ ॥ आपको मालूम होगा कि मैंने अपनी कन्याका शुल्क पराक्रम रखा था । बहुतसे राजा क्रोध करके आये, पर वे पराक्रम-हीन थे, इसलिए लौटा दिये गये ॥ ७ ॥ उस मेरी कन्याको, विश्वामित्रके साथ घूमते-फिरते आये हुए आपके बच्चेने जीतलिया ॥ ८ ॥ हे वीर, उस बड़ी सभामें महात्मा रामचन्द्रने उस दिव्य धनुषको बीचसे तोड़ दिया ॥९॥ मैं वीर्य-शुल्का अपनी कन्या इसी महात्मा रामचन्द्रको देना चाहता हूँ और इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहता हूँ । महाराज, आप आज्ञा दें ॥१०॥ अपने पुरोहित और उपाध्यायको लेकर आप शीघ्र आवें । आपका कल्याण होगा, आप राम और लक्ष्मणको वहाँ देख सकेंगे ॥११॥ राजेन्द्र, आप मेरी प्रतिज्ञा पूरी करावें, जिससे आप अपने दोनों पुत्रोंकी प्रसन्नता पा सकेंगे ॥१२॥ महाराजा मिथिलाधिपति राजा जनकने विश्वामित्रकी आज्ञासे तथा शतानन्दकी सलाहसे, यही मधुर वचन आपसे कहे हैं ॥ १३ ॥ दूतोंके वचन सुनकर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न

गुप्तः कुशिकपुत्रेण कौसल्यानन्दवर्धनः । लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विदेहेषु वसत्यसौ ॥१५॥
दृष्टवीर्यस्तु काकुत्स्थो जनकेन महात्मना । संप्रदानं सुतायास्तु राघवे कर्तुमिच्छति ॥१६॥
यदि वो रोचते वृत्तं जनकस्य महात्मनः । पुरीं गच्छामहे शीघ्रं मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥१७॥
मन्त्रिणो बाढमित्याहुः सह सर्वैर्महर्षिभिः । सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजा श्वो यात्रेति च मन्त्रिणः ॥१८॥
मन्त्रिणस्तु नरेन्द्रस्य रात्रिं परमसत्कृताः । ऊषुः प्रमुदिताः सर्वे गुणैः सर्वैः समन्विताः ॥१९॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डेऽष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९

ततो रात्र्यां व्यतीतायां सोपाध्यायः सबान्धवः । राजा दशरथो हृष्टः सुमन्त्रमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥
अद्य सर्वे धनाध्यक्षा धनमादाय पुष्कलम् । व्रजन्त्वग्रे सुविहिता नानारत्नसमन्विताः ॥ २ ॥
चतुरङ्गबलं चापि शीघ्रं निर्यातु सर्वशः । ममाज्ञासमकालं च यानं युग्यमनुत्तमम् ॥ ३ ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः । मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुरृषिः कात्यायनस्तथा ॥ ४ ॥
एते द्विजाः प्रयान्त्वग्रे स्यन्दनं योजयस्व मे । यथा कालात्ययो न स्याद्दूता हि त्वरयन्ति माम् ॥५॥
वचनाच्च नरेन्द्रस्य सेना च चतुरङ्गिणी । राजानमृषिभिः सार्धं व्रजन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥६॥

हुए। उन्होंने वशिष्ठ, वामदेव और मंत्रियोंसे कहा ॥ १४ ॥ विश्वामित्रके द्वारा रक्षित होकर कौसल्याके आनन्द बढ़ानेवाले रामचन्द्र, अपने भाई लक्ष्मणके साथ, इस समय मिथिलामें निवास करते हैं ॥ १५ ॥ राजा जनकने रामचन्द्रका पराक्रम देख लिया है। वे अपनी कन्या सीताका ब्याह रामचन्द्रके साथ करना चाहते हैं ॥ १६ ॥ यदि यह संवाद आपलोगोंको पसन्द हो, तो शीघ्र ही हमलोग मिथिलाकी राजधानीमें चलें। विलम्ब न करें ॥ १७ ॥ महर्षियोंके साथ मंत्रियोंने राजा दशरथकी बात स्वीकार की। राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि कल यात्रा करनी होगी ॥ १८ ॥ मंत्रीके सब गुणोंसे युक्त, राजा जनकके उन सब मंत्रियोंने राजाके द्वारा सम्मानित होकर, बड़ी प्रसन्नतासे उस रातको वहीं निवास किया ॥ १९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका अड़सठवाँ सर्ग समाप्त ॥ ६८ ॥

रात्रिके बीतनेपर उपाध्याय और बांधवोंके साथ, प्रसन्नतापूर्वक राजा दशरथने, सुमंत्रसे यह कहा ॥ १ ॥ सब खजाञ्ची बहुत अधिक परिमाणमें धन लेकर आगे चलें। तरह-तरहके रत्न ले लें और सावधानीसे जायँ ॥ २ ॥ चतुरंगिणी सेना भी शीघ्र चले। मेरी आज्ञा पाते ही सवारी और घोड़े लाये जायँ ॥ ३ ॥ वसिष्ठ वामदेव, जाबालि, कश्यप, दीर्घायु मार्कण्डेय तथा कात्यायन ॥ ४ ॥ ये सब ब्राह्मण आगे चलें। मेरे लिए भी रथ तैयार करो, जिससे विलम्ब न होने पावे। दूत मुझे शीघ्रता करनेके लिए कह रहे हैं ॥ ५ ॥ नरेन्द्रकी आज्ञासे उनकी सेना, ऋषियोंके साथ

गत्वा चतुरहं मार्गे विदेहानभ्युपेयिवान्। राजा च जनकः श्रीमाञ्श्रुत्वा पूजामकल्पयत् ॥७॥
ततो राजानमासाद्य वृद्धं दशरथं नृपम्। मुदितो जनको राजा महर्षं परमं ययौ ॥ ८ ॥
उवाच वचनं श्रेष्ठो नरश्रेष्ठं मुदान्वितम्। स्वागतं ते नरश्रेष्ठ दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव ॥ ९ ॥
पुत्रयोरुभयोः प्रीतिं लप्स्यसे वीर्यनिर्जिताम्। दिष्ट्या प्राप्तो महातेजा वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१०॥
सह सर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिव शतक्रतुः। दिष्ट्या मेनिर्जिताविघ्नादिष्ट्यामेपूजितंकुलम् ॥११॥
राघवैः सह संबन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः। श्वः प्रभाते नरेन्द्र त्वं संवर्तयितुमर्हसि ॥१२॥
यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसत्तमैः। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिमध्ये नराधिपः ॥१३॥
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठः प्रत्युवाच महीपतिम्। प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा ॥१४॥
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत्करिष्यामहे वयम्। तद्धर्मिष्ठं यशस्यं च वचनं सत्यवादिनः ॥१५॥
श्रुत्वा विदेहाधिपतिः परं विस्मयमागतः। ततः सर्वे मुनिगणाः परस्परसमागमे ॥१६॥
हर्षेण महता युक्तास्तां रात्रिमवसन्सुखम्। राजा च राघवौ पुत्रौ निशाम्य परिहर्षितः ॥१७॥
उवास परमप्रीतो जनकेनाभिपूजितः। जनकोऽपि महातेजाः क्रिया धर्मेण तत्त्ववित्।
यज्ञस्य च सुताभ्यां च कृत्वा रात्रिमुवास ह ॥१८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

जाते हुए राजाके पीछे-पीछे चली ॥ ६ ॥ चार दिन मार्गमें चलकर वे मिथिला पहुँचे। राजा जनकने दशरथका आना सुनकर, उनकी पूजाकी तयारी की ॥ ७ ॥ बूढ़े राजा दशरथके समीप जाकर स्वभावसे प्रसन्न रहनेवाले जनक और भी प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ जनकने प्रसन्नचित्त राजा दशरथसे कहा—नरश्रेष्ठ, आपका स्वागत। भाग्यसे ही आप यहाँ पधारे ॥ ९ ॥ पराक्रमसे आपके पुत्रोंने जो कीर्ति कमायी है, उससे आप प्रसन्न हों। भगवान् वसिष्ठ ऋषि भी आये हैं, यह और भी सौभाग्यकी बात है ॥ १० ॥ देवताओंके साथ, जैसे इन्द्र आते हैं, वैसेही ब्राह्मणोंके साथ ये भी आये हैं। भाग्यकी बात है कि मेरे सब विघ्न दूर हुए। मेरा कुल पवित्र हुआ ॥ ११ ॥ पराक्रमी रघुवंशियोंके साथ संबन्ध होनेके कारण मेरा कुल उन्नत हुआ। राजन्, कल प्रातःकाल ॥ १२ ॥ यज्ञके अन्तमें ऋषियोंकी सम्मति लेकर व्याहकी तयारी कराइए। ऋषियोंकी सभामें जनककी ये बातें सुनकर, बुद्धिमान राजा दशरथ ॥ १३ ॥ जनकसे बोले-मैंने सुना है कि दान दाताके अधीन है ॥ १४ ॥ धर्मज्ञ, जैसा आप कहेंगे, वैसाही हमलोग करेंगे। सत्यवादी राजा दशरथके ये धर्मयुक्त और यशदेनेवाले वचन ॥ १५ ॥ सुनकर, जनकको बड़ा आश्चर्य हुआ। तदनन्तर मुनिगण आपसमें मिलने लगे ॥ १६ ॥ बड़े प्रसन्न होकर महर्षियोंने वह रात बितायी राजा दशरथ भी अपने पुत्रोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ जनकके द्वारा सत्कृत होकर, राजा दशरथ भी बहुत ही प्रसन्न हुए। क्रिया जाननेवाले जनकने यज्ञ और कन्याओंके विवाहका प्रबन्ध कर वह रात बितायी ॥ १८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका उनहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥६९॥

सप्ततितमः सर्गः ७०

ततः प्रभाते जनकः कृतकर्मा महर्षिभिः । उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः शतानन्दं पुरोहितम् ॥ १ ॥
भ्राता मम महातेजा वीर्यवानतिधार्मिकः । कुशध्वज इति ख्यातः पुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥ २ ॥
वार्याफलकपर्यन्तां पिबन्निक्षुमतीं नदीम् । सांकाश्यां पुण्यसंकाशां विमानमिव पुष्पकम् ॥ ३ ॥
तमहं द्रष्टुमिच्छामि यज्ञगोप्ता स मे ततः । प्रीतिं सोऽपि महातेजा इमां भोक्ता मया सह ॥ ४ ॥
एवमुक्ते तु वचने शतानन्दस्य संनिधौ । आगताःकेचिदव्यग्रा जनकस्तान्समादिशत् ॥ ५ ॥
शासनात्तु नरेन्द्रस्य प्रययुः शीघ्रवाजिभिः । समानेतु नरव्याघ्रं विष्णुमिन्द्राज्ञया यथा ॥ ६ ॥
सांकाश्यां ते समागम्य ददृशुश्च कुशध्वजम् । न्यवेदयन्यथावृत्तं जनकस्य च चिन्तितम् ॥ ७ ॥
तद्वृत्तं नृपतिः श्रुत्वा दूतश्रेष्ठैर्महाजवैः । आज्ञया तु नरेन्द्रस्य आजगाम कुशध्वजः ॥ ८ ॥
स ददर्श महात्मानं जनकं धर्मवत्सलम् । सोऽभिवाद्य शतानन्दं जनकं चातिधार्मिकम् ॥ ९ ॥
राजार्हं परमं दिव्यमासनं सोऽध्यरोहत । उपविष्टावुभौ तौ तु भ्रातरावमितद्युती ॥१०॥
प्रेषयामासतुर्वीरौ मन्त्रिश्रेष्ठं सुदामनम् । गच्छ मन्त्रिपते शीघ्रमिक्ष्वाकुममितप्रभम् ॥११॥
आत्मजैः सह दुर्धर्षमानयस्व समन्त्रिणम् । औपकार्यां स गत्वा तु रघूणां कुलवर्धनम् ॥१२॥
ददर्श शिरसा चैनमभिवाद्येदमब्रवीत् । अयोध्याधिपते वीर वैदेहो मिथिलाधिपः ॥१३॥
स त्वां द्रष्टुं व्यवसितः सोपाध्यायपुरोहितम् । मन्त्रिश्रेष्ठवचः श्रुत्वा राजा सर्षिगणस्तथा ॥१४॥

प्रातःकाल होनेपर राजा जनकने महर्षियोंके साथ अपने सब कृत्य किये, तदनन्तर वे अपने पुरोहित शतानन्दसे बोले ॥ १ ॥ महातेजस्वी, पराक्रमी और धार्मिक कुशध्वज नामके मेरे भाई पहले इस नगरीमें रहते थे ॥ २ ॥ वे इस समय, चारों तरफसे चहारदीवारीसे घिरी हुई तथा यन्त्र आदिसे सज्जित, इक्षु नदीका जल पीनेके लिए, पवित्र सांकाश्या नगरीमें गये हैं। यह नगरी पुष्पक विमानके समान सुन्दर है ॥ ३ ॥ मैं उनको देखना चाहता हूँ, वे ही मेरे यज्ञके रक्षक बने। महातेजस्वी, वे भी इस आनन्दमें भाग लें ॥ ४ ॥ शतानन्दसे राजा जनकके ऐसा कहनेपर कई मनुष्य वहाँ बड़ी नम्रताके साथ आये। राजा जनकने उन्हें आज्ञा दी ॥ ५ ॥ राजाकी आज्ञासे, तेज चलनेवाले घोड़ोंपर, वे कुशध्वजको ले आनेके लिए चले, जैसे इन्द्रकी आज्ञासे विष्णु लाये जाते हों ॥ ६ ॥ सांकाश्या नगरीमें जाकर उन्होंने कुशध्वजको देखा और सब बातें बतलायीं। जनकने विचार भी कहे ॥ ७ ॥ उन दूतोंके द्वारा, सब बातें कुशध्वजने सुनीं। राजा जनककी आज्ञा होनेके कारण, वे आपहुँचे ॥ ८ ॥ उन्होंने महात्मा और धर्मप्रेमी जनकको देखा। शतानन्द तथा धर्मात्मा जनकको उन्होंने प्रणाम किया ॥ ९ ॥ राजाओंके बैठने योग्य सुन्दर आसनपर वे बैठे। वे दोनों अमित कान्तिवाले भाई साथ बैठे ॥ १० ॥ उन दोनोंने मन्त्रिश्रेष्ठ सुदामनको आज्ञा दी-मन्त्रिश्रेष्ठ! आप शीघ्र प्रभावशाली राजा दशरथके पास जायँ ॥ ११ ॥ शत्रुओंसे अजेय राजा दशरथको मन्त्रियोंके साथ आप ले आवें। वे मन्त्री दशरथके खीमेमें गये ॥१२॥ राजा दशरथको उनलोगोंने देखा और सिर झुकाकर प्रणाम किया और कहा-हे अयोध्याके महाराज, मिथिलाके राजा जनक, ॥ १३ ॥ पुरोहित और उपाध्यायोंके साथ आपको

सबन्धुरगमत्तत्र जनको यत्र वर्तते । राजाचमन्त्रिसहितःसोपाध्यायःसबान्धवः ॥१५॥
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो वैदेहमिदमब्रवीत् । विदितं ते महाराज इक्ष्वाकुकुलदैवतम् ॥१६॥
वक्ता सर्वेषु कृत्येषु वासिष्ठो भगवानृषिः । विश्वामित्राभ्यनुज्ञातः सह सर्वैर्महर्षिभिः ॥१७॥
एष वक्ष्यति धर्मात्मा वासिष्ठो मे यथाक्रमम् । तूष्णींभूते दशरथे वासिष्ठो भगवानृषिः ॥१८॥
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो वैदेहं सपुरोधसम् । अव्यक्तप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः॥१९॥
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः । विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्मृतः ॥२०॥
मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः ।तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम् ॥२१॥
इक्ष्वाकोऽस्तु सुतःश्रीमान्कुक्षिरित्येव विश्रुतः । कुक्षेरथात्मजः श्रीमान्विकुक्षिरुदपद्यत ॥२२॥
विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान् । बाणस्य तु महातेजा अनरण्यः प्रतापवान् ॥२३॥
अनरण्यात्पृथुर्जज्ञे त्रिशङ्कुस्तु पृथोरपि । त्रिशङ्कोरभवत्पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः ॥२४॥
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः । युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः ॥२५॥
मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान्सुसंधिरुदपद्यत । सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसंधिः प्रसेनजित ॥२६॥
यशस्वी ध्रुवसंधेस्तु भरतो नाम नामतः । भरतात्तु महातेजा असितो नाम जायत ॥२७॥
यस्यैते प्रतिराजान उदपद्यन्त शत्रवः । हैहयास्तालजङ्घाश्च शूराश्च शशबिन्दवः ॥२८॥
तांश्च स प्रतियुध्यन्वै युद्धे राजा प्रवासितः । हिमवन्तमुपागम्य भार्याभ्यां सहितस्तदा ॥२९॥

देखना चाहते हैं । प्रधान मन्त्रीके ये वचन सुनकर, राजा ऋषियों, ॥ १४ ॥ बन्धुओंके साथ वहाँ गये, जहाँ राजा जनक थे। मन्त्रियों, उपाध्यायों और पुरोहितोंके साथ दशरथने ॥१५॥ राजा जनकसे कहा—महाराज, आपको मालूम है कि इक्ष्वाकुवंशके देवता, भगवान् वसिष्ठ हैं ॥ १६ ॥ उन्हींकी सम्मति तथा आज्ञासे सब कार्य होते हैं । विश्वामित्र तथा अन्य महर्षियोंसे सम्मति लेकर, ॥१७॥ वे धर्मात्मा वसिष्ठही सब बातोंकी आज्ञा देंगे । दशरथके चुप होनेपर भगवान् वसिष्ठ ऋषिने ॥१८॥ राजा जनक और उनके पुरोहितसे कहा—भगवान् ब्रह्माका जन्म अज्ञात है । वे शाश्वत हैं, नित्य हैं और अविनाशी हैं ॥ १९ ॥ उनसे मरीचि उत्पन्न हुए और मरीचिसे कश्यप । कश्यपके पुत्र विवस्वान हुए और उनके पुत्र मनु हुए ॥ २० ॥ मनु प्रजापति थे, उनके पुत्र इक्ष्वाकु हुए । उन्होंने अयोध्या नगरी बसायी और वहाँके राजा हुए । वे अयोध्याके पहले राजा हुए ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षि और कुक्षिके विकुक्षि उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥ विकुक्षिके पुत्र बाण नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ वे बड़े तेजस्वी और प्रतापवान् हुए । बाणके पुत्र प्रतापी और तेजस्वी अनरण्य हुए ॥ २३ ॥ अनरण्यके पुत्र पृथु और पृथुके पुत्र त्रिशंकु हुए, और त्रिशंकुके पुत्र महायशस्वी धुन्धुकार हुए ॥ २४ ॥ धुन्धुकारसे महातेजस्वी, महारथ युवनाश्व उत्पन्न हुए । युवनाश्वके पुत्र राजा मान्धाता थे ॥ २५ ॥ मान्धाताके पुत्र सुसन्धि हुए । सुसन्धिके दो पुत्र हुए-ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् ॥ २६ ॥ यशस्वी ध्रुवसन्धिके भरत नामके पुत्र हुए और भरत से महातेजस्वी असित उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥ जिन असितके शत्रु, पड़ोसके हैहयवंशी, तालजंघवंशी और शशबिन्दुवंशी हुए ॥ २८ ॥ उन राजाओंसे युद्ध करते हुए,

असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान् । द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यो बभूवतुरिति श्रुतिः ॥३०॥
एका गर्भविनाशार्थं सपत्न्यै सगरं ददौ । ततः शैलवरे रम्ये बभूवाभिरतो मुनिः ॥३१॥
भार्गवश्च्यवनो नाम हिमवन्तमुपाश्रितः । तत्र चैका महाभागा भार्गवं देववर्चसम् ॥३२॥
ववन्दे पद्मपत्राक्षी काङ्क्षन्ती सुतमुत्तमम् । तमृषिंसाभ्युपागम्यकालिन्दीचाभ्यवादयत् ॥३३॥
स तामभ्यवदद्विप्रः पुत्रेप्सुं पुत्रजन्मनि । तव कुक्षौ महाभागे सुपुत्रः सुमहाबलः ॥३४॥
महावीर्यो महातेजा अचिरात्संजनिष्यति । गरेण सहितः श्रीमान्मा शुचः कमलेक्षणे ॥३५॥
च्यवनं च नमस्कृत्य राजपुत्री पतिव्रता । पत्या विरहिता तस्मात्पुत्रं देवी व्यजायत ॥३६॥
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया । सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत् ॥३७॥
सगरस्यासमञ्जस्तु असमञ्जादथांशुमान् । दिलीपोंऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः ॥३८॥
भगीरथात्ककुत्स्थश्च ककुत्स्थाच्च रघुस्तथा । रघोस्तु पुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धः पुरुषादकः ॥३९॥
कल्माषपादोऽप्यभवत्तस्माज्जातस्तु शङ्खणः । सुदर्शनः शङ्खणस्य अग्निवर्णःसुदर्शनात् ॥४०॥
शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्य शीघ्रगस्य मरुः सुतः । मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीषःप्रशुश्रुकात् ॥४१॥
अम्बरीषस्य पुत्रोऽभून्नहुषश्च महीपतिः । नहुषस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः ॥४२॥
नाभागस्य बभूवाज अजाद्दशरथोऽभवत् । अस्माद्दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥४३॥

असित नगरसे निकाल दिये गये और वे अपनी दो स्त्रियोंके साथ हिमवान पर्वतपर तपस्या करने चले गये ॥ २९ ॥ दुर्बल राजा असित स्वर्ग सिधारे। उनकी दोनो स्त्रियाँ गर्भवती थीं, ऐसा सुना जाता है ॥ ३० ॥ उनकी एक स्त्रीने अपनी सौतका गर्भ नष्ट करनेके लिए उसे गर (जहर) दिया। उसी सुन्दर पर्वतपर, एक मुनि निवास करते थे ॥ ३१ ॥ वे भार्गवके पुत्र च्यवन थे, वे हिमवानपर रहते थे। वह (जहर खानेवाली) देवतुल्य तेजस्वी महर्षि च्यवनके यहाँ गयी ॥ ३२ ॥ उत्तम पुत्रकी इच्छासे उस कालिन्दीने मुनिको प्रणाम किया ॥ ३३ ॥ उस पुत्र चाहनेवालीसे पुत्रके विषयमें मुनिने कहा—महाभागे ! तुम्हारे गर्भमें सुपुत्र है और वह बड़ा बली है ॥ ३४ ॥ वह महातेजस्वी महापराक्रमी शीघ्र ही गर (जहर) के साथ उत्पन्न होगा। वह बड़ा सुन्दर होगा। तुम शोक मत करो ॥ ३५ ॥ च्यवनको उस पतिव्रता राजपुत्रीने प्रणाम किया और उस पतिहीनाने पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३६ ॥ उसकी सौतने गर्भ नष्ट करनेके लिए जहर दिया था, पर जहरके साथ ही उसके पुत्र हुआ और उसका सगर नाम पड़ा ॥ ३७ ॥ सगरके पुत्र असमंज और असमंजके अंशुमान हुए। अंशुमानके पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए ॥ ३८ ॥ और भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ, और ककुत्स्थके रघु हुए, रघुका पुत्र बड़ा तेजस्वी और बड़ा उद्धत हुआ। वह मनुष्यका मांस खानेवाला हो गया ॥ ३९ ॥ उसका नाम कल्माषपाद था, उससे शंखण नामक पुत्र हुआ। शंखणके सुदर्शन, सुदर्शनके अग्निवर्ण हुए अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग और उनके पुत्र मरु हुए। मरुके पुत्र प्रशुश्रुक और उनके अम्बरीष हुए ॥ ४१ ॥ अम्बरीषके पुत्र राजा नहुष हुए और नहुषके ययाति तथा उनके पुत्र नाभाग हुए ॥ ४२ ॥ नाभागके पुत्र अज, अजके दशरथ उत्पन्न हुए। उन्हीं राजा दशरथके पुत्र, ये दोनों भाई राम और

आदिवंशविशुद्धानां राज्ञां परमधर्मिणाम्। इक्ष्वाकुकुलजातानां वीराणां सत्यवादिनाम् ॥४४॥
रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप। सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि ॥४५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ७१

एवं ब्रुवाणं जनकः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः। श्रोतुमर्हसि भद्रं ते कुलं नः परिकीर्तितम् ॥ १ ॥
प्रदाने हि मुनिश्रेष्ठ कुलं निरवशेषतः। वक्तव्यं कुलजातेन तन्निबोध महामते ॥ २ ॥
राजाभूत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः स्वेन कर्मणा। निमिः परमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतां वरः ॥ ३ ॥
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनको मिथिपुत्रकः। प्रथमो जनको राजा जनकादप्युदावसुः ॥ ४ ॥
उदावसोस्तु धर्मात्मा जातो वै नन्दिवर्धनः। नन्दिवर्धसुतः शूरः सुकेतुर्नाम नामतः ॥ ५ ॥
सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः। देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥ ६ ॥
बृहद्रथस्य शूरोऽभून्महावीरः प्रतापवान्। महावीरस्य धृतिमान्सुधृतिः सत्यविक्रमः ॥ ७ ॥
सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः सुधार्मिकः। धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्व इति विश्रुतः ॥ ८ ॥
हर्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतीन्धकः। प्रतीन्धकस्य धर्मात्मा राजा कीर्तिरथः सुतः ॥ ९ ॥

लक्ष्मण हैं ॥ ४३ ॥ यह राजवंश आदिसे ही विशुद्ध है, धर्मात्मा है, वीर है, सत्यवादी है और इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुआ है ॥ ४४ ॥ मैं राम-लक्ष्मणके लिए तुम्हारी दो कन्याएँ माँगता हूँ। ये योग्य हैं। इनको योग्य कन्याएँ दो ॥ ४५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सत्तरवां सर्ग समाप्त ॥ ७० ॥

ऐसा कहते हुए राजा जनकने हाथ जोड़कर वसिष्ठसे कहा—महाराज, मैं अपने कुलका परिचय देता हूँ, सुनिए ॥ १ ॥ कन्या-दानके सम्बन्धमें कुलीन मनुष्यको अपने कुलका आद्यन्त वर्णन करना चाहिए। आप मेरे कुलका वर्णन सुनें ॥ २ ॥ परम धर्मात्मा और सब वीरोंमें श्रेष्ठ वीर राजा निमि हुए और वे अपने पुण्यकर्मोंसे तीनोंलोकमें प्रसिद्ध हुए ॥ ३ ॥ उनके पुत्र मिथि हुए और मिथिके जनक। मेरे कुलमें यही पहले जनक हैं। जनकके उदावसु नामक पुत्र हुए ॥ ४ ॥ उदावसुके पुत्र धर्मात्मा नन्दि-वर्धन हुए। नन्दि-वर्धनके सुकेतु हुए और वे बड़े वीर हुए ॥ ५ ॥ सुकेतुके महाबली धर्मात्मा देवरात पुत्र उत्पन्न हुए और राजर्षि देवरातके बृहद्रथ नामके पुत्र हुए ॥ ६ ॥ बृहद्रथके महावीर नामक पुत्र उत्पन्न हुए, जो वीर और प्रतापी थे। महावीरके पुत्र सुधृति हुए, जो सत्यपराक्रमी और धीर थे ॥ ७ ॥ सुधृतिके भी धृष्टकेतु हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। राजर्षि धृष्टकेतुके हर्यश्व नामके पुत्र हुए ॥ ८ ॥ हर्यश्वके पुत्र मरु, मरुके

पुत्रः कीर्तिरथस्यापि देवमीढ इति स्मृतः । देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य महीध्रकः ॥१०॥
महीध्रकसुतो राजा कीर्तिरातो महाबलः । कीर्तिरातस्य राजर्षेर्महारोमा व्यजायत ॥११॥
महारोम्णस्तु धर्मात्मा स्वर्णरोमा व्यजायत । स्वर्णरोम्णस्तु राजर्षेर्ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥१२॥
तस्य पुत्रद्वयं राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः । ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः ॥१३॥
मां तु ज्येष्ठं पिता राज्ये सोऽभिषिच्य पिता मम । कुशध्वजं समावेश्य भारं मयि वनं गतः ॥१४॥
वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम् । भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात्पश्यन्कुशध्वजम् ॥१५॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य सांकाश्यादागतः पुरात् । सुधन्वा वीर्यवान्राजा मिथिलामवरोधकः ॥१६॥
स च मे प्रेषयामास शैवं धनुरनुत्तमम् । सीता च कन्या पद्माक्षी मह्यं वै दीयतामिति ॥१७॥
तस्याप्रदानान्महर्षे युद्धमासीन्मया सह । स हतो विमुखो राजा सुधन्वा तु मया रणे ॥१८॥
निहत्य तं मुनिश्रेष्ठ सुधन्वानं नराधिपम् । सांकाश्ये भ्रातरं शूरमभ्यषिञ्चं कुशध्वजम् ॥१९॥
कनीयानेष मे भ्राता अहं ज्येष्ठो महामुने । ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥२०॥
सीतां रामाय भद्रं ते ऊर्मिलां लक्ष्मणाय वै । वीर्यशुल्कां मम सुतां सीतां सुरसुतोपमाम् ॥२१॥
द्वितीयामूर्मिलां चैव त्रिर्वदामि न संशयः । ददामि परमप्रीतो वध्वौ ते मुनिपुंगव ॥२२॥
रामलक्ष्मणयो राजन्गोदानं कारयस्व ह । पितृकार्यं च भद्रं ते ततो वैवाहिकं कुरु ॥२३॥

प्रतीन्धक हुए। धर्मात्मा प्रतीन्धकके पुत्र कीर्तिरथ हुए ॥ ९ ॥ कीर्तिरथके पुत्र देवमीढ़ हुए। देवमीढ़के विबुध, विबुधके महीध्रक हुए ॥ १० ॥ महीध्रकके पुत्र राजा कीर्तिरात हुए, जो बड़े बलवान् थे। राजर्षि कीर्तिरातके पुत्र महारोमा हुए ॥ ११ ॥ महारोमाके पुत्र धर्मात्मा स्वर्णरोमा हुए, राजर्षि स्वर्णरोमाके पुत्र ह्रस्वरोमा उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ उन धर्मात्मा राजाके दो पुत्र हुए। जेठा मैं हूँ और छोटा मेरा भाई वीर कुशध्वज है ॥ १३ ॥ पिताने मुझ बड़ेको राज्य दिया और कुशध्वजका भार मेरे ऊपर देकर वे वनमें चले गये ॥ १४ ॥ पिताके स्वर्गगामी होनेपर धर्मपूर्वक मैंने राज्य चलाया, देवतुल्य अपने भाई कुशध्वजको स्नेहकी दृष्टिसे देखा ॥१५॥ कुछ दिन बीतने-पर, सांकाश्य नगरीका सुधन्वा नामका पराक्रमी राजा आया और उसने मिथिलाको घेर लिया ॥१६॥ उसने मुझसे कहवाया कि शिवका धनुष और सीता नामकी अपनी सुन्दरी कन्या मुझे दो ॥१७॥ महर्षे, मैंने उसकी मांग पूरी नहीं की। युद्ध हुआ और उस युद्धमें वह पराजित होकर मेरे द्वारा मारा गया ॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठ, राजा सुधन्वाको मारकर, मैंने सांकाश्य नगरीमें अपने वीर भाई कुश-ध्वजका राज्याभिषेक किया ॥१९॥ मैं बड़ा हूँ और ये मेरे छोटे भाई हैं। मैं प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्याएँ आपको देता हूँ ॥२०॥ मैं रामचन्द्रके लिए सीता नामकी कन्या देता हूँ और लक्ष्मणके लिए उर्मिला। मेरी कन्या सीता, देवकन्याओंके समान है और उसका शुल्क पराक्रम है। रामचन्द्र अपने पराक्रमसे उसके अधिकारी हो चुके हैं ॥२१॥ उस सीता और दूसरी उर्मिलाका दान देनेके लिये मैं तीन बार कहता हूँ (तीन बार कहना निश्चयके लिए है, अर्थात् अवश्य दूँगा)। मुनिश्रेष्ठ, मैं प्रसन्न होकर आपके लिए वधुएँ देता हूँ ॥ २२ ॥ राजन्, आप राम-लक्ष्मणसे गोदान कराइए (विवाहके पहले होनेवाला समावर्तन, इसमें मुण्डन कराया जाता है)। राजन्, पुनः नान्दीमुख श्राद्ध आदि कीजिए।

मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीयादिवसे प्रभो । फल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन्वैवाहिकं कुरु ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे दानं कार्यं सुखोदयम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ७२

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः । उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम् ॥ १ ॥
अचिन्त्यान्यप्रमेयाणि कुलानि नरपुंगव । इक्ष्वाकूणां विदेहानां नैषां तुल्योऽस्ति कश्चन ॥ २ ॥
सदृशो धर्मसंबन्धः सदृशो रूपसंपदा । रामलक्ष्मणयो राजन्सीता चोर्मिलया सह ॥ ३ ॥
वक्तव्यं च नरश्रेष्ठ श्रूयतां वचनं मम । भ्राता यवीयान्धर्मज्ञ एष राजा कुशध्वजः ॥ ४ ॥
अस्य धर्मात्मनो राजन्रूपेणाप्रतिमं भुवि । सुताद्वयं नरश्रेष्ठ पत्न्यर्थं वरयामहे ॥ ५ ॥
भरतस्य कुमारस्य शत्रुघ्नस्य च धीमतः । वरये ते सुते राजंस्तयोरर्थे महात्मनोः ॥ ६ ॥
पुत्रा दशरथस्येमे रूपयौवनशालिनः । लोकपालसमाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः ॥ ७ ॥
उभयोरपि राजेन्द्र संबन्धेनानुबध्यताम् । इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः ॥ ८ ॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा वसिष्ठस्य मते तदा । जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुंगवौ ॥ ९ ॥
कुलं धन्यमिदं मन्ये येषां तौ मुनिपुंगवौ । सदृशं कुलसंबन्धं यदाज्ञापयतः स्वयम् ॥ १० ॥

उसके बाद वैवाहिक कृत्य कीजिए ॥ २३ ॥ महाराज, आज मघा नक्षत्र है । आजके तीसरे दिन श्रेष्ठ फाल्गुनी नक्षत्रमें आप वैवाहिक कृत्य कीजिए । उस समय मैं राम-लक्ष्मण के लिए कन्या दान करूँगा, जो सुखकारी होगा ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका इकहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७१ ॥

अपने कुलका वर्णन करके राजा जनकके चुप होजानेपर, उन वीर राजासे, महामुनि वशिष्ठ और विश्वामित्र बोले ॥१॥ आपलोगोंके कुल बड़े ही श्रेष्ठ, बड़ेही पवित्र हैं । इक्ष्वाकु और विदेहकी तुलनामें दूसरे कुल नहीं हैं ॥२॥ सीता और उर्मिलाका राम और लक्ष्मणके साथ संबन्ध धर्मानुकूल है, और यह रूपमें भी समान हैं ॥ ३ ॥ राजन्, हमें एक और बात कहनी है, आप वह सुने । आपके छोटे भाई, धर्मात्मा राजा कुशध्वज हैं ॥४॥ इन धर्मात्माके भी अनुपम सुन्दरी दो कन्याएँ हैं । उनको हम पत्नी बनानेके लिए (भरत और शत्रुघ्नके लिए) माँगते हैं ॥ ५ ॥ राजन्, कुमार भरत और शत्रुघ्नके लिए हमलोग आपकी उन दोनों कन्याओंको माँगते हैं ॥ ६ ॥ ये सुन्दर और युवा पुत्र राजा दशरथके हैं । ये लोकपालोंके समान तेजस्वी और देवताओंके समान पराक्रमी हैं ॥७॥ इन दोनों (भरत और शत्रुघ्न) को भी आप कन्या-दान दें और इस प्रकार इक्ष्वाकुकुलको संबन्धमें बाँधलें । ऐसा करनेसे आप निश्चिन्त होजायँगे ॥ ८ ॥ महर्षि वशिष्ठकी सलाहसे कही हुई विश्वामित्रकी बातें सुनकर, हाथ जोड़कर जनक उन दोनों मुनियोंसे बोले ॥९॥ इस कुलको मैं धन्य समझता हूँ, क्योंकि आप दोनों मुनिश्रेष्ठ इसके लिए, कुलके योग्य उत्तम संबन्ध बता रहे हैं ॥१०॥

एवं भवतु भद्रं वः कुशध्वजसुते इमे। पत्न्यौ भजेतां सहितौ शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥११॥
एकाह्ना राजपुत्रीणां चतसृणां महामुने। पाणीन्गृह्णन्तु चत्वारो राजपुत्रा महाबलाः ॥१२॥
उत्तरे दिवसे ब्रह्मन्फल्गुनीभ्यां मनीषिणः। वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः ॥१३॥
एवमुक्त्वा वचः सौम्यं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः। उभौ मुनिवरौ राजा जनको वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥
परो धर्मः कृतो मह्यं शिष्योऽस्मि भवतोस्तथा। इमान्यासनमुख्यानि आस्यतां मुनिपुंगवौ ॥१५॥
यथा दशरथस्येयं तथायोध्या पुरी मम। प्रभुत्वे नास्ति संदेहो यथार्थं कर्तुमर्हथ ॥१६॥
तथा ब्रुवति वैदेहे जनके रघुनन्दनः। राजा दशरथो हृष्टः प्रत्युवाच महीपतिम् ॥१७॥
युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ। ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः ॥१८॥
स्वस्ति प्राप्नुहि भद्रं ते गमिष्यामः स्वमालयम्। श्राद्धकर्माणि विधिवद्विधास्य इति चाब्रवीत् ॥१९॥
तमापृष्ट्वा नरपतिं राजा दशरथस्तदा। मुनीन्द्रौ तौ पुरस्कृत्य जगामाशु महायशाः ॥२०॥
स गत्वा निलयं राजा श्राद्धं कृत्वा विधानतः। प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम् ॥२१॥
गवां शतसहस्रं च ब्राह्मणेभ्यो नराधिपः। एकैकशो ददौ राजा पुत्रानुद्दिश्य धर्मतः ॥२२॥
सुवर्णशृङ्ग्यः संपन्नाः सवत्साः कांस्यदोहनाः। गवां शतसहस्राणि चत्वारि पुरुषर्षभः ॥२३॥
वित्तमन्यच्च सुबहु द्विजेभ्यो रघुनन्दनः। ददौ गोदानमुद्दिश्य पुत्राणां पुत्रवत्सलः ॥२४॥

आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपलोगोंका कल्याण हो। कुशध्वजकी ये दोनों कन्याएँ, भरत और शत्रुघ्नको पतिरूपसे वरण करें ॥ ११ ॥ महामुनि, एक ही दिन इन चारो राजपुत्रियोंका, महाबली चारो राजपुत्र पाणि-ग्रहण करें ॥ १२ ॥ आजके दूसरे दिन, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है। उसके देवता भग नामक प्रजापति हैं। उस समयके विवाहकी प्रशंसा विद्वान् करते हैं ॥१३॥ इस प्रकार मनोहर वचन कहकर, हाथ जोड़कर खड़े हुए राजा जनकने दोनों मुनियोंसे ऐसा कहा ॥ १४ ॥ आपलोगोंने कन्याका विवाह निश्चित करके मेरे लिए बड़ा धर्म किया। मैं आप दोनों मुनियोंका शिष्य हूँ। इन उत्तम आसनोंपर आप दोनों बैठें ॥ १५ ॥ जैसे आपके लिए राजा दशरथकी अयोध्यापुरी है, वैसेही इसको भी समझें। इसपर आप लोगोंका पूरा अधिकार है। निःसंकोच होकर इच्छानुसार कार्य करें ॥ १६ ॥ राजा जनकके ऐसा कहनेपर रघुवंशी राजा दशरथने बड़ी प्रसन्नतासे उनसे कहा ॥१७॥ मिथिलेश्वर, आप दोनों भाइयोंके असंख्य गुण हैं। आपलोगोंने ऋषियों और राजाओंका उत्तम सत्कार किया ॥१८॥ आपका कल्याण हो, हमलोग अपने स्थानको जाते हैं। वहाँ हम विधिपूर्वक नान्दीमुख श्राद्ध आदि करेंगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार राजा जनकसे आज्ञा लेकर, वसिष्ठ और विश्वामित्रके साथ महायशस्वी राजा दशरथ शीघ्र अपने स्थानको आये ॥ २० ॥ राजा दशरथने अपने स्थानपर आकर विधिपूर्वक श्राद्ध किया और प्रातःकाल होनेपर गोदान (समावर्तन) संस्कार कराया ॥२१॥ उन्होंने अपने एक-एक पुत्रके लिए एक-एक लाख गौ ब्राह्मणोंको दी ॥ २२ ॥ उन गौओंकी सींग सोनेकी थी, वे बछड़ेवाली थीं भरी पुरी थीं। और काँसेके पात्रमें दुही जाती थीं। ऐसी चार लाख गौ राजा दशरथने ब्राह्मणोंको दी ॥ २३ ॥ पुत्रवत्सल राजाने पुत्रोंके गोदानके निमित्त और अधिक धन भी ब्राह्मणोंको दिया ॥ २४ ॥

स सुतैः कृतगोदानैर्वृतः सन्नृपतिस्तदा। लोकपालैरिवाभाति वृतः सौम्यः प्रजापतिः ॥२५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः ७३

यस्मिंस्तु दिवसे राजा चक्रे गोदानमुत्तमम्। तस्मिंस्तु दिवसे वीरो युधाजित्समुपेयिवान् ॥ १ ॥
पुत्रः केकयराजस्य साक्षाद्भरतमातुलः। दृष्ट्वा पृष्ट्वा च कुशलं राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥
केकयाधिपती राजा स्नेहात्कुशलमब्रवीत्। येषां कुशलकामोऽसि तेषां संप्रत्यनामयम् ॥ ३ ॥
स्वस्रीयं मम राजेन्द्र द्रष्टुकामो महीपतिः। तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यां रघुनन्दन ॥ ४ ॥
श्रुत्वा त्वहमयोध्यायां विवाहार्थं तवात्मजान्। मिथिलामुपयातांस्तु त्वया सह महीपते ॥ ५ ॥
त्वरयाभ्युपयातोऽहं द्रष्टुकामः स्वसुः सुतम्। अथ राजा दशरथः प्रियातिथिमुपस्थितम् ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा परमसत्कारैः पूजनार्हमपूजयत्। ततस्तामुषितो रात्रिं सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७ ॥
प्रभाते पुनरुत्थाय कृत्वा कर्माणि तत्त्ववित्। ऋषींस्तदा पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत् ॥ ८ ॥
युक्ते मुहूर्ते विजये सर्वाभरणभूषितैः। भ्रातृभिः सहितो रामः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ९ ॥
वसिष्ठं तु पुरस्कृत्वा महर्षीनपरानपि। वसिष्ठो भगवानेत्य वैदेहमिदमब्रवीत् ॥१०॥

गोदान-विधि संपन्न होनेपर चारो पुत्रोंके साथ, राजा दशरथ लोकपालोंसे घिरे हुए प्रजापति सोमके समान मालूम होते थे ॥ २५ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका बहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७२ ॥

जिस दिन राजा दशरथने, वहाँ रामचन्द्र आदिका-गोदान संस्कार कराया, उसी दिन वीर युधाजित् आये ॥ १ ॥ ये युधाजित् केकयराजके पुत्र थे और भरतके सगे मामा थे, उन्होंने राजा दशरथको देखा, उनकी कुशल पूछी, पुनः वे बोले ॥२॥ महाराज, केकयदेशके राजाने स्नेहपूर्वक आपको अपना कुशल-संवाद कहनेके लिए मुझे भेजा है। महाराज, आप जिन लोगोंकी कुशल चाहते हैं, वे सब (हमलोग) सकुशल हैं ॥३॥ हे रघुनन्दन, मेरे पिता मेरे भांजे (भरत) को देखना चाहते हैं, इसलिए (भरतको ले आनेके लिए) मैं अयोध्या गया था ॥ ४ ॥ अयोध्यामें आकर मैंने सुना कि पुत्रोंके विवाहके लिए, आप पुत्रोंके साथ मिथिला गये हुए हैं ॥ ५ ॥ मैं वहाँसे शीघ्रतापूर्वक अपने भांजेको देखनेके लिए यहाँ आया हूँ। राजा दशरथने आये हुए अपने प्रिय अतिथिको ॥ ६ ॥ देखकर, उत्तम सत्कारोंसे, सत्कारके योग्य उनका, सत्कार किया। राजा दशरथने अपने पुत्रों और महात्माओंके साथ वह रात बितायी ॥ ७ ॥ प्रातःकाल उठकर तथा अपने कृत्योंको समाप्तकर, ऋषियोंके साथ वे यज्ञ-मण्डपमें गये ॥८॥ विवाहके योग्य विजय मुहूर्तके आनेपर आभरण-भूषित भाइयोंके साथ राम वैवाहिक वेषमें ॥९॥ वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियोंके साथ आये।

राजा दशरथो राजन्कृतकौतुकमङ्गलैः। पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते ॥११॥
दातृप्रतिग्रहीतृभ्यां सर्वार्थाः संभवन्ति हि। स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व कृत्वा वैवाह्यमुत्तमम् ॥१२॥
इत्युक्तः परमोदारो वसिष्ठेन महात्मना। प्रत्युवाच महातेजा वाक्यं परमधर्मवित् ॥१३॥
कः स्थितः प्रतिहारो मे कस्याज्ञां संप्रतीक्षते। स्वगृहे को विचारोऽस्ति यथा राज्यमिदं तव ॥१४॥
कृतकौतुकसर्वस्वा वेदिमूलमुपागताः। मम कन्या मुनिश्रेष्ठ दीप्ता वह्नेरिवार्चिषः ॥१५॥
सद्योऽहंत्वत्प्रतीक्षोऽस्मि वेद्यामस्यां प्रतिष्ठितः। अविघ्नं क्रियतां सर्वं किमर्थं हि विलम्ब्यते ॥१६॥
तद्वाक्यं जनकेनोक्तं श्रुत्वा दशरथस्तदा। प्रवेशयामास सुतान्सर्वानृषिगणानपि ॥१७॥
ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत्। कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभिः सह धार्मिक ॥१८॥
रामस्य लोकरामस्य क्रियां वैवाहिकीं प्रभो। तथेत्युक्त्वा तु जनकं वसिष्ठो भगवानृषिः ॥१९॥
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य शतानन्दं च धार्मिकम्। प्रपामध्ये तु विधिवद्वेदिं कृत्वा महातपाः ॥२०॥
अलंचकार तां वेदिं गन्धपुष्पैः समन्ततः। सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुम्भैश्च साङ्कुरैः ॥२१॥
अङ्कुराढ्यैः शरावैश्च धूपपात्रैः सधूपकैः। शङ्खपात्रैः स्रुवैः स्रुग्भिः पात्रैरर्घ्यादिपूजितैः ॥२२॥
लाजपूर्णैश्च पात्रीभिरक्षतैरपि संस्कृतैः। दर्भैः समैः समास्तीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥२३॥
अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमन्त्रपुरस्कृतम्। जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो मुनिपुंगवः ॥२४॥

भगवान् वसिष्ठने आकर राजा जनकसे कहा ॥ १० ॥ राजन्, माङ्गलिक विधान, राम आदिका, सम्पन्न हुआ। राजा दशरथ पुत्रोंके साथ आये हैं और दाताकी प्रतीक्षा करते हैं ॥ ११ ॥ दाता और प्रतिगृहीताके द्वारा सब अर्थोंकी सिद्धि होती है, अतएव उत्तम विवाह करके अपना धर्म पूरा करें ॥ १२ ॥ परम उदार, परम धार्मिक और तेजस्वी राजा जनक वसिष्ठकी ये बातें सुनकर बोले ॥ १३ ॥ महाराज, मेरा कोई पहरेदार तो नहीं बैठा है, किसकी आज्ञा लेनी है, अपने घरमें क्या ऐसी बातोंका विचार किया जाता है, यह राज्य आपका ही है ॥१४॥ महाराज, वैवाहिक वेष धारण करके मेरी कन्याएँ वेदीके पास आयी हैं, ये अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त हो रही हैं ॥ १५ ॥ मैं स्वयं इस वेदीपर बैठकर आपकी प्रतीक्षा करता हूँ, निर्विघ्नतापूर्वक सब काम कीजिए, विलम्ब क्यों कर रहे हैं ? ॥ १६ ॥ जनककी बातें सुनकर, राजा दशरथने अपने चारो पुत्रों तथा ऋषियोंको भेजा ॥ १७ ॥ तब राजा जनकने वसिष्ठसे यह कहा—ऋषे, सब ऋषियोंके साथ आप ॥ १८ ॥ सर्वप्रिय रामचन्द्रके विवाहकी क्रिया सम्पन्न कराइए। जनकसे 'अच्छा' कहकर भगवान् ऋषि वसिष्ठने ॥ १९ ॥ धार्मिक विश्वामित्र और शतानन्दको साथ लेकर यज्ञ-मण्डपके मध्यमें विधिपूर्वक विवाहकी वेदी बनायी ॥२०॥ और गन्ध, पुष्प, सुवर्णपात्रिका चित्रित घड़ा तथा अबके पीले अंकुरोंसे उसे सजाया ॥ २१ ॥ अंकुर जमाये हुए सकोरे, धूपयुक्तधूपपात्र, शंख, स्रुवा, स्रुच् अर्घ्य आदिके उत्तम पात्र, ॥२२॥ लावासे भरे हुए उत्तम पात्र, उत्तम अक्षत आदिसे वेदीको अलङ्कृत किया। हरिद्रा आदिसे शोभित, समान कुश विधिपूर्वक मन्त्रोंसे उन्होंने वेदीपर बिछाये ॥२३॥ मन्त्र और विधानसे युक्त अग्निको उन्होंने उस वेदीपर स्थापना की और महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम् । समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा ॥२५॥
अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम् । इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव ॥२६॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना । पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ॥२७॥
इत्युक्त्वा प्राक्षिपद्राजा मन्त्रपूतं जलं तदा । साधु साध्विति देवानामृषीणां वदतां तदा ॥२८॥
देवदुन्दुभिनिर्घोषः पुष्पवर्षो महानभूत् । एवं दत्त्वा सुतां सीतां मन्त्रोदकपुरस्कृताम् ॥२९॥
अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुतः । लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतां मया ॥३०॥
प्रतीच्छ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत्कालस्य पर्ययः । तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत ॥३१॥
गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दन । शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीन्मिथिलेश्वरः ॥३२॥
श्रुतकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृह्णीष्व पाणिना । सर्वे भवन्तः सौम्याश्च सर्वे सुचरितव्रताः ॥३३॥
पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः। जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन्पाणिभिरस्पृशन् ॥३४॥
चत्वारस्ते चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः । अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च ॥३५॥
ऋषींश्चापि महात्मानः सहभार्या रघूद्वहाः । यथोक्तेन ततश्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम् ॥३६॥
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदन्तरिक्षात्सुभास्वरा । दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥३७॥

वसिष्ठ उस अग्निमें हवन करने लगे ॥ २४ ॥ तदनन्तर सब आभरणोंसे विभूषित करके सीता वहाँ लायी गयीं और अग्नि तथा रामचन्द्रके सामने खड़ी कर दी गयीं ॥ २५ ॥ कौशल्या-पुत्र रामचन्द्र से राजा जनक बोले-यह सीता मेरी कन्या है, और तुम्हारे साथ धर्माचरण करनेके लिए तुम्हें दी जाती है ॥ २६ ॥ इसका तुम ग्रहण करो । तुम्हारा कल्याण हो, इसका हाथ अपने हाथमें लो, यह पतिव्रता सौभाग्यवती और तुम्हारी छायाके समान होगी ॥ २७ ॥ इतना कह-कर राजा जनकने मन्त्रसे पवित्र जलको छोड़ दिया, उस समय देवता और ऋषि साधु-साधु कहने लगे ॥ २८ ॥ देवताओंके नगाड़े बजे और पुष्पोंकी वृष्टि हुई । इस प्रकार मन्त्र और जलके साथ अपनी कन्या सीताका दान करके, ॥ २९ ॥ हर्षसे सराबोर होकर राजा जनक बोले—लक्ष्मण, आओ, तुम्हारे लिए मैंने उर्मिलाका दान निश्चय किया है ॥ ३० ॥ अपनी समझकर इसका पाणि-ग्रहण करो, समय न बीतने पावे । लक्ष्मणसे ऐसा कहकर उन्होंने भरतसे भी कहा ॥ ३१ ॥ हे रघुनन्दन, तुम माण्डवीका पाणिग्रहण करो । धर्मात्मा मिथिलेश्वरने शत्रुघ्नसे भी कहा ॥ ३२ ॥ हे महाबाहो, तुम श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण करो । तुम सभी सुन्दर हो, सभी चरित्रवान् हो, सभी प्रतिज्ञा-पालन करनेवाले हो ॥ ३३ ॥ अतएव तुम सब लोग अपनी-अपनी स्त्रियोंको ग्रहण करो, विलम्ब न करो । जनकके ये वचन सुनकर उन लोगोंने अपनी-अपनी स्त्रीके हाथ अपने हाथसे छुए ॥३४॥ वसिष्ठकी आज्ञासे उन चारोंने अपनी-अपनी बहूके साथ अग्नि, वेदी और राजाकी प्रदक्षिणा की ॥३५॥ वसिष्ठकी आज्ञासे उनलोगोंने ऋषियों, महात्माओंकी भी प्रदक्षिणा की । तदनन्तर उनका विधिपूर्वक विवाह हुआ । विवाह सम्बन्धी होम हुए ॥३६॥ उस समय आकाशसे अत्यन्त सुन्दर पुष्प-वृष्टि हुई । गीत और बाजेके साथ देवताओंके नगाड़े भी बजे ॥३७॥

ननृतुश्चाप्सरःसङ्घा गन्धर्वाश्च जगुः कलम् । विवाहे रघुमुख्यानां तदद्भुतमदृश्यत ॥३८॥
ईदृशे वर्तमाने तु तूर्योद्घुष्टनिनादिते । त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः ॥३९॥
अथोपकार्यं जग्मुस्ते सभार्या रघुनन्दनाः । राजाप्यनुययौ पश्यन्सर्षिसङ्घः सबान्धवः ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः ७४

अथ रात्र्यां व्यतीतायां विश्वामित्रो महामुनिः । आपृष्ट्वा तौ च राजानौ जगामोत्तरपर्वतम् ॥ १ ॥
विश्वामित्रे गते राजा वैदेहं मिथिलाधिपम् । आपृष्ट्वैव जगामाशु राजा दशरथः पुरीम् ॥ २ ॥
अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु । गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ॥ ३ ॥
कम्बलानांच मुख्यानां क्षौमान्कोटयम्बराणिच । हस्त्यश्वरथपादातं दिव्यरूपं स्वलंकृतम् ॥ ४ ॥
ददौ कन्याशतं तासां दासीदासमनुत्तमम् । हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्तानां विद्रुमस्य च ॥ ५ ॥
ददौ राजा सुसंहृष्टः कन्याधनमनुत्तमम् । दत्त्वा बहुविधं राजा समनुज्ञाप्य पार्थिवम् ॥ ६ ॥
प्रविवेश स्वनिलयं मिथिलां मिथिलेश्वरः । राजाप्ययोध्याधिपतिः सह पुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७ ॥
ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्य जगाम स बलान्वितः । गच्छन्तं तु नरव्याघ्रं सर्षिसङ्घं सराघवम् ॥ ८ ॥

अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्व मनोहर गाने लगे । रामचन्द्र आदिके विवाहमें ये सब बहुत ही अद्भुत काम हुए ॥ ३८ ॥ इधर यह सब नाच, गान आदि हो रहे थे, उधर रामचन्द्र आदिने तीन बार अग्निकी प्रदक्षिणा करके, विवाह-कृत्य सम्पन्न किया ॥३९॥ वे चारों राजपुत्र अपनी स्त्रियोंके साथ खेमेमें गये, राजा दशरथ भी ऋषियों तथा बान्धवोंके साथ अपने पुत्रों और पुत्र-वधुओंको देखते हुए, उनके पीछे-पीछे गये ॥ ४० ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका तिहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७३ ॥

रातके बीतनेपर महामुनि विश्वामित्र, दशरथ और जनक दोनों राजाओंसे आज्ञा लेकर, उत्तर पर्वतको (अपने आश्रमको) गये ॥ १ ॥ विश्वामित्रके जानेपर राजा दशरथ भी, मिथिलाके राजा जनकसे आज्ञा लेकर, अपनी राजधानीके लिए चले ॥ २ ॥ मिथिलेश्वर राजा जनकने बहुत अधिक कन्या-धन (दायज) दिया, लाखों गायें उन्होंने दीं ॥ ३ ॥ उत्तम कम्बल, रेशमी वस्त्र तथा एक करोड़ साधारण वस्त्र उन्होंने कन्याधन में दिये । अलंकारयुक्त हाथी, घोड़े, पैदल भी दिये ॥ ४ ॥ अपनी कन्याओंके लिए, सौ कन्याएँ तथा दास-दासी, इनके अतिरिक्त सोना मोती, मूंगा भी दिये ॥ ५ ॥ राजा जनकने बड़े प्रसन्न होकर नाना प्रकारका कन्याधन देकर, राजा दशरथको विदा किया ॥ ६ ॥ राजा जनक अपनी नगरीमें चले आये । अयोध्याके राजा भी अपने श्रेष्ठ पुत्रोंके साथ ॥ ७ ॥ ऋषियोंको आगे करके चले । उनके पीछे उनकी सेना चली ।

घोरास्तु पक्षिणो वाचो व्याहरन्ति समन्ततः । भौमाश्चैव मृगाः सर्वे गच्छन्ति स्म प्रदक्षिणम् ॥९॥
तान्दृष्ट्वा राजशार्दूलो वसिष्ठं पर्यपृच्छत । असौम्याःपक्षिणोघोरामृगाश्चापिप्रदक्षिणाः ॥१०॥
किमिदं हृदयोत्कम्पि मनो मम विषीदति । राज्ञो दशरथस्यैतच्छ्रुत्वा वाक्यं महानृषिः ॥११॥
उवाच मधुरां वाणीं श्रूयतामस्य यत्फलम् । उपस्थितं भयं घोरं दिव्यं पक्षिमुखाच्च्युतम् ॥१२॥
मृगाः प्रशमयन्त्येते संतापस्त्यज्यतामयम् । तेषां संवदतां तत्र वायुः प्रादुर्बभूव ह ॥१३॥
कम्पयन्मेदिनीं सर्वां पातयंश्च महाद्रुमान् । तमसा संवृतः सूर्यः सर्वे नावेदिषुर्दिशः ॥१४॥
भस्मना चावृतं सर्वं संमूढमिव तद्बलम् । वसिष्ठ ऋषयश्चान्ये राजा च ससुतस्तदा ॥१५॥
ससंज्ञा इव तत्रासन्सर्वमन्यद्विचेतनम् । तस्मिंस्तमसि घोरे तु भस्मच्छन्नेव सा चमूः ॥१६॥
ददर्श भीमसंकाशं जटामण्डलधारिणम् । भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम् ॥१७॥
कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम् । ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः ॥१८॥
स्कन्धे चासज्ज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम् । प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ॥१९॥
तं दृष्ट्वा भीमसंकाशं ज्वलन्तमिव पावकम् । वसिष्ठप्रमुखा विप्रा जपहोमपरायणाः ॥२०॥
संगता मुनयः सर्वे संजजल्पुरथो मिथः । कच्चित्पितृवधामर्षी क्षत्रं नोत्सादयिष्यति ॥२१॥

ऋषियों और रामचन्द्रके साथ जाते हुए उन राजाके ॥ ८ ॥ चारों ओर भयानक बोलनेवाले पक्षी बोलने लगे, और मृग उनकी दाहिनी ओर जाने लगे (भयानक पक्षियोंका बोलना अशुभ है, और मृगोंका दाहिनी ओर जाना अच्छा है) ॥ ९ ॥ उनको देखकर राजाने वसिष्ठसे पूछा-यह क्या बात है, ये पक्षी घोर शब्द बोल रहे हैं और मृग दाहिनी ओर जा रहे हैं । (इस शुभ-अशुभ सूचनाका क्या अर्थ) ॥ १० ॥ यह हृदयको कँपानेवाली कौन बात है, मेरा मन दुःखी हो रहा है । राजा दशरथके ये वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठ ॥ ११ ॥ मधुर वाणीसे बोले । सुनिए इसका जो फल है । हम लोगोंपर सङ्कटका समय आया है, यह बात पक्षीमुखसे मालूम हुई है ॥ १२ ॥ मृग बतलाते हैं कि वह संकट टल जायगा । आप दुःख करना छोड़ें । वे ऐसी बातें कर ही रहे थे, कि बड़े जोरोंसे वायु चला ॥१३॥ उसने समूची पृथिवी कँपा दी, बड़े-बड़े पेड़ गिरा दिये, सूर्य अन्धकारसे छिप गये, दिशाएँ दिखायी नहीं पड़ने लगीं, ॥१४॥ चारों ओर धूलसे भरगया । दशरथकी सेना किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी । वसिष्ठ, अन्य ऋषि तथा पुत्रोंके साथ राजा ॥१५॥ ये ही उस भयानक अन्धकारमें होशमें थे, और सब बे होश होगये थे सेना धूलसे छिप गई ॥१६॥ दशरथने भयानक रूपधारी, जटाधारी, जमदग्निके पुत्र, राजाओंका नाश करनेवाले भार्गव को (परशुरामको) देखा ॥१७॥ बड़े भारी, कैलाशके समान प्रलयकालकी अग्निके समान, असह-नीय तेजोंसे ज्वलित उनको साधारण मनुष्य नहीं देख सकते थे ॥१८॥ उनके कन्धेपर परशु और धनुष था। धनुषका चिह्न बिजलीके समान था। शिवके समान शत्रुका संहार करनेवाले वे भयानक अस्त्र लिये हुए थे ॥१९॥ भयानक रूपवाले और अग्निके समान चलते हुए उनको देखकर, वसिष्ठ आदि जप, होम करनेवाले ब्राह्मण ॥२०॥ एकत्र होकर आपसमें बातचीत करने लगे, कि क्या पिता-

पूर्वं क्षत्रवधं कृत्वा गतमन्युर्गतज्वरः । क्षत्रस्योत्सादनं भूयो न खल्वस्य चिकीर्षितम् ॥२२॥
एवमुक्त्वार्घ्यमादाय भार्गवं भीमदर्शनम् । ऋषयो रामरामेति मधुरं वाक्यमब्रुवन् ॥२३॥
प्रतिगृह्य तु तां पूजामृषिदत्तां प्रतापवान् । रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ७५

राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम् । धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥ १ ॥
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदनं धनुषस्तथा । तच्छ्रुत्वाऽहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापरं शुभम् ॥ २ ॥
तदिदं घोरसंकाशं जामदग्न्यं महद्धनुः । पूरयस्व शरेणैव स्वबलं दर्शयस्व च ॥ ३ ॥
तदहं ते बलं दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे । द्वंद्वयुद्धं प्रदास्यामि वीर्यश्लाघ्यमहं तव ॥ ४ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा दशरथस्तदा । विषण्णवदनो दीनः प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥
क्षत्ररोषात्प्रशान्तस्त्वं ब्राह्मणश्च महातपाः । बालानां मम पुत्राणामभयं दातुमर्हसि ॥ ६ ॥
भार्गवाणां कुले जातःस्वाध्यायव्रतशालिनाम् । सहस्राक्षे प्रतिज्ञाय शस्त्रं प्रक्षिप्तवानसि ॥ ७ ॥
स त्वं धर्मपरो भूत्वा कश्यपाय वसुंधराम् । दत्त्वा वनमुपागम्य महेन्द्रकृतकेतनः ॥ ८ ॥

के वधसे क्रोधित ये पुनः क्षत्रियोंका संहार करेंगे ? ॥ २१ ॥ पहले क्षत्रियोंका वध करनेसे इनका क्रोध शान्त हो गया था, मानसिक खेद मिट गया था, पुनः क्षत्रियोंका संहार करनेके लिए ये उठ खड़े हुए हैं, ऐसा तो नहीं है ? ॥ २२ ॥ ऐसा विचार करके अर्घ्य लेकर, भयानक दिखायी पड़नेवाले परशुरामसे, ऋषियोंने, 'राम-राम' यह मधुर वचन कहा ॥ २३ ॥ ऋषियोंकी दी हुई, उस पूजाको ग्रहण करके प्रतापी परशुराम, दशरथके पुत्र रामसे, बोले ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका चौहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७४ ॥

दशरथ-पुत्र राम, तुम्हारा अद्भुत पराक्रम मैंने सुना है । शिव-धनुष तोड़नेका सब वृत्तान्त भी मैंने सुना ॥ १ ॥ उस धनुषका तोड़ना अद्भुत और अचिन्त्य है, यही सुनकर, तथा दूसरा उत्तम धनुष लेकर मैं आया हूँ ॥ २ ॥ अब तुम मेरे इस भयानक धनुषपर शर चढ़ाओ और अपना बल दिखाओ ॥ ३ ॥ इस धनुषके चढ़ानेपर मैं तुम्हारा बल देखूँगा, पुनः तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूंगा, क्योंकि मैं तुम्हारे बलकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ४ ॥ परशुरामके ये वचन सुनकर, राजा दशरथ बड़े दुःखी हुए और दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर बोले ॥ ५ ॥ आप क्षत्रियोंके वधसे हट गये थे । आप तपस्वी ब्राह्मण हैं, मेरे बालक पुत्रोंको अभय दान दीजिये ॥६॥ वेदाध्ययन तथा व्रत करनेवाले भार्गवोंके कुलमें आपका जन्म हुआ है । इन्द्रके सामने अपने अस्त्रका त्याग किया है ॥ ७ ॥ धर्मपरायण होकर, कश्यपको पृथिवीका दान करके आप वनमें चले

मम सर्वविनाशाय संप्राप्तस्त्वं महामुने । न चैकस्मिन्हते रामे सर्वे जीवामहे वयम् ॥ ९ ॥
ब्रुवत्येवं दशरथे जामदग्न्यः प्रतापवान् । अनादृत्य तु तद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥१०॥
इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे दिव्ये लोकाभिपूजिते । दृढे बलवती मुख्ये सुकृते विश्वकर्मणा ॥११॥
अनुसृष्टं सुरैरेकं त्र्यम्बकाय युयुत्सवे । त्रिपुरघ्नं नरश्रेष्ठ भग्नं काकुत्स्थ यत्त्वया ॥१२॥
इदं द्वितीयं दुर्धर्षं विष्णोर्दत्तं सुरोत्तमैः । तदिदं वैष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् ॥१३॥
समानसारं काकुत्स्थ रौद्रेण धनुषा त्विदम् । तदा तु देवताः सर्वाः पृच्छन्ति स्म पितामहम् ॥१४॥
शितिकण्ठस्य विष्णोश्च बलाबलनिरीक्षया । अभिप्रायं तु विज्ञाय देवतानां पितामहः ॥१५॥
विरोधं जनयामास तयोः सत्यवतां वरः । विरोधे तु महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥१६॥
शितिकंठस्य विष्णोश्च परस्परजयैषिणोः । तदा तु जृम्भितं शैवं धनुर्भीमपराक्रमम् ॥१७॥
हुंकारेण महादेवः स्तम्भितोऽथ त्रिलोचनः । देवैस्तदा समागम्य सर्षिसङ्घैः सचारणैः ॥१८॥
याचितौ प्रशमं तत्र जग्मतुस्तौ सुरोत्तमौ । जृम्भितं तद्धनुर्दृष्ट्वा शैवं विष्णुपराक्रमैः ॥१९॥
अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा । धनू रुद्रस्तु संक्रुद्धो विदेहेषु महायशाः ॥२०॥
देवरातस्य राजर्षेर्ददौ हस्ते ससायकम् । इदं च वैष्णवं राम धनुः परपुरंजयम् ॥२१॥
ऋचीके भार्गवे प्रादाद्विष्णुः संन्यासमुत्तमम् । ऋचीकस्तु महातेजाः पुत्रस्याप्रतिकर्मणः ॥२२॥

गये थे और महेन्द्र पर्वतपर रहने लगे थे ॥ ८ ॥ महामुने, अब आप मेरा सर्वनाश करनेके लिए आये हुए हैं, क्योंकि एक रामचन्द्रके मारे जानेपर, हम कोई भी जी नहीं सकते ॥ ९ ॥ राजा दशरथने ऐसा कहा, पर प्रतापी परशुरामने उनकी बातोंकी ओर ध्यान न दिया वे रामचन्द्रसे बोले ॥१०॥ दो धनुष थे, वे बड़े ही उत्तम थे, अलौकिक थे, पूजित थे, बड़े दृढ़ और बलवान थे, विश्वकर्माने उन्हें बड़े परिश्रमसे बनाया था ॥ ११ ॥ उनमेंसे एक धनुष, युद्धार्थी महादेवको, देवताओंने दिया था। काकुत्स्थ, जिस धनुषको तुमने तोड़ा है, उसीसे महादेवने त्रिपुरका नाश किया था ॥१२॥ यह दूसरा धनुष है, इसे भी दूसरे नवा नहीं सकते । देवताओंने इसे विष्णुको दिया था। रामचन्द्र, शत्रुओंका विनाश करनेवाला यह वैष्णव धनुष है ॥ १३ ॥ रामचन्द्र, यह धनुष शिवके धनुषके समान बलवान है । उस समय देवताओंने ब्रह्मासे पूछा था कि ॥ १४ ॥ विष्णु और शिव इन दोनोंमें कौन बलवान और दुर्बल है । देवताओंका अभिप्राय समझकर, ॥ १५ ॥ सत्यवादियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माने, दोनोंमें विरोध उत्पन्न कर दिया । उस विरोधमें रोंगटे खड़े करनेवाला युद्ध हुआ ॥१६॥ परस्पर जीतनेकी इच्छा रखनेवाले महादेव और विष्णुका युद्ध हुआ । उस समय शिवका महापराक्रमी धनुष ढीला पड़ गया था ॥१७॥ विष्णुके हुंकारसे उस समय त्रिलोचन महादेव स्तम्भित हो गये। वहाँ देवताओंने चारणों और ऋषियोंके साथ आकर ॥१८॥ उन दोनोंसे शान्त होनेकी प्रार्थना की और वे अपने-अपने स्थानको चलेगये । शिवके धनुषको ढीला देखकर, विष्णुके बलको ॥१९॥ देवताओं और ऋषियोंने अधिक समझा था, इससे क्रुद्ध होकर महादेवने अपना धनुष मिथिलामें, राजर्षि देवरातके हाथमें बाणके साथ दे दिया । रामचन्द्र, यह शत्रुओंका संहार करनेवाला वैष्णव धनुष है॥२१॥ विष्णुने भृगुवंशी ऋचीकको, इसे धरोहरमें दिया था। महातेजा ऋचीकने अपने

पितुर्मम ददौ दिव्यं जमदग्नेर्महात्मनः । न्यस्तशस्त्रे पितरि मे तपोबलसमन्विते ॥२३॥
अर्जुनो विदधे मृत्युं प्राकृतां बुद्धिमास्थितः । वधमप्रतिरूपं तु पितुः श्रुत्वा सुदारुणम् ।
क्षत्रमुत्सादयं रोषाज्जातं जातमनेकशः ॥२४॥
पृथिवीं चाखिलां प्राप्य कश्यपाय महात्मने । यज्ञस्यान्तेऽददं राम दक्षिणां पुण्यकर्मणे ॥२५॥
दत्त्वा महेन्द्रनिलयस्तपोबलसमन्वितः । श्रुत्वा तु धनुषो भेदं ततोऽहं द्रुतमागतः ॥२६॥
तदेवं वैष्णवं राम पितृपैतामहं महत् । क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गृह्णीष्व धनुरुत्तमम् ॥२७॥
योजयस्व धनुःश्रेष्ठे शरं परपुरंजयम् । यदि शक्तोऽसि काकुत्स्थ द्वन्द्वं दास्यामि ते ततः॥२८॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ७६

श्रुत्वा तु जामदग्न्यस्य वाक्यं दाशरथिस्तदा । गौरवाद्यन्त्रितकथः पितू राममथाब्रवीत् ॥ १ ॥
श्रुतवानस्मि यत्कर्म कृतवानसि भार्गव । अनुरुध्यामहे ब्रह्मन्पितुरानृण्यमास्थितः ॥ २ ॥
वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव । अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ ३ ॥
इत्युक्त्वा राघवः क्रुद्धो भार्गवस्य वरायुधम् । शरं च प्रतिजग्राह हस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ४ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले पुत्र ॥२२॥ और मेरे पिता महात्मा जमदग्निको वह दिव्य धनुष दिया । जब मेरे पिता शस्त्र छोड़कर तपस्यामें लग गये थे, ॥ २३ ॥ कार्तवीर्य अर्जुनने, साधारण मनुष्योंके समान विचारसे, मेरे पिताको मार डाला । वह अद्भुत और भयानक वध सुनकर, क्रोधसे मैंने कई बार क्षत्रकुलका नाश किया ॥ २४ ॥ समस्त पृथिवीपर अधिकार कर, मैंने उसे पुण्यकर्मा महात्मा कश्यपको, यज्ञके अन्तमें, दक्षिणा दे दी ॥ २५ ॥ पृथिवी दान कर, मैं महेन्द्र पर्वतपर चला गया और वहाँ तपस्या करने लगा । आज शिव-धनुषका तोड़ा जाना सुनकर, शीघ्रतापूर्वक मैं यहाँ आया हूँ ॥ २६ ॥ अतः हे राम महान् क्षत्रिय-धर्मको सामने रखकर पिता-पितामहसे चला आया हुआ, तुम यह उत्तम वैष्णव धनुष ग्रहण करो ॥ २७ ॥ इसपर बाण चढ़ाओ । यदि तुम समर्थ हुए, तो मैं तुमसे युद्ध करूँगा ॥ २८ ॥

आदिकाव्य वाल्मीय रामायणके बालकाण्डका पचहत्तरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७५ ॥

दाशरथी (दशरथके पुत्र) रामने परशुरामकी बातें सुनी । पितामें गौरव होनेके कारण, रामचन्द्रका मुँह बन्द था । फिर भी वे परशुरामसे बोले ॥ १ ॥ पितृ-वधका बदला चुकानेके लिए आपने जो काम किये हैं, वे मैंने सुने हैं । मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ ॥ २ ॥ भार्गव, क्षत्रधर्मसे हीन और दुर्बल समझकर, तुम मेरा अपमान करते हो । आज तुम मेरा तेज और पराक्रम देखो ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक रामचन्द्रने जामदग्न्यका धनुष और बाण बड़ी शीघ्रतासे ले

आरोप्य स धनू रामः शरं सज्यं चकार ह । जामदग्न्यं ततो रामं रामः क्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥
ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च । तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥ ६ ॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमार्जितान् । लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥ ७ ॥
न ह्ययं वैष्णवो दिव्यः शरः परपुरंजयः । मोघः पतति वीर्येण बलदर्पविनाशनः ॥ ८ ॥
वरायुधधरं रामं द्रष्टुं सर्षिगणाः सुराः । पितामहं पुरस्कृत्य समेतास्तत्र सर्वशः ॥ ९ ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव सिद्धचारणकिंनराः । यक्षराक्षसनागाश्च तद्द्रष्टुं महदद्भुतम् ॥१०॥
जडीकृते तदा लोके रामे वरधनुर्धरे । निर्वीर्यो जामदग्न्योऽसौ रामो राममुदैक्षत ॥११॥
तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्यो जडीकृतः । रामं कमलपत्राक्षं मन्दमन्दमुवाच ह ॥१२॥
काश्यपाय मया दत्ता यदा पूर्वं वसुंधरा । विषये मे न वस्तव्यमिति मां काश्यपोऽब्रवीत् ॥१३॥
सोऽहं गुरुवचः कुर्वन्पृथिव्यां न वसे निशाम् । तदाप्रभृति काकुत्स्थ कृता मे काश्यपस्य ह ॥१४॥
तामिमां मद्गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव । मनोजवं गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥१५॥
लोकास्त्वप्रतिमा राम निर्जितास्तपसा मया । जहि ताञ्छरमुख्येन मा भूत्कालस्य पर्ययः ॥१६॥
अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् । धनुषोऽस्य परामर्शात्स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥१७॥

लिया ॥४॥ रामचन्द्र धनुष चढ़ाकर तथा उसपर बाण चढ़ाकर, क्रोधपूर्वक परशुरामसे बोले ॥५॥ आप ब्राह्मण हैं, इसलिये मेरे पूज्य हैं। विश्वामित्रके भी सम्बन्धी (भांजे) हैं, इस कारण, परशुराम, आपके प्राण लेनेके लिए यह बाण मैं न छोड़ूँगा ॥ ६ ॥ मैं इस बाणसे आपकी गति (चलनेकी शक्ति) या तपस्यासे प्राप्त उत्तम लोकका विनाश करूँ, यह मेरा निश्चय है। कहिए, आप क्या कहते हैं ? ॥ ७ ॥ क्योंकि यह विष्णुका शत्रु-संहारकारी अलौकिक बाण है। यह अपने पराक्रम-से बल और अहंकारका नाश करता है। यह व्यर्थ नहीं जाता ॥ ८ ॥ उत्तम अस्त्र धारण किये हुए, रामचन्द्रको देखनेके लिए ऋषियों और देवताओंके साथ ब्रह्मा वहाँ आये ॥ ९ ॥ उस अद्भुत दृश्यको देखनेके लिए गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध, किन्नर, यक्ष, राक्षस, नाग आदि भी आये ॥ १० ॥ रामचन्द्रने जब वह वैष्णव धनुष धारण किया, तब परशुराम हक्के-बक्के रह गये। उनका तेज रामचन्द्रको प्राप्त हो गया। परशुराम पराक्रम-हीन हो गये। उन्होंने रामचन्द्रकी ओर देखा ॥११॥ तेजके निकल जानेसे परशुराम दुर्बल हो गये थे। वे जड़के समान हो गये थे। वे कमल-नयन रामचन्द्रसे धीरे-धीरे बोले ॥ १२ ॥ जब मैंने कश्यपको यह पृथिवी दान दी, तब उन्होंने मुझसे कहा कि मेरे राज्यमें तुम न रहना ॥ १३ ॥ अतएव मैं उस वचनका पालन करता हुआ, उस समयसे, रात्रिमें पृथिवीपर निवास नहीं करता हूँ। क्योंकि मैंने कश्यपसे ऐसी प्रतिज्ञा की है ॥ १४ ॥ अतएव, हे वीर, तुम मेरी गति (चलनेकी शक्ति) का नाश मत करो। मनके वेगसे शीघ्रतापूर्वक मुझे उत्तम महेन्द्र पर्वतपर जाना है ॥१५॥ मैंने अपनी तपस्याके बलसे बड़े उत्तम-उत्तम लोक जीते हैं। रामचन्द्र, उन्हीं लोकोंका नाश तुम इस बाणसे करो। विलंब न करो ॥ १६ ॥ इस धनुषके ग्रहणसे मैं जान गया हूँ, कि तुम देवताओंके स्वामी, अविनाशी मधुसूदन हो। हे परंतप,

एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः । त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१८॥
न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति । त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः ॥१९॥
शरमप्रतिमं राम मोक्तुमर्हसि सुव्रत । शरमोक्षे गमिष्यामि महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥२०॥
तथा ब्रुवति रामे तु जामदग्न्ये प्रतापवान् । रामो दाशरथिः श्रीमांश्चिक्षेप शरमुत्तमम् ॥२१॥
स हतान्दृश्य रामेण स्वाँल्लोकांस्तपसार्जितान् । जामदग्न्यो जगामाशु महेन्द्रं पर्वतोत्तमम् ॥२२॥
ततो वितिमिराः सर्वा दिशश्चोपदिशस्तथा । सुराः सर्षिगणा रामं प्रशशंसुरुदायुधम् ॥२३॥
रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥२४॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ७७

गते रामे प्रशान्तात्मा रामो दाशरथिर्धनुः । वरुणायाप्रमेयाय ददौ हस्ते महायशाः ॥ १ ॥
अभिवाद्य ततो रामो वसिष्ठप्रमुखानृषीन् । पितरं विकलं दृष्ट्वा प्रोवाच रघुनन्दनः ॥ २ ॥
जामदग्न्यो गतो रामः प्रयातु चतुरङ्गिणी । अयोध्याभिमुखी सेना त्वया नाथेन पालिता ॥ ३ ॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः सुतम् । बाहुभ्यां संपरिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय राघवम् ॥ ४ ॥
गतो राम इति श्रुत्वा हृष्टः प्रमुदितो नृपः । पुनर्जातं तदा मेने पुत्रमात्मानमेव च ॥ ५ ॥

तुम्हारा कल्याणहो ॥१७॥ युद्धमें, सामना न रखनेवाले और अद्भुत कर्म करनेवाले, तुमको ये देवगण यहाँ आकर देख रहे हैं ॥ १८ ॥ त्रिलोकके स्वामी, तुमने जो मुझे परास्त किया है, उससे हे रामचन्द्र, तुम्हें लज्जित नहीं होना चाहिए ॥ १९ ॥ हे प्रतिज्ञापालक रामचन्द्र, अब तुम इस बाणको छोड़ो । तुम्हारे बाण छोड़नेपर ही मैं महेन्द्र पर्वतपर जाऊँगा ॥ २० ॥ जामदग्न्य परशुरामके वैसा कहनेपर, प्रतापी दशरथके पुत्र श्रीमान रामने वह उत्तम अस्त्र छोड़ा ॥ २१ ॥ परशुराम अपनी तपस्याके द्वारा पाये हुए लोकोंका, रामचन्द्रके द्वारा विनाश देखनेके पश्चात्, शीघ्रतापूर्वक महेन्द्र पर्वतपर चलेगये ॥ २२ ॥ दिशा-विदिशाएँ साफ होगयीं और ऋषि तथा देवता शस्त्रधारी रामकी प्रशंसा करने लगे ॥ २३ ॥ महेन्द्र पर्वतपर जानेके पहले, परशुरामने, रामचन्द्रकी पूजा और प्रदक्षिणा की । पुनः वे अपने वेगसे चले गये ॥ २४ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका छिहत्तरहवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७६ ॥

परशुरामके चलेजानेपर रामचन्द्रका क्रोध शान्त हुआ और अपने हाथका धनुष उन्होंने श्रेष्ठ वरुणको दिया ॥ १ ॥ वसिष्ठ आदि ऋषियोंको प्रणाम करके, रामचन्द्रने अपने पिताको व्याकुल देखा और वे बोले ॥ २ ॥ जमदग्निके पुत्र परशुराम चले गये, अब आपके द्वारा पालित यह चतुरंगिणी सेना अयोध्याकी ओर चले ॥ ३ ॥ रामके वचन सुनकर, राजा दशरथने उन्हें अपनी भुजाओंसे आलिङ्गन किया और उनका मस्तक सूँघा ॥ ४ ॥ परशुराम चलेगये, यह सुनकर राजा

चोदयामास तां सेनां जगामाशु ततः पुरीम् । पताकाध्वजिनीं रम्यां तूर्योद्घुष्टनिनादिताम् ॥ ६ ॥
सिक्तराजपथां रम्यां प्रकीर्णकुसुमोत्कराम् । राजप्रवेशसुमुखैः पौरैर्मङ्गलपाणिभिः ॥ ७ ॥
संपूर्णां प्राविशद्राजा जनौघैः समलंकृताम् । पौरैः प्रत्युद्गतो दूरं द्विजैश्च पुरवासिभिः ॥ ८ ॥
पुत्रैरनुगतः श्रीमाञ्छ्रीमद्भिश्च महायशाः । प्रविवेश गृहं राजा हिमवत्सदृशं प्रियम् ॥ ९ ॥
ननन्द स्वजनै राजा गृहे कामैः सुपूजितः । कौसल्या च सुमित्रा च कैकयी च सुमध्यमा ॥१०॥
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः । ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम् ॥११॥
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः । मङ्गलालापनैर्होमैः शोभिताः क्षौमवाससः ॥१२॥
देवतायतनान्याशु सर्वास्ताः प्रत्यपूजयन् । अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा ॥१३॥
रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृभिर्मुदिता रहः । कृतदाराः कृतास्त्राश्च सधनाः ससुहृज्जनाः ॥१४॥
शुश्रूषमाणाः पितरं वर्तयन्ति नरर्षभाः । कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा दशरथः सुतम् ॥१५॥
भरतं कैकयीपुत्रमब्रवीद्रघुनन्दनः । अयं केकयराजस्य पुत्रो वसति पुत्रक ॥१६॥
त्वां नेतुमागतो वीरो युधाजिन्मातुलस्तव । श्रुत्वा दशरथस्यैतद्भरतः कैकयीसुतः ॥१७॥
गमनायाभिचक्राम शत्रुघ्नसहितस्तदा । आपृच्छ्य पितरं शूरो रामं चाक्लिष्टकारिणम् ॥१८॥
मातॄश्चापि नरश्रेष्ठः शत्रुघ्नसहितो ययौ । युधाजित्प्राप्य भरतं सशत्रुघ्नं प्रहर्षितः ॥१९॥

दशरथ बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने पुत्रोंका तथा अपना, नया जन्म हुआ समझा ॥ ५ ॥ उन्होंने सेनाको चलनेकी आज्ञा दी और स्वयं अयोध्याकी ओर चले । पताका और ध्वजासे शोभित, रमणीय अयोध्यामें तरह-तरहके बाजे बज रहे थे ॥ ६ ॥ सड़कें सींची गयी थीं । इसलिए वे और भी रमणीय मालूम होती थीं । चारों तरफ फूल फैले हुए थे । राजा आनेवाले हैं, इसलिए नगरनिवासी हाथोंमें मंगल वस्तु लेकर खड़े थे ॥७॥ इस प्रकार जन-समूहसे सुशोभित अयोध्यामें राजाने प्रवेश किया । नगरवासी तथा नगरमें रहनेवाले ब्राह्मणोंने दूरतक आकर, राजाका स्वागत किया ॥ ८ ॥ श्रीमान् यशस्वी दशरथने अपने पुत्रोंके साथ हिमवानके समान सुन्दर और प्रिय गृहमें प्रवेश किया ॥६॥ राजाके मनोरथ पूरे हो गये । अपने बांधवोंके साथ वे अत्यन्त प्रसन्न हुए । कौसल्या, सुमित्रा, कैकयी ॥१०॥ तथा राजाकी अन्य स्त्रियोंने बहुओंको उतारा । तदनन्तर महाभागा सीता, यशस्विनी उर्मिला ॥ ११ ॥ तथा कुशध्वजकी दो कन्याओंको महारानियोंने उतारा । रेशमी वस्त्र पहने हुई उन महारानियोंने होम और मांगलिक वचनोंके द्वारा उनका सत्कार किया ॥१२॥ उन राज-कन्याओंने सब देवस्थानोंकी शीघ्रतापूर्वक पूजा की तथा पूजनीयोंको प्रणाम किया ॥१३॥ वे सब राज-कुमारियाँ अपने-अपने पतिके साथ प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगीं । विवाह होनेके बाद अस्त्र-निपुण, धनवान् वे राजकुमार भी बान्धवोंके साथ प्रसन्तापूर्वक रहने लगे ॥१४॥ वे नरश्रेष्ठ अपने पिताकी सेवा करतेहुए, आनन्दपूर्वक निवास करने लगे । कुछ समय बीतनेके पश्चात् राजा दशरथने ॥१५॥ कैकयी के पुत्र भरतसे कहा-वत्स, ये केकयराजके पुत्र ठहरे हुए हैं ॥ १६ ॥ ये तुम्हारे मामा युधाजित् तुम्हें लेनेके लिए आये हैं । दशरथकी यह बात सुनकर कैकयी-पुत्र भरत ॥ १७ ॥ शत्रुघ्नके साथ जानेके लिए तैयार हुए ।। उन्होंने पितासे आज्ञा ली तथा पुण्यात्मा रामचन्द्रसे भी पूछा ॥ १८ ॥ माताओंसे

स्वपुरं प्राविशद्वीरः पिता तस्य तुतोष ह । गते च भरते रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥२०॥
पितरं देवसंकाशं पूजयामासतुस्तदा । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य पौरकार्याणि सर्वशः ॥२१॥
चकार रामः सर्वाणि प्रियाणि च हितानि च । मातृभ्यो मातृकार्याणि कृत्वा परमयन्त्रितः ॥२२॥
गुरूणां गुरुकार्याणि काले कालेऽन्ववैक्षत । एवं दशरथः प्रीतो ब्राह्मणा नैगमास्तथा ॥२३॥
रामस्य शीलवृत्तेन सर्वे विषयवासिनः । तेषामतियशा लोके रामः सत्यपराक्रमः ॥२४॥
स्वयंभूरिव भूतानां बभूव गुणवत्तरः । रामश्च सीतया सार्धं विजहार बहूनृतून् ॥२५॥
मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः । प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति ॥२६॥
गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते । तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते ॥२७॥
अन्तर्गतमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा । तस्य भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा ।
देवताभिः समा रूपे सीता श्रीरिव रूपिणी ॥ २८ ॥
तया स राजर्षिसुतोऽभिकामया समेयिवानुत्तमराजकन्यया ।
अतीव रामः शुशुभे मुदान्वितो विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः ॥२९॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये बालकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

भी विद्यालंकार वे शत्रुघ्नके साथ युधाजित्के पास गये । भरत और शत्रुघ्नको देखकर युधाजित् प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥ वीर युधाजित् अपने नगरमें गये । उनके आनेसे उनके पिता प्रसन्न हुए । भरतके चले जानेपर, महाबली राम और लक्ष्मण ॥ २० ॥ देव-तुल्य पिताकी सेवा करने लगे । पिताकी आज्ञासे वे नगरके सब काम भी देखने लगे ॥ २१ ॥ रामचन्द्र सबके प्रिय और हितकर काम करने लगे । माताओंके भी हितकर कार्य उन दोनों भाइयोंने किये; पर उन्हें अहङ्कार छू तक न गया ॥२२॥ रामचन्द्र समय-समयपर गुरुओंके (अपने बड़ोंके) बड़े-बड़े कामोंपर ध्यान दिया करते थे, इससे राजा दशरथ बड़े प्रसन्न थे । ब्राह्मण और वनिये भी प्रसन्न थे ॥२३॥ रामचन्द्रके शील और चरित्रसे सभी राज्यवासी प्रसन्न हुए । इस प्रकार सत्यपराक्रमी रामचन्द्रका यश चारो ओर फैल गया ॥२४॥ रामचन्द्र स्वयंभूके समान प्राणियोंमें अधिक गुणवान् हुए । उन्होंने सीताके साथ अनेक ऋतुओंमें विहार किया ॥२५॥ मनस्वी रामचन्द्र सीतासे बहुत प्रेम करते थे । उन्होंने अपना हृदय उनको दे दिया था । रामचन्द्रको सीता इसलिए बड़ी प्यारी थीं, कि पिताने उनको स्त्री-रूपमें दिया था ॥२६॥ सीताके रूप और गुणके कारण रामचन्द्रका प्रेम उनपर दिनोंदिन बढ़ रहा था और इससे दुगुने प्रेमके साथ, सीताने पतिको अपने हृदयमें धारण किया था ॥ २७ ॥ भीतरकी बातोंको भी हृदय हृदयसे साफ-साफ बतलाने लगा, जनक-पुत्री मैथिली देवताओंके समान सुन्दरी, लक्ष्मी-रूपधारिणी सीता, रामचन्द्रको बहुत प्यारी थीं ॥२८॥ अनेक मनोरथोंको रखनेवाली श्रेष्ठ राज-कन्या सीतासे मिलकर रामचन्द्र प्रसन्न हुए, वे बहुत ही सुन्दर मालूम हुए । जिस प्रकार अमरेश्वर विष्णु लक्ष्मीके साथ मिलकर शोभित होते हैं ॥ २९ ॥

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्डका सतहत्तरवाँ सर्ग समाप्त ॥ ७७ ॥

बालकाण्ड समाप्त

मूर्खराज और चतुरसिंह

[प्रस्तावना लेखक—विश्वंभरनाथ शर्म्मा कौशिक]

इसीसे पुस्तककी उपयोगिता आप समझ सकते हैं ! यह बालकोपयोगी अत्युत्तम पुस्तक है। इसे आप बच्चोंके हाथमें बेखटके दे सकते हैं। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते बच्चे हँसते-हँसते लोटपोट हो जायँगे। हास्यके साथ शिक्षाका इतना अच्छा सामंजस्य किसी अन्य पुस्तकमें शायद ही आपको मिले। संगमें चतुरसिंह मुफ्त लीजिए। विधाताका विधान इसे कहते हैं। मूर्खराजका पुत्र कितना चतुर है यह इस पुस्तकके पढ़नेसे ही पता लगेगा। पृष्ठ-संख्या २१० । मूल्य ।≈)।।

स्वर्गका खजाना

(मूल लेखक—स्वर्गीय अमृतलाल सुन्दरजी पढ़ियार)

सचमुच ही पुस्तक बड़ी सरल और शिक्षाप्रद है। मानव हृदयके दिव्य और कल्याणकारी भावोंका विकास कैसे किया जा सकता है, यह इसमें बड़ी खूबीके साथ दर्शाया गया है। सच्चा मानव-धर्म क्या है ? सत्य सदाचार क्या है ? मनको कैसे वशमें करना चाहिए ? और उससे कैसे अद्भुत लाभ हो सकते हैं ? सांसारिक जीवन कैसे सुखी, सरस और सफल बनाया जा सकता है ? अपना भविष्य कैसे उज्ज्वल और निर्विघ्न बना सकते हैं ?—आदि बातोंका अति सरल भाषामें ऐसा मधुर किन्तु गम्भीर वर्णन किया गया है कि पढ़ते-पढ़ते आपके हृदय-देशमें आनन्दकी विमल धारा बहने लगेगी, मन-मयूर नाचने लगेगा और सचमुच ही आप अपने को स्वर्गीय स्थितिमें पावेंगे। पृष्ठ—संख्या ३६८। मूल्य ।।≈)।।

विसर्जन

मूल लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर। अनुवादक बा० मुरारीदास अग्रवाल। संशोधक तथा भूमिका लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल (प्रोफेसर हिन्दू युनिवर्सिटी)। जगन्मान्य रवीन्द्रबाबूकी पुस्तककी उत्तमता के संबंधमें कुछ कहना नहीं है। यह एक अहिंसात्मक करुणरस-पूर्ण नाटक है। इसमें जीव-बलि निषेध किया गया है, और उससे उत्पन्न हानियोंका दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तकके भाव बड़े ऊंचे दर्जेके हैं। मूल्य ।।)।

सस्ती साहित्य-पुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

बंकिम-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड)—बंकिमबाबूके 'आनन्दमठ', 'लोकरहस्य' तथा 'देवी चौधरानी, का अविकल अनुवाद । पृष्ठ-संख्या ५१२ । मूल्य १), सजिल्द १।-)॥, द्वितीय संशोधित संस्करण शीघ्र छपेगा ।

गोरा—जगद्विख्यात रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'गोरा' नामक पुस्तकका अविकल अनुवाद । पृष्ठ-संख्या ६८८ । मूल्य १।-)॥, सजिल्द १॥≋) । द्वितीयावृत्ति शीघ्र छपेगी ।

बंकिम-ग्रन्थावली (द्वितीय खण्ड)—बंकिमबाबूके 'सीताराम' तथा 'दुर्गेशनंदिनी' का अविकल अनुवाद । पृष्ठ-संख्या ४३२, मूल्य ॥।-)॥, सजिल्द १≋) ।

चंडीचरण-ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) अर्थात् टामकाकाकी कुटिया Uncle Tom's Cabin के आधारपर स्वर्गीय चण्डीचरणसेन लिखित 'टामकाकार कुटीर' का अविकल अनुवाद । पृष्ठ-संख्या ५६२ । मूल्य १=)॥, सजिल्द १॥) ।

बंकिम-ग्रन्थावली (तृतीय खण्ड)—बंकिमबाबूके 'कृष्णकान्तेर विल' 'कपाल-कुण्डला' तथा 'रजनी' का अविकल अनुवाद । पृष्ठ-संख्या ४३२ । मूल्य ॥।-)॥, सजिल्द १≥) ।

चण्डीचरण-ग्रन्थावली (दूसरा खण्ड)—चण्डीचरणसेन लिखित 'दीवान गंगागोविंदसिंह' का अविकल अनुवाद । पृष्ठ-संख्या २६० । मूल्य ॥) ।

वाल्मीकीय रामायण (बालकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके १६२, अर्थात् साधारण साइजके ३८४ । मूल्य ॥।) ।

वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़के ३८४, अर्थात् साधारण साइज के ७६८ । मूल्य १॥) ।

वाल्मीकीय रामायण (अरण्यकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़के २०८, अर्थात् साधारण साइज़के ४१६ । मूल्य ॥।-)

वाल्मीकीय रामायण (किष्किन्धाकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइजके २०८, अर्थात् साधारण साइज़के ४१६ । मूल्य ॥।-)

वाल्मीकीय रामायण (सुन्दरकांड)—पृष्ठ-संख्या बड़े साइज़ के २०२, अर्थात् साधारण साइज़के ४८४ । मूल्य ॥।≠)

वाल्मीकीय रामायण (युद्धकाण्ड)—छप रहा है ।

वाल्मीकीय रामायण (उत्तरकाण्ड)—शीघ्र छपेगा ।

भारत में अभी तक इतनी सस्ती तथा उपयोगी कोई भी ग्रन्थमाला नहीं है । हमारा विचार इससे भी सस्ते मूल्यमें इस मालामें वेद, वेदान्त (उपनिषद् आदि), दर्शन (सांख्य, योग, न्याय आदि), पुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, वैद्यक, कलाकौशल, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान, जीवनचरित्र, उपन्यास, नाटक, काव्य, भूगर्भशास्त्र आदि सभी विषयोंकी पुस्तकें निकालनेका है ।

रहीम-रत्नावली

मुसलमान होकर भी 'रहीम' ने जितनी सुन्दर तथा नीतिपूर्ण हिन्दी-कविता की है उसे देखकर दंग रह जाना पड़ता है, इनकी रचना कितने ही स्थानोंसे प्रकाशित हो चुकी है। पर, हमें अभी हालहीमें उनके कई नये ग्रंथ मिले हैं। वे सब इसमें सम्मिलित कर दिये गये हैं। अब इतना बड़ा और इतना अच्छा संस्करण कहीं का भी नहीं है। इसमें ३०० के लगभग दोहे, नगर शोभावर्णन, नायिकाभेदके एवं नवीन प्राप्त सवासौ बरवे, मदनाष्टक, शृंगारसोरठ, रहीम काव्य, पाठान्तर, Parallel Quotations तथा दो चित्र दिये गये हैं। इन सबके अतिरिक्त प्रारम्भमें गवेषणापूर्ण बृहद्काय भूमिका भी इसमें जोड़ दी गयी है, जिसमें रहीमके काव्यकी आलोचनाके साथ-ही साथ उनके सम्बन्धकी किम्वदंतियाँ, जीवनी आदि दी गयी हैं। इसके कारण पुस्तकका महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। पुस्कान्तमें टिप्पणियाँ भी भरपूर दे दी गयी हैं। सुपरिचित साहित्यसेवी पं० मयाशंकरजी याज्ञिकने इस संस्कारणका सम्पादन किया है। पृष्ठ-संख्या २५० के ऊपर मूल्य १)

गो० तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका

(टीकाकार—श्रीवियोगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता? गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनयपत्रिका है। विनयपत्रिकाकासा भक्ति-ज्ञानका दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। इसमें शिव, हनुमान, भरत, लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीरामचन्द्र-की स्तुतिके बहाने वेदान्तके गूढ़ तत्त्वोंका समावेश किया गया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी बातें इसमें गागरमें सागरकी भाँति भर दी गयी हैं। इसकी टीका उच्चकोटिके विद्वान एवं लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगीहरिजीने की है। इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं। भावार्थके नीचे टिप्पणीमें अन्तर्कथायें, अलंकार, शंकासमाधान आदिके साथ-ही-साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं। अर्थ तथा प्रसंग-पुष्टिके लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणोंके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं। दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं। इन सब बातोंके कारण टीका अद्वितीय हुई है। नवीन संशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण। पृष्ठ-संख्या लगभग ६००। मूल्य २॥), सजिल्द २॥।), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ३)।

This book is sanctioned as a reference book for Hindi Teachers in High Schools of Central Provinces and Berar.

— Vide Order No. 6801, Dated 28-9-26

अनुराग-वाटिका

(प्रणेता—श्रीवियोगीहरिजी)

वियोगीहरिजीसे हिन्दी-साहित्य-प्रेमीगण भलीभाँति परिचित हैं। साहित्य-विहार, अन्तर्नाद, ब्रजमाधुरीसार, कविकीर्तन, भावना आदि ग्रंथोंके देखनेसे उनकी असाधारण प्रतिभाका परिचय

मिल जाता है। इस पुस्तिकामें इन्हीं वियोगीहरिजी-प्रणीत ब्रजभाषाकी कविताओंका संग्रह है। इतनी सजीव भावपूर्ण कविता आपने बहुत कम देखी होगी। छपाई-सफाई सुन्दर। मूल्य ।-)।

गुलदस्तए-बिहारी

(लेखक—देवीप्रसाद 'प्रीतम')

बिहारी-सतसईका परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं; सभी साहित्य-प्रेमी उसके नामसे परिचित हैं। यह 'गुलदस्तए बिहारी' उसी बिहारी-सतसईके दोहोंपर रचेहुए उर्दू शैरोंका संग्रह है, अथवा यों कहिए कि बिहारी-सतसईकी उर्दू-पद्यमय टीका है। ये शैर सुननेमें जैसे मधुर और चित्ताकर्षक हैं, वैसे ही भाव-भंगीके ख्यालसे भी अनुपम हैं। इनमें दोहोंके अनुवादमें, मूलके एक भी भाव छूटने नहीं पाये हैं, बल्कि कहीं-कहीं उनसे भी अधिक भाव शैरोंमें आगये हैं। ये शैर इतने सरल हैं कि मामूली हिंदी जाननेवाला उन्हें अच्छी तरह समझ सकता है। इन शैरोंकी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० पद्मसिंह शर्म्मा, मिश्रबन्धु, लाला भगवानदीन, वियोगीहरि आदि उद्भट् विद्वानोंने मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। इसमें ऊपर बिहारीका मूल दोहा देकर, नीचे प्रीतमजी-रचित उसी दोहे का शैर हिंदी लिपिमें दिया गया है। मूल्य ।॥≈), सचित्र राजसंस्करणका १॥)

महात्मा सूरदासजी प्रणीत

भ्रमरगीत—सार

(संपादक—पं० रामचन्द्रशुक्ल)

महात्मा सूरदासजीके नामसे विरले ही हिंदी-प्रेमी अपरिचित होंगे। सूरदासजी हिंदी-साहित्य की विभूति हैं, जीवन-सर्वस्व हैं। कहा भी है—" सूर सूर तुलसी ससि, उडुगण केसवदास "। यथार्थमें हिन्दीमें इनका सर्वोच्च स्थान है। इन्हीं महात्माके उत्कृष्ट पद्योंका यह संग्रह है। 'सूरसागर'का सर्वोत्कृष्ट अंश 'भ्रमरगीत' माना जाता है। उसी भ्रमरगीतके चुने हुए पदोंका यह संग्रह है। इसमें चार सौसे भी ऊपर पद आ गये हैं। इसका सम्पादन हिन्दी-साहित्य-संसारके चिरपरिचित एवं दिग्गज विद्वान् पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दूविश्वविद्यालय, काशी, ने किया है। एक तो सूरदासकी कविता, दूसरे हिन्दीके विशिष्ट विद्वान् द्वारा उसका संपादन 'सोनेमें सुगन्ध' हो गया है। सम्पादकजीकी ८० अस्सी पृष्ठकी दीर्घकाय भूमिका ही पुस्तककी महत्ताको दुगुनी कर रही है। पदोंमें आये हुए कठिन शब्दोंके सरलार्थ भी पादटिप्पणीमें दे दिये गये हैं। यह पुस्तक कई युनिवर्सिटियोंमें पाठ्यपुस्तक है। पृष्ठ-संख्या करीब २५०। मूल्य १)।

तुलसी-सूक्ति-सुधा

(सम्पादक—श्रीवियोगीहरिजी)

इसमें जगन्मान्य गोस्वामी तुलसीदासजी-प्रणीत समस्त ग्रन्थोंकी चुनी हुई अनूठी उक्तियोंका संग्रह किया गया है। जो लोग अवकाश न मिलनेसे गोस्वामीजीके सभी ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं कर पाते, उनको इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे गोस्वामीजीके समस्त ग्रन्थोंके पढ़नेका आनन्द आ जायगा। इस पुस्तकमें ग्यारह अध्याय हैं—१ चरित-बिन्दु, २ ध्यान-बिन्दु, ३ विनय-बिन्दु, ४ तीर्थ-बिन्दु, ५ अध्यात्म-बिन्दु, ६ साधन-बिन्दु, ७ पुरुष-परीक्षा-बिन्दु, ८ प्रबोध-बिन्दु, ९ व्यवहार-बिन्दु, १० निज-निवेदन-बिन्दु, ११ विविध-सूक्ति-बिन्दु। इसमें आपको राजनीति,

समाज-नीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी विषयोंपर अच्छी-से-अच्छी उक्तियाँ बिना प्रयास एक ही जगह मिल जायँगी। साहित्यके अध्येता तथा जनसाधारण दोनों ही इसके पाठसे लाभ उठा सकते हैं। इसमें प्रारम्भमें आलोचनात्मक विशद भूमिका भी संपादकजीने अध्येताओंके लिए जोड़ दी है। पाद-टिप्पणीमें कठिन स्थलोंकी पूर्णरूपसे व्याख्या भी कर दी गयी है। भगवद्भक्तों-को इसे अवश्य देखना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ५०० के लगभग। मूल्य २)।

झरना

(प्रणेता—जयशङ्करप्रसाद)

हिन्दीके अर्वाचीन लेखकोंमें बाबू 'जयशंकरप्रसादजी' का आसन बहुत ऊँचा है। उच्चको-टिका साहित्यिक नाटक लिखनेमें एवं नवीन शैलीकी चुहचुहाती भावपूर्ण कविताएँ करनेमें आप अपना सानी नहीं रखते। आपकी पुस्तकें आधुनिक समाजमें काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं और विश्वविद्यालयमें पाठ्यग्रन्थोंमें स्वीकृत हो चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक आपही की रची हुई छायावादी कविताओंका संग्रह है। कविता बड़ी ही सरल और भावपूर्ण है। इसकी एकएक लाइन हृदयग्राही है। जिनलोगोंका कहना है कि छायावादी कविताएँ बड़ी नीरस होती हैं, उनके सिर पैरका कहीं पता ही नहीं चलता, उनसे मेरा अनुरोध है कि छः आने पैसेमें इस पुस्तकको खरीदकर अपना भ्रम मिटा डालें।

भावना

(लेखक—वियोगीहरि)

यह एक अध्यात्मिक गद्यकाव्य है। इसकी रचना साहित्य-मर्मज्ञ, काव्य-कला-कुशल एवं मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-प्राप्त वियोगीहरिजीने की है। इसमें मानव-हृदयमें नित्य उठनेवाली नाना प्रकारकी भावनाओंका सजीव चित्रण है। विश्वप्रेमका विमल श्रोत है। जिस प्रकार कबीर और सूरने समस्त संसारको प्रेममय देखा, उन्हें उसीमें परमात्माकी झलक दिखाई दी, उसीको उन्होंने मुक्तिका मार्ग समझा, उसी प्रकार हरिजीने मनुष्यकी प्रत्येक दैनिक क्रियाको विश्वप्रेमका रूप दिया है। सचमुचमें यह काव्य बड़ा सुन्दर हुआ है। इसकी भाषा इतनी परिमार्जित, ललित और भावपूर्ण है कि देखते ही बनता है। जिस समय सांसारिक झंझटोंसे आपका मन ऊब जाय, आपको सारा संसार नीरस दिखाई पड़े, आप इस पुस्तकको उठा लीजिए। फिर देखिए, आपमें एक नई स्फूर्ति आ जायगी, मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठेगा। इसमें सब मिलाकर ५० निबन्ध हैं। प्रत्येक निबन्ध मुर्देको जिलानेके लिए अमृत है। भगवद्भक्तोंके लिए इसमें बहुत काफी मसाला है। छपाई, सफाई भी पुस्तककी दर्शनीय है। मूल्य ॥=)

कुसुम-संग्रह

(लेखिका—बंगमहिला)

सम्पादक पं० रामचन्द्र शुक्ल, प्रो० हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा लेखिका हिन्दी संसार-की चिरपरिचित श्रीमती बंगमहिला। इसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर, देवेन्द्रकुमार राय, रामानन्द चट्टोपाध्याय आदि धुरन्धर विद्वानोंके छोटे-छोटे उपन्यासों तथा लेखोंका अनुवाद है। कुछ लेख लेखिकाके निजके हैं। पुस्तक बड़ी ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है। इसको संयुक्तप्रान्तकी तथा

मध्यप्रदेशको [Vide Order No. 9754, datd 12-12-26] गवर्नमेण्टने पुरस्कार पुस्तकों तथा पुस्तकालयों (Prize-Books and Libraries) के लिए स्वीकृत किया है। कुछ स्कूलोंमें पढ़ाई भी जाती है। छपाई, सफाई सुन्दर। सात रंग-विरंगे चित्रोंसे विभूषित पुस्तकका मूल्य १॥)।

The book will form an admirable Prize Book in Girl's School. We repeat that the book will form a nice and useful present to females. It is not less interesting to the general reader.

— *The Modern Review.*

मुद्राराक्षस सटीक

(सम्पादक—ब्रजरत्नदास बी० ए०)

भारत-भूषण भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रजी वर्तमान हिन्दी-साहित्यके जन्मदाता माने जाते हैं। आपने ही विशाखदत्तके उत्कृष्ट राजनीतिक संस्कृत नाटक मुद्राराक्षसका अनुवाद गद्य-पद्यमय हिन्दी भाषामें किया है। यह अनुवाद मूल ग्रन्थसे कितना ही आगे बढ़ गया है, इसमें मौलिकता आगयी है। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ है कि भारतकी प्रायः सभी यूनिवर्सिटियों तथा साहित्यविद्यालयोंमें पाठ्यग्रन्थ रखा गया है। हमने विद्यार्थियोंके लाभार्थ इसी पुस्तकका शुद्ध तथा उपयोगी संस्करण निकाला है। इसमें अध्येताओंके लिए ८० अस्सी पृष्ठकी आलोचनात्मक भूमिका भी प्रारम्भमें दे दी गयी है, जिसमें कवि-प्रतिभा, नाटकका इतिहास, लेखनशैली आदिपर गवेषणापूर्ण आलोचना की गयी है। अन्तमें करीब १५० डेढ़ सौ पृष्ठोंमें भरपूर टिप्पणी दी गयी है, जिसमें नाटकमें आये हुए पद्यांशोंकी पूरी टीका तथा गद्यांशोंके कठिन शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं, अलंकार आदि बतलाये गये है, स्थल-स्थलपर तुलनाके लिए संस्कृत मूल भी उद्धृत किये गये हैं, प्रमाण के लिए साहित्य-दर्पण, काव्य-प्रकाश आदि ग्रन्थोंके अवतरण भी दिये गये हैं। इसका संशोधन पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा बा० श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० प्रो० हिंदू-विश्वविद्यालय, ने किया है। संपादन, नागरी-प्रचारिणी सभाके मन्त्री, बाबू ब्रजरत्नदासजी बी० ए० ने किया है। पृष्ठ-संख्या ३५० के लगभग, मूल्य १) मात्र।

पुस्तक-भवन, काशी, द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

राजारानी

इस नाटकके लेखक संसारके सर्वश्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ टाकुर हैं। अनुवादक बा० मुरारिदास अग्रवाल। भूमिका-लेखक हिन्दीके विद्वान् एवं सम्मेलन-पत्रिकाके भूतपूर्व सम्पादक तथा साहित्य-विहार अनुरागवाटिका, भावना आदिके लेखक श्रीवियोगीहरि लिखते हैं—

"यह नाटक अपने ढंगका एक है, इसमें सन्देह नहीं। नाटकमें सामयिकताके साथ ही स्थायित्व भी है। विचारलहरीकी आरोही अवरोही देखते ही बनता है।.....एकका प्रेमकी—प्रेम क्या मोहकी—अतिसे पतन दिखाया गया है, तो दूसरेका लक्ष्य-हीन कर्मकी अतिसे सर्वनाश

कराया गया है......समाज और राष्ट्रके लिए कवीन्द्रकी यह उत्कृष्ट कल्पना कितनी उपयोगिनी है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं । अनुवाद सुन्दर, सरस और यथार्थ हुआ है ।"

सुन्दर मोटे कागज़ पर छपी पुस्तकका मूल्य ॥।) ।

विसर्जन

मूल लेखक—रवीन्द्रनाथ ठाकुर । अनुवादक मुरारिदास अग्रवाल, संशोधक तथा भूमिका-लेखक पं० रामचन्द्र शुक्ल । जगन्मान्य रवीन्द्रबाबूकी पुस्तककी उत्तमताके सम्बन्धमें हमें कुछ कहना नहीं है । यह एक अहिंसात्मक करुणरस पूर्ण नाटक है । इसमें जीव-बलि निषेध किया गया है । पुस्तकके भाव बड़े ऊँचे दर्जेके हैं । मूल्य ॥)

सीताराम

लेखक रायबहादुर स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चटर्जी सी. आई. ई. । उच्चकोटिके उपन्यास-लेखकोंमें बंकिमबाबूका नम्बर पहला है । आपको लोग दूसरा स्काट समझते हैं । आपका-सा रोचक, शिक्षाप्रद उपन्यास लेखक अभी तक भारतमें कोई भी पैदा नहीं हुआ । यही कारण है कि आपके उपन्यासोंका अनुवाद मराठी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, तेलगू आदि भारतीय भाषाओंकी कौन कहे, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं तकमें हो चुका है । आपके उपन्यासोंमें सबसे बड़ी एक विशेषता यह होती है कि वे स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभीके हाथोंमें निस्संकोच भावसे दिये जा सकते हैं । यही कारण है कि सभी पढ़े-लिखे लोग बंकिमकी पुस्तकोंको पढ़नेके लिए उपदेश दिया करते हैं । बंकिमकी पुस्तकें Prize-books and Libraries के लिए भी डाइरेक्टरों द्वारा स्वीकृत हो चुकी हैं । अस्तु, यह 'सीताराम' श्रीमद्भगवद्गीता के आधारपर लिखा गया ऐतिहासिक उपन्यास है । इसमें राजनैतिक चालोंका दिग्दर्शन कराया गया है । सीतारामकी वीरता, उनकी प्रथमत्यक्ता स्त्री श्रीका अद्भुत साहस, श्रीकी सखी जयन्ती नामक संन्यासिनीकी अद्भुत करामात, द्वितीय स्त्री नन्दाका अपूर्व स्वार्थत्याग, सीताका आदर्श प्रेम, चन्द्रचूड़ तर्कालंकारकी स्वामिभक्ति, गंगाराम का अपने रक्षकके साथ विश्वासघात, एक शाहजी नामक फकीरकी बदमाशी, मुसलमानोंका अत्याचार, भयंकर मार-काट आदि घटनाओंसे यह पुस्तक भरी पड़ी है । खूब मोटे एंटिक पेपर पर मनोमोहक छपाई । मूल्य १॥)

सफ़ाई और स्वास्थ्य

दुनियाँमें स्वास्थ्य बड़ी चीज़ है । इसके बिना मनुष्य, जीता हुआ भी, मुर्देसे बदतर है । इस छोटी सी पुस्तिकामें स्वास्थ्य-लाभ-सम्बन्धी सभी आवश्यकीय बातें बतलायी गयी हैं । स्वास्थ्यकी पहली सीढ़ी सफाई है । अधिकतर बीमारियाँ गन्दगीकी वजहसे ही पैदा होती हैं । गन्दगीसेही नाना प्रकारके हानिकारक विषैले कीड़े, जोकि रोगके घर होते हैं, उत्पन्न होते हैं वायु दूषित हो जाती है । इन्हीं सब रोगोंके घर मूल कारणोंसे बचानेके लिए प्रस्तुत पुस्तिका लिखी गयी है । स्वस्थ तथा बलवान् बननेके लिए इस पुस्तकको अवश्य पढ़िए । सी० पी० के शिक्षा-विभागने इसे अपने यहाँ बालक-बलिकाओंके पुस्तकालयके लिए भी स्वीकृत कर लिया है (*Vide Order No. 8918 Dated 23-12-25*) पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ।) ।

बाल-मनोरंजन

इसमें बालकोंके लिए शिक्षाप्रद मनोरञ्जक कहानियोंका संग्रह है। पुस्तककी भाषा बड़ी ही सरल है। दो भागोंमें समाप्त हुई है। मूल्य प्रत्येक भागका ।=)

This book is sanctioned as a Prize and Library Book in Middle Schools of Central Provinces and Berar.

— *Vide Order No. 9754, Dated 17-12-29*

धातु दौर्बल्य

वा

प्राइवेट चिकित्सा

आजकल असमयमें जो लोग अपने दुराचारों या अनैसर्गिक कर्मोंके कारण पुरुषत्वहीन हो जाते हैं वा इन्द्रिय-सम्बन्धी अन्य लज्जाजनक भयंकर बीमारियोंके शिकार बन जाते हैं उन्हींके लिए यह पुस्तक लिखी गयी है। इसके जरिये उन भोलेभाले बच्चोंका जीवन भी सुधर सकता है जिन्होंने बुरी सोहबतमें पड़कर अपना स्वास्थ्य खराब करना शुरू कर दिया है और अब चेत रहे हैं। इसमें १५ अध्याय हैं। (१ उपक्रमणिका २ मूत्रनालीप्रदाह और उत्तेजनाके कारण होनेवाला शुक्रमेह, ३ हस्तमैथुन छुड़ानेका उपाय और उससे उत्पन्न रोगोंकी चिकित्सा, ४ स्वप्नदोष, ५ अधिक इन्द्रिय संचालन और शुक्रमेह ६ विवाहित अवस्थामें अति स्त्रीप्रसंग, ७ अस्वाभाविक वीर्यपातका फल, ८ सर्वाङ्ग दूषित करनेवाला शुक्रमेह आदि। इसके जरिए बिना डाक्टर-वैद्य के रोग अच्छे हो सकते हैं। मूल्य ॥)

अन्य प्रकाशित पुस्तकें

दुर्गेशनन्दिनी—लेखक बंकिमबाबू। सचित्र (दुबारा छपने पर मिलेगा)	१।)
कपाल-कुंडला ,, ,, ,, ,,	॥।)
रजनी ,, ,, ,, ,,	॥=)
कृष्णकान्तका वसीयतनामा ,, ,, ,,	१)
एम. ए. बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराब की ? ,, ,,	२)
शैलबाला—ले० ननीलाल वंद्योपाध्याय ,, ,,	१)
भगवानकी लीला—ले० अरविन्द घोष ,, ,,	॥)

शीघ्र छपनेवाली पुस्तकें

योगेश्वरी—लेखक दामोदर मुखोपाध्याय।
बीज-गणित—हिन्दीमें अलजबरा।

हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी: ५१८९, ३

गो० तुलसीदासजी कृत

विनय-पत्रिका

(टीकाकार—श्रीवियोगीहरि)

सर्वमान्य 'रामायण' के प्रणेता महात्मा तुलसीदासजीका नाम भला कौन नहीं जानता ? गोस्वामीजीकी सर्वश्रेष्ठ रचना यही विनयपत्रिका है । विनयपत्रिका-सा भक्ति-ज्ञानका दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है । इसमें शिव, हनुमान, भरत लक्ष्मण आदि पार्षदों-सहित जगदीश श्रीरामचन्द्रकी स्तुतिके बहाने वेदान्तके गूढ़ तत्त्वोंका समावेश किया गया है । वेद, पुराण, उपनिषद्, गीतादिमें वर्णित ज्ञानकी सभी बातें इसमें गागरमें सागरकी भाँति भर दी गयी हैं । इसकी टीका सम्मेलन-पत्रिकाके सम्पादक तथा साहित्य-विहार, भावना, अन्तर्नाद, ब्रजमाधुरीसार, संक्षिप्त सूरसागर आदि ग्रन्थोंके लेखक तथा संकलनकर्ता लब्ध-प्रतिष्ठ वियोगीहरिजीने की है । इस टीकामें शब्दार्थ, भावार्थ, विशेषार्थ, प्रसंग, पदच्छेद आदि सब ही कुछ दिये गये हैं । भावार्थके नीचे टिप्पणीमें अन्तर्कथाएँ, अलंकार, शंकासमाधान आदिके साथ-ही-साथ समानार्थी हिन्दी तथा संस्कृत कवियोंके अवतरण भी दिये गये हैं । अर्थ तथा प्रसंगपुष्टिके लिए गीता, वाल्मीकि रामायण तथा भागवत आदि पुराणोंके श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं । दार्शनिक भाव तो खूब ही समझाये गये हैं । इन सब बातोंके कारण टीका अद्वितीय हुई है । द्वितीय संशोधित संस्करण, पृष्ठ-संख्या लगभग ७०० । मूल्य २।।), जिल्द २।।।), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द ३) ।

तुलसी-सूक्ति-सुधा

(सम्पादक—श्रीवियोगीहरिजी)

इसमें जगन्मान्य गोस्वामी तुलसीदासजी-प्रणीत समस्त ग्रन्थोंकी चुनी हुई अनूठी उक्तियोंका संग्रह किया गया है । जो लोग समयाभाव या अन्य कारणोंसे गोस्वामीजीके सभी ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं कर सकते, उनलोगोंको इस एक ही पुस्तकके पढ़नेसे गोस्वामीजीके समस्त ग्रन्थोंके पढ़नेका आनन्द आ जायेगा । इस पुस्तकमें ग्यारह अध्याय हैं— १ चरित विन्दु, २ ध्यान-विन्दु, ४ तीर्थ-विन्दु ५ अध्यात्म-बिन्दु, ६ साधन-विन्दु, ७ पुरुष-परीक्षा-विन्दु, ८ उद्बोध-विन्दु, ९ व्याहार-विन्दु, १० निज-निवेदन-बिन्दु, ११ विविध-सूक्ति-विन्दु । इसमें आपको राजनीति, समाजनीति, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सभी विषयोंपर अच्छी-से-अच्छी उक्तियाँ बिना प्रयास एक ही जगह मिल जायँगी । साहित्यके अध्येता तथा जनसाधारण दोनों ही इसके पाठसे लाभ उठा सकते हैं । इसमें प्रारम्भमें आलोचनात्मक विशद भूमिका भी संपादकजीने पाठकोंके सुभीतेके लिए जोड़ दी है । पाद-टिप्पणीमें कठिन स्थलोंकी पूर्णरूपसे व्याख्या भी कर दी गयी है । पृष्ठ-संख्या ५०० के ऊपर । मूल्य २) ।